महाकवि ग़ालिब की ग़ज़लें



डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि॰ प्रयाग

महाकवि ग़ालिब की ग़ज़लें

(महाकवि की ११७ ग़ज़लों या ग़ज़लांशों की हिन्दी-टीका)

टीकाकार

रामानुज लाल श्रीवास्तव

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सन् १९५८

मूल्य

प्रकाशक
बी० एन० माथुर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद

मुद्रक
भक्तसज्जन
बेलविडियर प्रिंटिङ्ग वर्क्स, प्रयाग

भूमिका

यह टीका, 'प्रहरी', हिन्दी-साप्ताहिक, जबलपुर में २३-१०-१९५५ को, लेख-माला के रूप में, प्रारंभ हुई और १०-११-१९५७ को समाप्त हुई। आरंभ यों हुआ कि किसी अज्ञात सज्जन ने (जो आज भी अज्ञात हैं), 'प्रहरी'-सम्पादक को, प्रशंसा-स्वरूप, यह पंक्ति लिख भेजी : 'न सिताइश की तमन्ना, न सिलअ़ की पर्वा।' 'प्रहरी'-सम्पादक, भाई भवानीप्रसाद जी तिवारी ने अनुरोध किया कि मैं मिर्ज़ा 'ग़ालिब' की उस पूरी ग़ज़ल की टीका कर दूँ, जिसमें यह पंक्ति आई है (कृपया देखिए ग़ज़ल, क्रमांक ९१)।

इसके बाद कतिपय स्थानीय नवयुवक हिन्दी-साहित्यिकों ने अनुरोध किया कि कुछ और ग़ज़लों की टीका करूँ। सात-आठ ग़ज़लों की टीका की। फिर यह सोच कर कि किसी को कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है, कार्य स्थगित कर दिया। इस पर कई स्थानीय नवयुवकों ने बार-बार अनुरोध किया और विश्वास दिलाया कि वे व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से मिर्ज़ा के काव्य का अध्ययन करेंगे।

मेरे यह कहने पर कि हिन्दी में मिर्ज़ा के अनेक संग्रह प्राप्य हैं, उन्होंने उत्तर दिया कि वे अधिकतर उर्दू-साहित्यिकों द्वारा सम्पादित हैं, अतएव हिन्दी वालों की कठिनाइयाँ उनमें हल नहीं की गई हैं। अधिकतर वे शब्दार्थ या भावार्थ के रूप में हैं—टीका के रूप में नहीं। कार्य पुनः आरंभ करने पर लगातार स्थानीय तथा बाहर के काव्य-प्रेमियों से उत्साह तथा सुझाव मिलते रहे।

अधिकतर कार्य सन् १९५६, मई-जून में 'उत्तरायण' आश्रम (नैनीताल) के शांत वातावरण में सम्पन्न हुआ, जहाँ पं० गोविन्द वल्लभ पंत तथा आचार्य प्रभुदयाल अग्निहोत्री के सहयोग का सौभाग्य प्राप्त होता रहा।

जबलपुर में मेरे आत्मीय, प्रो० महादेवप्रसाद श्रीवास्तव, 'सामी' (अध्यक्ष, उर्दू-फ़ारसी विभाग, हितकारिणी सिटी कालेज), सन् १९३० से

उर्दू-काव्य को हिन्दी-पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करने में मेरी सहायता करते आये हैं। इस कार्य में भी उनके सहयोग का सौभाग्य प्राप्त रहा। पं० केशवप्रसाद जी पाठक, बीच धार में छोड़ कर, भगवान् के प्यारे हो गये। प्रो० मंशाउर्रहमान ख़ाँ 'मंशा', जब तक जबलपुर शिक्षण-महाविद्यालय में रहे, सहायता देते रहे।

इन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ। साथ ही मैं उन सब का हृदय से आभारी हूँ जिनकी हिन्दी, उर्दू, अँगरेज़ी टीकाओं से मैंने सहायता ली है।

ऐसे भी हिन्दी-साहित्यिक हैं जो न केवल मिर्ज़ा वरन् समस्त उर्दू-काव्य पर बहुत अच्छा दख़ल रखते हैं। मैं अनधिकारी हूँ। उनके सम्मुख अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

ऐसे भी सज्जन हैं जो कविता या उर्दू-कविता पसन्द नहीं करते। उनसे कुछ कहना नहीं है।

मेरा उद्देश्य उनकी सेवा करना है जो हिन्दी के माध्यम से मिर्ज़ा की उर्दू-कविता समझना चाहते हैं। उनकी उर्दू-कविता बहुत परिमित है। फ़ारसी-कविता काफ़ी विस्तृत है। तथापि उर्दू-कविता के कारण ही वे उर्दू-काव्य के पिता माने जाते हैं। साथ ही उन्होंने अपनी कविता के बारे में कहा है :—

'ये मसायले-तसव्वुफ़, ये तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली समझते, जो न बादाख़्वार होता॥'

(कृपया देखिए ग़ज़ल क्रमांक ६)

एक तो 'मास्टर' की श्रेणी के कवि। दूसरे तसव्वुफ़—दार्शनिक, मसायल—समस्याओं का निरूपण। तीसरे बयान—अभिव्यक्ति की विशेष शैली ("कहते हैं के 'ग़ालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और।") अतएव यदि प्रथम पारायण में रसानन्द प्राप्त न हो, तो हतोत्साह नहीं होना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार—'सास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिअ।' इससे मिर्ज़ा के काव्य का आनन्द तो मिलेगा ही, उर्दू-काव्य को समझने की क्षमता भीबढ़ेगी। इसीलिए प्रासंगिक कथाएँ दे दी गई हैं, शब्द तथा उनके अर्थ

बार-बार दुहराये गये हैं तथा जहाँ तक बन पड़ा है, भावों का स्पष्टीकरण किया गया है और यदा-कदा हिन्दी-काव्य से तुलनात्मक विवेचना भी की गई है।

मिर्ज़ा तथा अन्य उर्दू कवियों की चर्चा हिन्दी में लगातार चलती रहती है। उससे तो लाभ होगा ही। हिन्दी के तपोधन, पंडित रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी' (उर्दू-भाग) के अध्ययन से उर्दू कविता के विकास का भी परिचय प्राप्त होगा। जो अँगरेज़ी जानते हैं उन्हें स्व० श्री बाबूराम सक्सेना कृत उर्दू-साहित्य का अँगरेज़ी इतिहास (प्रकाशक—लाला रामनारायण एण्ड सन्स, प्रयाग) तथा स्व० सर अब्दुल क़ादिर कृत 'फ़ेमस उर्दू पोएट्स एण्ड राइटर्स' (प्रकाशक न्यू बुक सोसाइटी, लाहौर) भी पढ़ना चाहिए। (इस तरह का कार्य अभी हिन्दी में नहीं हुआ है।) स्वयं सर अब्दुल क़ादिर ने अपेक्षा की है कि उर्दू-साहित्यिक भी मिर्ज़ा के काव्य का बार-बार परिशीलन करें। केवल एक बार पढ़ लेना पर्याप्त नहीं है। तब हिन्दी वालों को क्या कहें ?

मिर्ज़ा के कलाम की सर्वश्रेष्ठ टीका वह है, जो अपने मित्रों या अनुयायियों के अनुरोध से उन्होंने यदा-कदा स्वयं की है (देखिए पृ० १४२, तीसरा शैर)। इससे या मिर्ज़ा द्वारा अन्य शैरों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि न केवल ठीक टीकाएँ की जायँ; वरन् टीकाएँ मनोरंजक भी हों। इसके बाद उनके पट्ट-शिष्य मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' की टीका मानी जाती है। इसके बाद अन्य टीकाकारों की। यही क्रम इस टीका में भी रखा गया है। प्रो० तबातबाई ने मिर्ज़ा के कलाम में कहीं-कहीं दोष भी बतलाये हैं। 'यगाना' उपनाम के कोई कवि हुए हैं या हैं, जिन्होंने मिर्ज़ा को गालियाँ भी दी हैं। जीवन-काल में जिन्होंने मिर्ज़ा को गालियाँ दी, उन्हें वे हँस कर टाला किए। अब उन्हें बुरा कहने वालों को क्या कहें ?

(२)

मिर्ज़ा के भाव अधिकतर दार्शनिक तथा भाषा अधिकतर फ़ारसी-मिश्रित है। अपने जीवन-काल में ही मिर्ज़ा ने उर्दू के कुछ क्लिष्ट शैर अदल-बदल कर फ़ारसी-संग्रह में सम्मिलित कर लिये थे और कुछ सर्वथा हटा दिए थे। तथापि उर्दू-संग्रह में कई ऐसी ग़ज़लें और शैर हैं, जो भाषा और भाव की दृष्टि से हिन्दी-पाठकों को बोझिल-से जान पड़ेंगे। अतएव ऐसी ग़ज़लें इस टीका में नहीं दी गई और जहाँ शैर छोड़े गये हैं वहाँ × × × चिह्न बना दिये गये हैं। नमूने के लिए प्रथम ही ग़ज़ल छोड़ दी गई है, जिसका प्रारंभ है :—

'नक़्श फ़रियादी है किसकी शोख़िए-तहरीर का।
काग़ज़ी है पैरहन, हर पैकरे तस्वीर का॥'

जैसे हमारे यहाँ—"देन न चाहे जो राजा इनाम, तो पूछत 'केशव' की कविताई।" प्रचलित है, वैसे ही मिर्ज़ा के टीकाकारों के लिए यह शैर चुनौती है। प्रो० तबातबाई कहते हैं कि यह शैर निरर्थक है। अर्थ लगाया जाय तो यह है :—

ईरान में फ़रियादी—न्याय का इच्छुक या भिक्षुक काग़ज़ी पैरहन—काग़ज़ के कपड़े पहिनकर हाकिम के सामने जाता था।

नक़्श—तस्वीर, सूरत या आकृति, किसकी? प्राणिमात्र की, फ़रियादी है—न्याय की भिक्षा चाहती है। कोई कष्ट है तभी तो न्याय की भिक्षा चाहती है। कष्ट यह है कि तहरीर—लिखावट की शोख़ी—पेंच या उलझनें प्राणिमात्र की समझ में नहीं आतीं। तब प्राणि पूछता है यह किसकी लिखावट है, यह मायामय संसार किसका बनाया है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हर पैकरे-तस्वीर—हर प्राणी काग़ज़ का बाना पहने, उससे—रचयिता से भिक्षा माँगता है कि अपनी मायामयी रचना का मर्म समझा दो।

हमारे यहाँ तो काग़ज़ का बाना पहिनने का चलन नहीं है। इसलिए इस शैर के मर्म को ग्रहण करना कठिन है। संभव है मैंने भी अर्थ का अनर्थ किया हो।

नियम यह है कि प्रत्येक काव्य-संग्रह ईश-वंदना से आरंभ होना चाहिए। मिर्ज़ा बड़े नियम-तोड़ू थे। उन्होंने प्रत्यक्ष वंदना तो नहीं की, अपने 'अंदाज़े-बयाँ और' से रचयिता का गुणगान कर दिया। प्राणिमात्र के संकट को मर्ज़ा ने अन्यत्र एक शैर में बिलकुल स्पष्ट कर दिया है :

'कौन है जो नहीं है हाजतमन्द।
किस की हाजत रफ़ा करे कोई?'

(देखिए ग़ज़ल क्र० ११०)

जो शैर छोड़े गए हैं उनका भी एक उदाहरण :—

'सब्ज़ाए-खत से तेरा काकुले-सरकश न दबा।
यह ज़मुर्रद भी हरीफ़े-दमे-अफ़ई न हुआ॥'

(५)

ज़मुर्रद एक क़ीमती पत्थर है, जिस का रंग दाढ़ी के रंग का—भूरा या काला होता है। मान्यता यह है कि ज़मुर्रद को देखकर अफ़ई—नागिन अन्धी हो जाती है।

तेरी दाढ़ी (ख़त) के सब्ज़े-रंग को देख कर काकुल—तेरी केश राशि जो कि सरकश—ढीठ है, दबी नहीं। तात्पर्य यह कि दाढ़ीरूपी ज़मुर्रद को देख कर नागिनरूपी लट अन्धी नहीं हुई।

यह उपमा भी हमारे लिए अनोखी है और प्रेमी के रूप में, पुरुष का पुरुष की सौंदर्योपासना भी। ऐसे शैर छोड़ दिए गए हैं।

(३)

महापुरुष के दर्शन से आत्मा पवित्र होती है, इसलिए कि व्यक्ति महापुरुष को समझने तथा उस का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित होता है। जो गत हो गए उनके दर्शन उनकी जीवनी द्वारा होते हैं। महाकवि 'ग़ालिब' की जीवनी बड़ी रोचक और उपदेशप्रद है। साथ ही उनके मित्रों तथा शिष्यों ने उस का इतना विस्तार किया है कि वह अनेक ग्रन्थों के रूप में प्राप्य है। यहाँ उसका समावेश करने से इस टीका की पृष्ठ-संख्या बढ़ जायगी और यह उद्देश्य कि मिर्ज़ा को कविता कम दाम में उपलब्ध हो, विफल हो जायगा। अतएव उनकी जीवनी कभी एक अलग ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित की जावेगी। मिर्ज़ा ने अपनी कविता और जीवनी के सम्बन्ध में इस संग्रह में, स्वयं काफ़ी-कुछ कहा है, जिसका ज्ञान इस टीका के पढ़ने से प्राप्त हो जायगा। हिन्दी में मिर्ज़ा के जितने संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, सब में उनका संक्षिप्त जीवन-चरित दिया गया है। जिज्ञासु उन्हें देखें।

मिर्ज़ा क्रांतिकारी थे। महापुरुष क्रांतिकारी होते ही हैं। क्रांतिकारियों को विरोध, अपमान, अवहेलना आदि का सहन करना ही पड़ता है। 'जे बिनु काज दाहिने-बाएँ' की स्तुति गोस्वामी जी को भी करनी पड़ी थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी लिखा है :

'I believe that when anti-human forces spread their dominion, individuals with firm faith in

humanity are born, who become acutely conscious of the menace to man and fearlessly fulfil their destiny through insult and isolation.' (डाक्टर आरन्सन कृत गुरुदेव की जीवनी से)।

'मेरा विश्वास है कि जब अमानुषिक शक्तियाँ अपना फैलाव करती हैं, तब मानवता पर प्रबल आस्था रखने वाले व्यक्ति पैदा होते हैं, जो मानव—मात्र पर आने वाली विपत्ति की पूर्णानुभूति कर लेते हैं तथा अपमान और अवहेलना के बीच निर्भयता से अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि गुरुदेव को भी अपमान और अवहेलना का भागीदार होना पड़ा था।

मिर्ज़ा रूढ़ियों का विरोध करते थे। कभी 'मतला', ग़ज़ल का प्रथम शैर कहा, कभी नहीं कहा; कभी 'मक़ता' अन्तिम (नाम के छाप का) शैर ही ग़ायब कर दिया; कभी केवल मतला या मकता कह कर छोड़ दिया; कभी केवल एक सादा—ग़ज़ल के बीच का शैर ही कहा; कभी ग़ज़ल में अनेक क्रितअबन्द—क्रमवद्ध शैर कह दिए; यहाँ तक कि कभी 'ग़ज़ल' को ही अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त मान लिया :—

'बक़द्रे-शौक़ नहीं सेहने-तंगनाए-ग़ज़ल।
कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरे बयाँ के लिये॥'

(देखिए ग़ज़ल क्र० ११७)

यह थी साहित्यिक क्रांति। जीवन में वे अंध-विश्वास, अंध-परंपरा, जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि के विरोधी थे :—

'हम मुवाहिद हैं, हमारा केश है तर्के-रसूम।
मिल्लतें जब मिट गईं, अजज़ाये-ईमाँ हो गईं॥'

हम एकेश्वरवादी हैं। हमारा धर्म रूढ़ियों का त्याग है। साम्प्रदायिकता का लुप्त हो जाना ही सत्य धर्म का प्रगट होना है।

वे समस्त शक्ति से मानवता पर विश्वास करते थे और मानव को ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे :—

'बस्के दुश्वार है हर काम का आसाँ होना।
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना॥'

(देखिए ग़ज़ल क्र० ७)

अपने विश्वासों के कारण गरल मिर्ज़ा स्वयं पी गए और अमृत आने वाली पीढ़ी को दे गए, जिसने उर्दू काव्य-क्षेत्र को, न केवल विस्तृत एवं परिमार्जित किया, वरन् स्वयं ग़ज़ल की ज़मीन को ऐसा संयत तथा सुसंस्कृत कर दिया कि बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि में भी ग़ज़लें कही जाने लगीं।

साहित्यिक, सामाजिक विरोध के कारण मिर्ज़ा ने कभी अपना संतुलन नहीं खोया। अधिकतर महापुरुषों के समान, उनमें इतनी विनोद-प्रियता थी, इतना rich sense of humour था कि वे बड़े-से-बड़े कष्ट को हँसी में टाल देते थे। उन्हें आर्थिक और शारीरिक कष्ट भी हुए, पर उन्होंने केवल इतना ही कहा :

"ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री 'ग़ालिब'।
हम भी क्या याद करेंगे के खुदा रखते थे॥"

(देखिए ग़ज़ल क्र० ७६)

दूसरी ओर जीवन में मिर्ज़ा को जितना स्नेह-सम्मान मिला, उतना बिरले ही भाग्यशाली को मिलता है और जितना स्नेह-सम्मान मिर्ज़ा ने अपनों-पराओं को दिया, उतना बिरला ही महापुरुष दे पाता है। मृत्यु के कुछ घंटों पहले तक, जब वे केवल कुछ मिनिटों के लिए ही होश में आ पाते थे, तब भी अपने स्नेहियों को पत्र लिखवाते थे।

बादशाह बहादुरशाह इज्ज़त और ख़ातिर करते ही थे। आर्थिक और मानसिक कष्ट तो जो स्वयं बादशाह को हुए, वे क्या किसी को होंगे ? नवाब रामपुर तथा नवाब-वज़ीर अवध, मिर्ज़ा को बहुत मानते थे और नवाब, लोहारू तो उनके आत्मीय ही थे। भोपाल और हैदराबाद (दक्षिण) जहाँ शेरो-सुख़न की बहुत क़द्र थी, मिर्ज़ा गए ही नहीं। परन्तु मिर्ज़ा का जो स्नेह-सम्मान उनके मित्र, शिष्य, अनुयायी करते थे और उन से पाते थे, वह अतुलनीय है। इनकी संख्या पर्याप्त भी थी और देशव्यापी भी। इसका कारण

यह था कि मिर्ज़ा न केवल फ़ारसी के महाकवि, उर्दू-काव्य के जनक, उर्दू-गद्य के शैली-प्रवर्तक आदि थे, वरन् वे एक अति उच्चकोटि के सत्पुरुष थे, जिसे God's good man कहा जाता है।

गुरुदेव को दि० २०।५।१६३५ को श्री टी० एस० मूर ने जो पत्र लिखा था, वह मिर्ज़ा पर भी लागू है:—

'You have had a myriad lovers in your life-time and, I make no doubt, will have a myriad more who, though of a more trustworthy character, will never fill their eyes with your bodily presence. So, you are one of the luckiest poets.' (डॉ०आरन्सन कृत गुरुदेव की जीवनी से।)

'तुम्हारे जीवन-काल में तुम्हारे बहुसंख्यक प्रेमी रहे हैं और मुझे तनिक सन्देह नहीं कि तुम्हें और भी बहुसंख्यक प्रेमी प्राप्त होंगे, जो यद्यपि अधिक विश्वसनीय चरित्र वाले होंगे, पर तुम्हारे भौतिक स्वरूप को अपनी आँखों में नहीं भर पाएँगे। इस तरह तुम परम सौभाग्यशाली कवियों में से एक हो।'

षष्टि-पूर्ति
सितम्बर, १९५८ } टीकाकार

———

विषय-सूची

ग़ज़ल-क्रमांक	प्रथम पंक्ति	पृष्ठ

'ओ' या 'व' से अन्त होने वाली :

'े', 'ै', 'य', 'ये', 'ए', 'ई' से अन्त होने वाली :

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें

[१]

कहते हो न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया।
दिल कहाँ के गुम कीजे, हमने मुद्दआ पाया॥

बच्चे कहते हैं पाये-पाये भूँज खाये; अर्थात् रास्ते में पड़ी कोई चीज़ मिल गई तो उन्हीं की हो गई। इसी भोली अदा से कह रहे हो कि यदि मेरा दिल तुम्हें कहीं गिरा-पड़ा मिल जाय तो फिर मुझे वापस नहीं करोगे। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मेरे पास दिल है ही नहीं कि उसे कहीं गिराऊँ या गुमाऊँ। पर मुझे मुद्दआ—मन चाही वस्तु मिल गई। तुमने कुछ इस ढब से पड़े पाने की बात कही कि मुझे ज्ञात हो गया कि मेरा दिल तुम्हें मिल चुका है। और यही तो मेरी अभिलाषा थी कि वह तुम्हारे पास ही बना रहे।

इश्क़ से तबीयत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई, दर्द बे-दवा पाया॥

इश्क़—प्रेम से, तबीयत ने—हृदय ने अर्थात् हमने ज़ीस्त—जीने का मज़ा—सुख पाया। बिना प्रेम के तो हम 'जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान' के समान थे। जीवन की नीरसता मिटी। प्रेमरूपी दर्द की दवा पाई और प्रेम स्वयं ऐसा रोग मिला, जिसकी कोई दवा ही नहीं या जो बे-दवा है। अर्थात् अब बाक़ी का जीवन सरस रहेगा।

दोस्तदारे-दुश्मन है ऐतमादे-दिल मालूम।
आह बेअसर देखी, नाला ना-रसा पाया॥

मुझे मालूम है मेरा ऐतमादे-दिल—हृदय का विश्वास या हृदय पर भरोसा दुश्मन का दोस्त हो गया है। यहाँ दुश्मन है प्रिय जो वियोग की व्यथा दे रहा

है। तात्पर्य यह कि हृदय तुम्हारा हो गया है इसीलिए आह में कोई असर—प्रभाव नहीं रह गया और नाला—चीख़-पुकार, ना-रसा है—तुम्हारे पास तक पहुँचती नहीं। हृदय से निकले तब न पहुँचे!

सादगी व पुरकारी, बेख़ुदी व हुशियारी।
हुस्न को तग़ाफ़ुल में जुर्रत-आज़माँ पाया॥

सादगी—भोलापन; पुरकारी—चालाकी; बेख़ुदी—अपने आपको भूले से; हुशियारी—सबसे ख़बरदार; हुस्न—सौंदर्य; तग़ाफ़ुल—ग़फ़लत में, बेख़बरी में, जुर्रत-आज़माँ—शक्ति की परीक्षा लेने वाला।

सौंदर्य है तो चालाक मगर भोला इसलिए बन जाता है, है सब की ख़बर रखने वाला पर अपने आपको भूला-सा इसलिए प्रदर्शित करता है कि वह इस प्रकार का स्वांग रचकर प्रेमियों की शक्ति की परीक्षा ले अर्थात् उनके प्रेम की थाह ले कि वे भोला और भूला समझ कर रोने-कलपने आदि में कमी या बनावट तो नहीं करने लगे।

ग़ुंचा फिर लगा खिलने, आज हमने अपना दिल।
ख़ूँ किया हुआ देखा, गुम किया हुआ पाया॥

गुंचा-फूल फिर खिलने लगे। फिर वसंत आ गया। फिर हम पागल हो जाएँगे। फिर हमारा दिल ख़ूँ-रक्तरंजित हो जायगा और गुम मारा-मारा फिरेगा। यह मान्यता है कि वसंत प्रेमी को पागल कर देता है।

हाले-दिल नहीं मालूम लेकिन इस क़दर यानी॥
हमने बारहा ढूँढ़ा, तुमने बारहा पाया॥

हमें तो दिल का हाल नहीं मालूम, क्यों कि दिल ही नहीं तब उसका हाल क्या? पर इतना मालूम है कि बारहा—बार-बार हमने-तुमने दोनों ने हमारे दिल को ढूँढ़ा है। हम बार-बार ढूँढ़ते ही रहे हैं और वह तुम्हें बार-बार मिलता ही रहा है।

शोर-पन्द नासह ने ज़ख़्म पर नमक छिड़का।
आपसे कोई पूछे—'तुमने क्या मज़ा पाया?'

नासह—उपदेशक ने, पन्द—उपदेश का शोर—हो हल्ला मचाकर (शोर नमक को भी कहते हैं, अर्थात् उपदेशरूपी नमक से) घाव पर नमक छिड़का। कोई पूछे कि हमें तकलीफ़ देकर उन्हें क्या मिल गया?

[२]

दिल मेरा सोज़े-निहाँ से बेमहाबा जल गया।
आतिशे-ख़ामोश की मानिन्द गोया जल गया॥

मेरा दिल निहाँ—छिपी हुई सोज़—आग से बेमहाबा—एकदम जल गया। यह जलना ऐसा था कि गोया—मानो वह ऐसी आतिश—आग से जला हो जो ख़ामोश—चुपचाप या राख से छिपी हुई आग के मानिन्द—समान थी। इस आतिशे-ख़ामोश को हिन्दी कवि ने कहा है :—'उर अन्तर गुँगवाय जरै ज्यों काँच की भट्टी।'

दिल में ज़ौके-वस्लो-यादे-यार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घर में लगी ऐसी के जो था जल गया।

दिल में और जो साज—सामान, इच्छाएँ—आशाएँ थीं उनकी तो चर्चा ही छोड़ दो; इस बार इस घर में ऐसी आग लगी कि सब कुछ भस्मीभूत हो गया यहाँ तक कि वस्ल--मिलन का ज़ौक़—उत्साह तथा यादे-यार—प्रिय की याद भी।

× × ×

अर्ज़ कीजे, जौहरे--अन्देश की गर्मी कहाँ।
कुछ ख़याल आया था वहशत का के सहरा जल गया॥

अर्ज़ कीजे—कुछ निवेदन करूँ? कैसे करूँ? मुझमें अंदेश-विचार को प्रगट करने की जो जौहर—विशेषता होती है, वह गर्मी ही नहीं रह गई अर्थात् वह शक्ति ही नहीं रह गई। हाँ, कुछ वहशत—पागलपन का विचार (ख़याल) आया था। पर इस विचार-मात्र के आते ही; जिसका उद्देश्य

यह होता कि मैं सहरा—जंगल में निकल जाता (पूरा पागल बन जाता); बेचारा जंगल मेरे विचार-मात्रकी कल्पना से; अपने में मुझको धारण करने की अशक्ति का अनुभव कर; स्वयं जल गया।

दिल नहीं वर्ना दिखाता तुझको दाग़ों की बहार।
इस चिराग़ाँ का करूँ क्या कारेफ़र्मा जल गया॥

दिल जल-भुनकर समाप्त हो गया है। वर्ना—अन्यथा दिल में जो दाग़—फफोले पड़े हुए हैं, उनकी बहार—उनका सौंदर्य तुम्हें दिखाता। ये फफोले अब एक चिराग़ाँ—दीपावली की तरह रह गए हैं। इनका मैं क्या करूँ, जब कारेफ़र्मा—इनका प्रेरक अर्थात् मेरा दिल ही नहीं रहा। ऐसे घर की दीवाली क्या जहाँ घर का मालिक ग़ायब हो ?

मैं हूँ और अफ़सुर्दगी की आरज़ू 'ग़ालिब' के दिल।
देख कर तर्ज़े-तपाके-अहले-दुनिया जल गया।

अब जैसा-तैसा मैं रह गया हूँ और मेरी आरज़ू—इच्छा, एकमात्र अभिलाषा रह गई है—अफ़सुर्दगी की, उदास रहने की। कारण कि दिल तो अहले-दुनिया—दुनिया वालों के तर्ज़े-तपाक—आचार-व्यवहार को देखकर जल चुका है। ऐसी चाल-ढाल, रहन-सहन की दुनिया में मैं केवल एक उदासी की तरह ही दिन काट सकता हूँ।

[३]

शौक़ हर रंग रक़ीबे-सरोसामाँ निकला।
क़ैस तस्वीर के पर्दे में भी उरियाँ निकला।

शौक़—इश्क़ या प्रेम, हर रंग—विरह की प्रत्येक अवस्था में, सरोसामाँ—ठाठ-बाट या सज-धज का रक़ीब—शत्रु या विरोधी निकला। यहाँ तक कि क़ैस—मजनूँ, तस्वीर के पर्दे में—चित्रपट पर भी दीख पड़ा तो उरियाँ अर्थात् नग्नावस्था में! तात्पर्य है केवल कौपीन धारण किये। चित्रकार

ने चित्र में रंग तो भरे पर मजनू को वस्त्रादि से सुसज्जित नहीं दिखाया क्योंकि प्रेमी को श्रृंगार वर्जित है।

जख़्म ने दाद न दी तंगिये-दिल की या रब !
तीर भी सीनये-बिस्मिल से पुरअफ़शाँ निकला।

या रब—हे ईश्वर ! ज़ख़्म—प्रेम के घाव ने तंगिये—दिल की दाद नहीं दी—यह नहीं देखा कि हृदय एक सीमित स्थान है। घाव लगातार हृदय की सीमाओं को तोड़फोड़ कर बढ़ता ही गया। भीतर ही भीतर इस अकृत्रिम फैलाव का कष्ट तो हो ही रहा था, उस पर छोड़ा गया एक तीर। वह तीर भी सीनये-बिस्मिल—घायल की छाती से जब निकला तो पुरअफ़शाँ—पर फड़फड़ाते हुए अर्थात् घाव को; पर फैलाकर निकलने के कारण; बाहर से भी और विस्तृत करते हुए। तीर के अन्त में पर होते हैं। बनावट ऐसी होती है कि जब तीर भीतर घुसता है तो पर, गति के कारण बन्द या चिपके रहते हैं। जब बाहर निकल जाता है तो पर फैल जाते हैं। भीरत-बाहर दोनों एक हो गए। भीतर घाव का फैलाव, बाहर तीर का।

बूए-गुल, नालए-दिल, दूदे-चिराग़े-महफ़िल।
जो तेरी बज़्म से निकला, वो परेशाँ निकला॥

बूए-गुल—पुष्पों की सुगंध, नालए-दिल—हृदय की चीख़-पुकार, चिराग़े-महफ़िल—सभा के दीपक का दूद—धुआँ, जो भी तेरी बज़्म—सभा से निकला—बाहर आया, परेशाँ—घबराया हुआ आया। जो परेशान होगा, सताया हुआ होगा, वह लड़खड़ाते चलेगा, छाती तानकर और शिर उठाकर नहीं चलेगा। यहाँ सुगंध का लहराते निकलना, चीख़-पुकार काँपती आवाज़ में निकलना और धुँए का चक्कर देते हुए निकलना लड़खड़ाने, घबराने, की अवस्था का द्योतक है। क्यों ऐसा होता है? दोनों संभावनाएँ हैं। इसलिए कि सभा में तेरा व्यवहार सभी से कटु होता है या सब तुझको देखते रहना चाहते हैं, सभा से निकलना नहीं चाहते। मजबूर होकर निकलते हैं तब उदास, परेशान। बहुत नामी शैर है।

दिले—हसरतज़दः था मायदये-लज़्ज़ते-दर्द।
काम यारों का बक़द्रे लबो-दन्दा निकला॥

दिले-हसरत-ज़द:—अतृप्त-अभिलाषाओं से भरा हुआ मेरा हृदय दर्द—पीड़ा की लज़्ज़त—मिठास से एक मायदा-दस्तरख़ान था; विविध प्रकार की पीड़ाओं की मिठाइयों से सजा हुआ एक खाने का टेबल था। इससे मित्रों ने अपने लब—ओंठों और दन्दा—दाँतों के बक़्द्र—की शक्ति के अनुसार भोजन प्राप्त किया। तात्पर्य यह है कि मैं तो दुखी आदमी हूँ। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार मेरे मित्र मेरा दुख बँटवा लेते हैं।

ऐ नौआमोज़! फ़ना हिम्मते-दुश्वार पसन्द।
सख़्त मुश्किल है के यह काम भी आसाँ निकला॥

ऐ नौआमोज़—हे नौसिखिए, हे नए-नए प्रेमी फ़ना—मृत्यु ऐसे आदमी या प्रेमी को पसन्द करती है जिसकी हिम्मत दुश्वार हो—कम आदमियों में देखने में आती हो। तूने तो पहली कक्षा में प्रवेश करते ही मृत्यु को जीत लिया अर्थात् तू मर गया; और लोग तो वर्षों बाद जब रो-तड़फ कर उच्च कक्षा में पहुँच जाते हैं, तब मरते हैं। अब तेरे लिए सख़्त मुश्किल—बड़ी कठिनाई यह है कि मरने का काम ही जब तेरे लिए सरल निकल गया; पहली मंज़िल में सर हो गया तो अब आगे की मंज़िलों में तुझे इससे बड़े और कौन काम दिए जायँ!

दिल में फिर गिरिये ने इक शोर उठाया 'ग़ालिब'।
आह जो क़तरा न निकला था सो तूफ़ाँ निकला॥

गिरिया—आँसू पहले भी हृदय में शोर—हलचल मचाते रहे हैं। रोता भी रहा हूँ; फिर भी कुछ हृदय में शेष रह जाते थे या फिर से बन जाते थे। आज फिर से घुमड़ आये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आँसुओं का एक बचा हुआ क़तरा—बिन्दु ही क्यों न हो, वह इस बार ऐसे जोशो-ख़रोश से निकलेगा कि जैसे तूफ़ान ही आ गया है या प्रलय उपस्थित है।

[४]

धमकी में मर गया जो न बाबे—नबर्द था।
इश्क़े-नबर्द-पेशा तलबगारे मर्द था॥

जो न बाबे-नबर्द—युद्ध की हिम्मत रखने वाला नहीं था, वह धमकी ही में अर्थात् प्रेम की नाम-मात्र की चपेट में ही मर गया, प्रेम का मैदान छोड़कर भाग गया, क्योंकि इश्क़ नबर्द-पेशा—युद्ध-वादी था और तलबगार था—यह माँग करता था कि मर्द—वीर पुरुष ही मैदान में आये।

कबीरदास जी भी अपने धनी (आराध्य) के शूरवीर सैनिक का चित्र उपस्थित करते हैं—

'सूरा तब ही परखिये, लड़ै धनी के हेत।
पुरजा-पुरजा ह्वै परै, तऊ न छाँड़ै खेत॥'

था जिंदगी में मर्ग का खटका लगा हुआ।
उड़ने से पेश्तर भी मेरा रंग ज़र्द था॥

मर्ग—मृत्यु, पेश्तर—पहले, ज़र्द—पीला।

बड़ी बीमारी में या मृत्यु के क्षण में चेहरे का रंग उड़कर पीला पड़ जाता है। ग़ालिब कहते हैं कि उड़ने अर्थात् मरने के पहिले भी मेरा रंग पीला पड़ गया था, क्योंकि मैं आजन्म मृत्यु के खटके से अर्थात् अब आई—तब आई से सतर्क रहा; शरीर को क्षण-भंगुर जानकर ही मैंने जीवन व्यतीत किया।

× × ×

दिल—ता—जिगर के साहिले-दरियाये ख़ूँ है अब।
इस रह-गुज़र में जल्वये-गुल, आगे गर्द था॥

अब दिल एक साहिल—किनारा है, जिगर दूसरा। इन दोनों किनारों के बीच एक ख़ूँ—ख़ून की दरिया—नदी बह रही है परन्तु एक समय ऐसा भी था जब इस रह-गुज़र—रास्ते में ख़ून नहीं था, फूल खिले थे। आगे—पहले ऐसे फूल खिले थे जिनकी तुलना में जल्वये-गुल—फूलों का सौंदर्य गर्द था—धूल के समान था। हमने पहले अच्छे दिन भी देखे हैं।

जाती है कोई कशमकश अन्दोहे-इश्क़ की?
दिल भी अगर गया, तो वही दिल का दर्द था॥

अन्दोहे-इश्क़—प्रेम के दुख की कोई कशमकश—पीड़ा क्या कभी जाती है—समाप्त होती है? नहीं। यह सच है कि दिल गया, जिसके कारण प्रेम का

रोग लग गया था परन्तु वही—दिल का जाना ही अब दर्द हो गया। क्यों गया, कहाँ गया, कैसा होगा आदि।

अहबाब चारासाज़िये—वहशत न कर सके।
ज़िन्दाँ में भी ख़याल बयाबाँ-नवर्द था॥

अहबाब—दोस्त, वहशत—पागलपन की चारासाज़ी—दवा न कर सके। उन्होंने ज़िन्दाँ-जेल में बन्द कर दिया। सोचा कि कटघरे के भीतर अब क्या पागलपन करेगा। पर हम ऐसे हैं कि जेल में भी हमारे ख़्याल—विचार, बयाबाँ—वीरानियों में, उजाड़ में नवर्द थे—विचरते रहे। इस कारण हम जेल में भी पागल ही रहे। स्मरण रहे नबर्द—युद्ध है, नवर्द—भटकना; ज़िन्दा—जीवित, ज़िन्दाँ—जेल।

यह लाश बेकफ़न 'असदे'—ख़स्ता—जाँ की है।
हक़ मग़फ़रत करे, अजब आज़ाद मर्द था॥

आरम्भ में मिर्ज़ा 'असद' उपनाम से लिखते थे। बाद में किसी और कवि ने 'असद' उपनाम से लिखना शुरू कर दिया। तब मिर्ज़ा ने अपना 'ग़ालिब' उपनाम रखा। यह बात आगे भी ध्यान में रहे। यह बिना कफ़न की जो लाश पड़ी हुई है वह ख़स्ता-जाँ—सताये हुए 'असद' या 'ग़ालिब' की है। वह अजब आज़ाद मर्द—विचित्र स्वतंत्र पुरुष था। जब तक जीता रहा, समाज, धर्म आदि के बंधन नहीं माने। मरकर भी देखो, बेकफ़न पड़ा है, जो सामाजिक—धार्मिक नियमों के प्रतिकूल है। ऐसे औघड़ व्यक्ति को हक़—सत्य या ईश्वर मग़फ़रत करे—क्षमा करे, शांति प्रदान करे। महाकवि कल्पना करते हैं कि उनके स्वतंत्र विचारों के कारण लोग उनके प्रति इतने कटु हो गए हैं कि मरने पर उन्हें कफ़न भी न देंगे। ग़रीबी बहुत सताया की। मरने पर शायद कफ़न को भी कौड़ी न बचे।

[५]

दैर में नक़्शे-वफ़ा वजहे-तसल्ली न हुआ।
है ये वो लफ़्ज़ जो शरमिन्दए—मानी न हुआ॥

दैर—दुनिया में नक़्शे-वफ़ा—वफ़ा शब्द का लिखित रूप-मात्र; 'ईमानदारी' शब्द की केवल कागज़ पर बनावट, वजहे-तसल्ली—संतोष का कारण नहीं हुई। यह लफ़्ज़—शब्द ऐसा निकला कि शरमिन्दए—मानी—मेरा लिखित रूप क्या है और मेरा असली अर्थ क्या है, इसकी तुलना करके इसने कभी लज्जा का अनुभव नहीं किया। दुनिया में वफ़ा नाम की चीज़ नहीं रह गई, इस बात को मिर्ज़ा ने अपने निराले ठाठ से कहा है। महाकवि 'मोमिन' उसी भाव को सीधे-सीधे प्रगट करते हैं :—

किससे निबाहिए के सिवाए वफ़ात के।
दुनिया में हाय नाम वफ़ा का नहीं रहा॥

सिवाए-वफ़ात—मृत्यु के अतिरिक्त, केवल मृत्यु तो वफ़ा करती है, अन्य कोई नहीं।

एक ऐसा शैर छोड़ा जाता है जिसमें माशूक़ की दाढ़ी की तारीफ़ की गई है। उर्दू के बहुत से कवियों ने की है, जबकि स्वयं को विरही माना है, विरहिणी नहीं। कारण, स्वर्ग में अप्सराएँ भर नहीं सुन्दर लड़के भी हैं, जिनकी दाढ़ी-मूछ भी निकलने लगी है और अपनी तारीफ़ का तक़ाज़ा करती है। हमें तो महाकवि से वही लेना है जो हिन्दी को ग्राह्य हो।

मैंने चाहा था के अन्दोहे-वफ़ा से न छूटूँ।
वो सितमगर मेरे मरने पे भी राज़ी न हुआ॥

अन्दोह—दुख। वफ़ा-ईमानदार या सच्चे प्रेमी का जीवन व्यतीत करने में बहुत दुख सहना पड़ता है। मैंने कहा इस दुख से छूटने के लिए मुझे मर ही जाने दे, विष पीकर या और किसी तरह। पर वह सितमगर—ज़ुल्म करने वाला इस बात पर भी तैयार नहीं हुआ। लाचार जिये जा रहे हैं और सहे जा रहे हैं।

× × ×

हूँ तेरे वादा न करने पे भी राज़ी;—के कभी।
गोश मिन्नतकशे—गुलबाँगे—तसल्ली न हुआ॥

माशूक़ को मिलन का वादा तो करना ही नहीं था। वादा करता भी तो झूठा। और प्रतीक्षा का दुख उठाना पड़ता। ऐसी परिस्थिति में मिर्ज़ा ने सोचा कि हम अपनी ही हेकड़ी क्यों न दिखा दें? कहते हैं कि हम राज़ी है, खुश हैं कि तूने वादा नहीं किया। कारण कि कभी हमारे गोश—कान मिन्नतकश नहीं—यह भिक्षा नहीं चाहते कि उन्हें तसल्ली देने वाली—सुख पहुँचाने वाली गुलबाँग—मधुर आवाज़ सुनाई दे। वादे की बात मधुर सुनाई पड़ती। हम झूठे वादे का यह छोटा-सा भी अहसान क्यों लें?

किससे महरूमिए—क़िस्मत की शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जायँ, सो वो भी न हुआ॥

महरूमिये-किस्मत—किस्मत का न होना, अर्थात् दुर्भाग्य का रोना किससे रोएँ जब मृत्यु तक ने ख़बर न ली।

मर गया सदमये-यक जुम्बिशे-लब से 'ग़ालिब'।
नातवानी से हरीफ़े—दमे—ईसा न हुआ॥

यक—एक; सदमा—धक्का या झटका; लब—ओंठ; जुम्बिश—हिलना या फड़कना; नातवानी—दुर्बलता; हरीफ़—सामना या मुक़ाबला; दम-साँस, यहाँ फूँक; ईसा—ईसा मसीह जो मरीज़ों को अच्छा करते थे।

नज़ाक़त मुलाहज़ा हो। मैं मर रहा था। मेरे मसीहा अर्थात् माशूक़ को ख़बर लग गई। वह आया। उसने मंत्र पढ़कर फूँका कि मुझमें नवजीवन आ जाय। मंत्र पढ़ने के लिए उसके ओंठ हिले। ओंठ हिलने से या तो हवा का धक्का लगा या मान लीजिए कि उसकी सुन्दरता को ज्वार आ गया और ज्वार ने धक्का पैदा किया। मैं इतना दुर्बल हो गया था कि इस धक्के से ही प्राण-पखेरू उड़ गये। मंत्र पढ़ने के बाद उसकी फूँक का सामना करने या सहने की ताक़त मुझमें न रह गई, अन्यथा मुझमें फिर से नवजीवन आ जाता। अपराध मेरा ही रहा। वह तो अंत समय मुझे बचाने आ ही गया था।

[६]

इस ग़ज़ल में पहले दो शेर बादशाह और उनकी महफ़िल की प्रशंसा में हैं। इसलिए वे छोड़ दिये गये हैं।

गरचे हूँ दीवाना, पर क्यों दोस्त का खाऊँ फ़रेब।
आस्तीं में दश्ना पिनहाँ, हाथ में नश्तर खुला॥

गरचे—यद्यपि मैं दीवाना हूँ पर यह धोखा (फ़रेब) क्यों खाऊँ कि वह व्यक्ति, जो हाथ में तो खुला हुआ नश्तर अर्थात् घाव की चिकित्सा करने वाला चाकू लिये हुए है, परन्तु आस्तीन में दश्ना—छुरी पिनहाँ-छिपाये हुए है, कि मौका मिले और भोंक दूँ; मेरा दोस्त है।

गो न समझूँ उसकी बातें, गो न पाऊँ उसका भेद।
पर ये क्या कम है कि मुझ से वह परी-पैकर खुला॥

वह परी-पैकर खुला अर्थात् वह सुन्दरी मेरे पास उठने-बैठने, मुझसे बोलने-बताने तो लगी, यही क्या कम है। गो—यद्यपि अभी उसकी बातें उलझी हुई हैं, उसकी मंशा प्रगट नहीं हुई है, कोई हर्ज़ नहीं। आगे होगी। अभी इतने से ही संतोष है कि—

'पान खिलावन की मिस सों, पर्यंक के पास लौं आन लगी है।'

× × ×

मुँह न खुलने पर है वो आलम के देखा ही नहीं।
ज़ुल्फ़ से बढ़कर नक़ाब उस शोख़ के मुँह पर खुला॥

आलम—हाल। के देखा ही नहीं—कि जिसकी कोई तुलना ही नहीं। ज़ुल्फ़—केशराशि भी काली और नक़ाब भी काला, इसलिए नक़ाब उस शोख़—चंचला के मुँह पर ज़ुल्फ़ से भी बढ़ कर खिल रहा है। तात्पर्य यह है कि सौंदर्य छन-छन कर बाहर आ रहा है। यथाः

'छिप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल चीर।
मनौ कलानिधि झलमले, कालिन्दी के नीर ॥ बिहारी

हज़रत 'असग़र' गोंडवी भी कहते हैं—

मैं इज़्तेराबे-शौक़ कहूँ या जमाले-दोस्त।
इक बर्क़ है जो कौंद रही है नक़ाब में।

नक़ाब पर एक बर्क़—बिजली सी कौंद रही है—चमक रही है। अब मैं यह नहीं कह सकता कि वह बिजली इज़्तेराबे-शौक़—मेरी दर्शन लालसा की तड़फ है या दोस्त—प्रियतम के जमाल— सौंदर्य का प्रतिबिंब है।

दर पे रहने को कहा और कह के कैसा फिर गया।
जितने अरसे में मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला ॥

माशूक़ का चुलबुलापन बतलाया है कि एक क्षण तो कह दिया कि भीतर तो नहीं पर दर्वाज़े पर पड़े रहो और जब तक बिस्तर खोलूँ-खोलूँ तब तक मुकर गया और मुझे फिर बाँधना व रास्ता नापना पड़ा।

क्यों अँधेरी है ? शबे-ग़म है बलाओं का नज़ूल।
आज उधर ही को रहेगा दीदए-अख़्तर खुला ॥

इतना अंधकार क्यों है ? इसलिए कि आज शबे-ग़म विरह की रात है और आसमान से मुझ पर बलाओं—पीड़ाओं की नज़ूल—सेना उतर रही है। उसको देखने के लिए अख़्तर सितारे अपना दीद—अपनी आँखें पृथ्वी की तरफ न रख कर उधर—ऊपर की तरफ किए हैं और बलाओं की फ़ौज का तमाशा देख रहे हैं। इसलिए इधर अँधेरा है।

क्या रहूँ ग़ुरबत में खुश, जब हो हवादिस का ये हाल।
नामा लाता है वतन से नामाबर अक्सर खुला ॥

देश से दुखी होकर तो मैं ग़ुरबत—मुसाफ़रत अर्थात् परदेश में गया पर वहाँ भी सुख कहाँ ! हवादिस—मुसीबतें वहाँ भी पीछा किये हुए हैं। नामाबर—डाकिया वतन का—देश का जो नामा—पत्र लाता है, वह खुला

लाता है। जब किसी की मृत्यु की सूचना देनी होती थी तो पत्र खुला भेजा जाता था। अर्थात् प्रत्येक पत्र में किसी आत्मीय की मृत्यु की सूचना रहती है। परदेश में भी .खुश क्या रहूँ ?

× × ×

[७]

बस्के दुश्वार है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना ॥

बस्के—बहुत, दुश्वार है—कठिन है, हर काम का, चाहे वह बड़ा काम हो या छोटा काम हो आसाँ होना—सरल होना। उदाहरण के लिए आदमी को ही ले लीजिए। आदमी तो वह है; दो हाथ हैं, दो पैर हैं आदि। पर उसे सरलता से यह मयस्सर—प्राप्य या साध्य नहीं कि वह इन्साँ—यथार्थ मानव हो जाय। यथार्थ मानव का स्थान, स्वयं मिर्ज़ा के शब्दों में, देवदूत से भी श्रेष्ठ है।

'हमने माना हो फ़िरिश्ते शेख़ जी।
आदमी होना बहुत दुश्वार है॥'

यहाँ 'आदमी' शब्द यथार्थ मानव के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसे पहले शैर में 'इन्सान' कहा है।

गिरिया चाहे है ख़राबी मेरे काशाने की।
दरो-दीवार से टपके हैं बियाबाँ होना॥

गिरिया—मेरा रुदन यह चाहता है कि मेरा काशाना—घर ख़राब हो जाय, बर्बाद हो जाय। जान पड़ता है कि उसकी मंशा पूरी होने वाली है क्योंकि मेरे घर के दरो-दीवार—दर्वाज़े और दीवालें अभी से बियाबाँ—वीराना या जंगल बन जाने के लक्षण प्रगट कर रही हैं। टपके है—प्रगट हो रहा है के लिए अलंकारिक प्रयोग है और रुदन में आँसू भी टपकते हैं इसलिए अभिव्यंजना सुन्दर हो उठी है।

वाये दीवानगिये-शौक़ के हरदम मुझको।
आप जाना उधर और आप ही हैराँ होना॥

वाये—अफ़सोस कि दीवनगिये-शौक़—प्रेम के उन्माद में हरदम मुझे अपने-आप उधर अर्थात् प्रेमिका की गली में जाना और दर्शन प्राप्त न होने के कारण अपने आप हैरान होना-रोना पछताना पड़ता है।

'हरदम' का अर्थ है हर साँस। हर साँस तो प्रेमिका की गली में नहीं जाया जा सकता। तब अर्थ यह होता है कि हर साँस हरिदर्शन की इच्छा करना और निराश होना और पछताना कि कहाँ प्रभु !

× × ×

इशरते-क़त्लगहे अहले-तमन्ना मत पूछ।
ईद नज़्ज़ारा है शमशीर का उरियाँ होना॥

इशरत—ख़ुशी, अहले-तमन्ना—उन सब की जो हृदय में अभिलाषायें लिये हुए हैं अर्थात् आशिक़ों की क़त्लगह—वध-स्थल में क्या है, कितनी है, यह मत पूछ। उस ख़ुशी का वर्णन ही नहीं। इतने ही से समझ जा कि माशूक़ की शमशीर-तलवार का उरियाँ होना—म्यान से बाहर निकलना उनके लिये वही नज़्ज़ारा—दृश्य उपस्थित करता है जो ईद के चाँद के देखने में उपस्थित होता है। ईद के चाँद का आकार भी तलवार के सामान होता है और यह भी प्रथा है कि उसे देखने के बाद लोग तलवार देखते हैं।

× × × ×

इशरते—पारए-दिल ज़ख़्मे-तमन्ना खाना।
लज़्ज़ते—रीशे—जिगर ग़र्क़ नमकदाँ होना॥

पारए-दिल—दिल के टुकड़े-टुकड़े की इशरत—ख़ुशी है तमन्ना—अभिलाषाओं (अपूर्त) के ज़ख़्म—घाव खाना। और जिगर—कलेजे के रीश—घाव को लज़्ज़त—मिठास तब मिलती है जब वह नमकदाँ—नमक में ग़र्क़—डूब जाता है। जितना ही अधिक नमक छिड़का जाय उतना ही उसे आनन्द आता है, जब कि घाव पर नमक छिड़कने की क्रिया अधिक दुःख पहुँचाने के लिए होती है।

की मेरे क़त्ल के बाद उसने जफ़ा से तौबा।
हाय उस ज़ूदे—पशेमाँ का पशेमाँ होना॥

व्यंग है। आ हा ! वह ज़ूदे—जल्दी पशेमाँ—पछताने या शर्मिन्दा होने वाला कैसी जल्दी शर्मिन्दा हुआ है कि इधर मेरी गर्दन उड़ाई उधर प्रतिज्ञा की कि अब किसी पर जफ़ा—अत्याचार, या किसी को क़त्ल नहीं करेंगे। सचमुच बहुत जल्दी की !!

हैफ़ उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत 'ग़ालिब'।
जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेबाँ होना॥

गरेबाँ—कुर्ते के गले के कपड़े को कहते हैं। 'दामन' भी याद रखिए—बहुत आयेगा—कुर्ते के सामने का पल्लो, जिसका पर्याय हमारे यहाँ अंचल है।

जिस चार गिरह अर्थात् छोटे से कपड़े के भाग्य में आशिक़ का गरेबाँ होना लिखा है, उसके भाग्य पर हैफ़—अफसोस। कारण कि या तो आशिक़ उसे उन्माद में फाड़ देगा या माशूक़ खिलवाड़ में। हर हालत में उस हतभागे को फटना है।

मिर्ज़ा दाँव बदकर पाँसा खेल रहे थे। कोतवाल से दुश्मनी थी। उसने छः महीने की जेल करवा दी, जो बाद में ३ महीने की रह गई। यों तो भोजनादि घर से जाता था, पर कष्ट तो था ही। मिर्ज़ा कहते हैं कि उनके कपड़ों में जूँ पड़ गई थीं। जिस रोज़ जेल से निकले हैं, उपरोक्त शैर पढ़कर गरेबाँ फाड़ दिया।

[८]

दोस्त ग़मख्वारी में मेरी सई फ़र्माएँगे क्या ?
ज़ख्म के भरने तलक नाख़ुन न बढ़ आएँगे क्या ?

मित्रगण मेरी ग़मख्वारी में; दुख को हलका करने में, भला क्या सई—

सहायता फ़र्माएँगे—पहुँचाएँगे ? इतना ही न कि मरहम-पट्टी करते-करते मेरे घाव भर जाएँ ? पर जब तक घाव भरने को आएँगे, तब तक मेरे नाख़ून फिर से बढ़ जाएँगे और नोंच-नाच कर घावों को फिर से जैसे का वैसा कर लूँगा। अतएव मित्रों की सहायता व्यर्थ ही जायगी। इसलिए सहायता करने का प्रयत्न न करें यही अच्छा है।

बेनियाज़ी हद से गुज़री, बन्दापरवर ! कब तलक।
हम कहेंगे हाले-दिल और आप फ़र्माएँगे, 'क्या' ?

बेनियाज़ी—अकृपा, हद से गुज़री—सब सीमाएँ पार कर गई, बन्दा—दास, परवर—रक्षक। कब तक हम अपना रोना रोते रहेंगे और आप इस तरह 'क्या' कह देंगे जैसे कुछ सुना ही नहीं।

हज़रते-नासह गर आएँ, दीद-ओ-दिल फ़र्शे-राह।
कोई मुझको यह तो समझा दो, के समझाएँगे क्या ?

हज़रत—श्रीमान, नासह—समझाने वाले, उपदेश देने वाले कि इश्क़ की राह छोड़ो, यदि आएँ तो दीद-ओ-दिल—आँखें और दिल मैं फ़र्शे-राह—रास्ते पर फ़र्श की तरह बिछा दूँगा। पर मैं राह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हूँ। तब वे क्या ख़ाक-पत्थर समझाएँगे, यह तो कोई मुझ को समझाओ।

आज वाँ तेग़ो-कफ़न बाँधे हुए जाता हूँ मैं।
उज़्र मेरे क़त्ल करने में वो अब लाएँगे क्या ?

किसी दिन कह देते हैं—आज तलवार ठीक नहीं है, फिर किसी दिन आना तो गर्दन उतार देंगे। कभी कहते हैं तलवार तो है, पर कफ़न नहीं है—मारेंगे तो कम-से-कम कफ़न तो देना पड़ेगा। फिर किसी दिन आना। आज मैं स्वयं पूरी तैयारी के साथ जाता हूँ, अब भला क्या उज़्र—बहाना बनाएँगे। मैं स्वयं तलवार और कफ़न लेकर जा रहा हूँ।

गर किया नासेह ने मुझको क़ैद, अच्छा यों सही।
ये जुनूने-इश्क़ के अन्दाज़ छुट जाएँगे क्या ?

क़ैद में भी मैं जुनूने-इश्क़—प्रेम के पागलपन के अंदाज़—पैंतरे अर्थात्

रोना, चीख़ना, बाल खींचना, बदन नोंचना आदि नहीं छोड़ूँगा। फिर नासह—उपदेशक ने मुझे जेल में रख दिया तो क्या फ़ायदा?

ख़ानाज़ादे—ज़ुल्फ़ हैं, ज़ंजीर से भागेंगे क्यों?
हैं गिरफ़्तारे-वफ़ा, ज़िन्दाँ से घबराएँगे क्या?

हमको ज़ंजीर या साँकल से बाँधोगे न! बाँध लो। हमें कोई डर नहीं। हम तो ज़ुल्फ़ (लट) रूपी साँकल से यूँ ही बँधे हुए हैं, ख़ानाज़ाद हैं। उसी तरह ज़िन्दाँ या जेल से भी नहीं डरते, क्योंकि गिरफ़्तारे-वफ़ा हैं, प्रेम की सचाई में क़ैद हैं।

है अब इस मामूरे में क़हते-ग़मे-उल्फ़त 'असद'।
हमने यह माना के दिल्ली में रहें, खाएँगे क्या?

मामूरा—शहर; ग़मे-उल्फ़त—प्रेम की पीड़ा का क़हत—अकाल। दिल्ली में ऐसे कोई नहीं रह गए जिनसे प्रेम किया जाय। जब प्रेम ही नहीं करेंगे तब प्रेम की पीड़ा कैसे होगी? जब प्रेम की पीड़ा ही नहीं होगी तब हम जिएँगे कैसे? लोग अन्न खाकर जीते हैं, हम तो प्रेम की पीड़ा खाकर जीते हैं, जिसका दिल्ली में अकाल पड़ गया है। अब यहाँ रह कर खाएँ तो खाएँ क्या? सन् ५७ की क्रांति के समय दिल्ली उजड़ गई थी। जो घर से निकलता, अँगरेज़ उसे गोली मार देते थे। स्वयं मिर्ज़ा के भाई को गोली मारी गई थी। जहाँ भाई-भाई का मिलना भी न हो सके, वहाँ कोई कैसे रहे? उसी समय का यह शैर है।

[६]

यह महाकवि की बहुत मीठी और बड़ी सारगर्भित ग़ज़ल है। इस 'यार' क़ाफ़िया और 'होता' रदीफ़,' व इसी छन्द में, मिर्ज़ा के अनुगमन में, न जाने कितने कवियों ने कितनी ग़ज़लें लिखी हैं:

ये न थी हमारी क़िस्मत के विसाले-यार होता।
अगर और जीते रहते, यही इंतेज़ार होता॥

यह हमारी क़िस्मत—हमारे भाग्य में नहीं लिखा था कि यार—प्रिय का विसाल—मिलन हो। मर गए, अच्छा ही हुआ। अगर और जीते ही रहते, तो क्या करते? यही इंतेज़ार—प्रतीक्षा करते रहते कि प्रिय अब आता है, तब आता है। यह दिन-रात की प्रतीक्षा तो मरने से भी अधिक कष्टप्रद होती।

तेरे वादे पर जिए हम, तो ये जान झूठ जाना।
के ख़ुशी से मर न जाते अगर ऐतबार होता॥

कभी भाग्यवश या संयोगवश आमना-सामना हो गया और उनके जी में कुछ ऐसी आई कि कह बैठे—'अच्छा, ग़ालिब! आज रात की रही।' इसके बाद कौन आता है और कौन जाता है? दो-चार-दस दिन बाद फिर तक़दीर ने ज़ोर मारा तो मुठभेड़ हो गई; शरारत से बोले—'कहो, मिर्ज़ा! उस रोज़ कैसा बुद्धू बनाया?' तब कहते हैं कि हम जानते थे—तू नहीं आयगा। यदि तू यह समझता है कि तेरे वादे पर ऐतबार—विश्वास करके, तेरे आने की आशा में हम जीवित रह गऐ तो तू ग़लती करता है। यदि तेरे वचन पर हमें विश्वास आ जाता तो इतनी ख़ुशी होती कि वहीं, तेरे वादा करते ही, हम ख़ुशी के मारे दम तोड़ देते। आज तेरा ताना सुनने के लिए जीते नहीं रहते।

वादा और वादा पूरा न करने पर उर्दू-काव्य में इतना लिखा गया है कि अनेक पुस्तकें भर जायँ। सब अपने-अपने ठाठ से कहते थे। ज़रा मिर्ज़ा के समकालीन 'मोमिन' का रंग देखिए।

'ये उज़रे-इम्तेहाने-जज़्बे-दिल कैसा निकल आया?
मैं इल्ज़ाम उसको देता था, क़ुसूर अपना निकल आया॥'

उन्होंने किया वादा। काहे को आएँ? हमने तड़प-तड़प कर रात काटी। सबेरा हुआ। हम चले कि विश्वासघात पर उन्हें कुछ खरी-खोटी सुना आएँ। सामना हुआ। हम कुछ कहें-न-कहें, उसके पहले ही वे बफर पड़े—"देखो, मोमिन! हम रात भर जागते रहे। हम यही पढ़ते-सुनते आए हैं कि प्रेमी की आह में बड़ा असर होता है। जैसे—'मेरी आह का तुम

असर देख लेना। वो आएँगे थामे जिगर देख लेना।' हम रात भर देखते रहे कि अब 'मोमिन' की आह आती है, तब आती है जो कच्चे धागे से हमको बाँध कर खींच ले जाएगी ('कच्चे धागे से बँधे आएँगे सरकार चले')। पर क्यों आने लगी तुम्हारी आह ! तुम बड़े रद्दी क़िस्म के आदमी, या प्रेमी, या कवि हो। चलो, हटो तो सामने से।'' मैं उनको इल्ज़ाम—दोष देने गया था और दोष मेरा ही निकल आया कि मेरे दिल के जज़्बे—भाव में कोई दम नहीं है। इस इम्तेहान—परीक्षा में उनको उज्र है—आपत्ति है अर्थात् परीक्षा में मैं बिलकुल फेल हो गया।

यह राह देखते सबेरा करना, महाकवि बिहारी के मुख से भी सुनिए :—

'नभ लाली, चाली निशा, चटकाली ध्वनि कीन।
रतिपाली, आली ! अनत, आए बनमाली न ॥'

अब मिर्ज़ा एक क़दम और आगे बढ़ते हैं। वे कहते हैं कि वचनपूर्ति-अपूर्ति में न तेरा दोष, न मेरा दोष। जिस का दोष है, वह देखिए :—

तेरी नाज़ुकी से जाना के बँधा था अहद बोदा।
कभी तू न तोड़ सकता, अगर उस्तवार होता॥

तेरी नाज़ुकी—कमनीयता से जाना—मैंने जान लिया कि अहद—वचन बोदा—कमज़ोर या कमनीय बंधन से बँधा था। यदि वह उस्तवार—मज़बूत बंधन से बँधा होता तो तू उसे कभी तोड़ नहीं सकता था। सीधी बात है—लैला प्यारी तो लैला का कुत्ता भी प्यारा; लैला नाज़ुक तो लैला का वादा भी नाज़ुक। सब तेरी कमनीयता का दोष है, न मेरा न तेरा। प्रियतमा के झूठेपन की रक्षा कैसी सुन्दरता से कर दी।

कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीर नीम—कश को।
ये ख़लिश कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता॥

बहुत मशहूर शैर है। इसकी बराबरी करने की बहुतों ने कोशिश की। कुछ शैर आगे उद्धृत हैं। पाठक स्वयं निर्णय करें।

कहते हैं तेरा तीर जो नीम—आधा कश-खिंचा हुआ था, वह छूटा। तीर हैं पलकें। कमान हैं भौहें। आधे खिंचे हुए हैं—अर्धोन्मीलित नयन। इस तीर के खाने से जो आनन्द आया है, वह कोई मेरे दिल से पूछे। आहा ! वह तीर

कलेजे में चुभकर रह गया और लगातार मुझे ख़लिश—चुभन का आनन्द दे रहा है। यदि ज़ोर से छोड़ा जाता और जिगर के आर-पार हो जाता, तब तो मैं मर जाता; यह निरंतर आनन्द कहाँ से उठा पाता?

महाकवि 'दाग़' कहते हैं :—

'जो निगाह की थी ज़ालिम, तो फिर आँख क्यों चुराई?
वही तीर क्यों न मारा, जो जिगर के पार होता ॥'

महाकवि 'अमीर' कहते हैं :—

'तेरा नावके—दोपैकाँ, मेरी जाँ, मज़ा तो तब था।
कभी डूबता जिगर में, कभी दिल के पार होता ॥'

नावक—तीर, दोपैकाँ—दो फला क्योंकि दो आँखें हैं।

इन महाकवि का नाम मुझे नहीं मालूम :—

'तेरे तीर की ख़ता क्या, मेरी हसरतों ने रोका।
न लिपटतीं ये बलाएँ, तो जिगर के पार होता ॥'

ख़ता—दोष। हसरतों ने—लालसाओं ने।

इन महाकवि का नाम भी मुझे नहीं मालूम :—

'तेरा तीर रह गया है, मेरे दिल में हो के अरमाँ।
मैं तड़प के मर न जाता, जो जिगर के पार होता ॥'

अरमाँ—अरमान, लालसा।

ये कहाँ की दोस्ती है के बने हैं दोस्त नासह।
कोई चारासाज़ होता, कोई ग़मगुसार होता ॥

यह कौन-सी मित्रता है कि सब दोस्त एक साथ नासह—उपदेशक बन गए हैं। उपदेश देते हैं कि प्रेम करना छोड़ दो। ऐसा कड़ुआ उपदेश तो दोस्त नहीं दुश्मन देते हैं। इससे अच्छा होता कि उनमें से कोई या कुछ चारासाज़—दवादारू करने वाले होते, कुछ ग़मगुसार—दुख बाँट लेने वाले होते।

रगे-संग से टपकता, वो लहू के फिर न थमता।
जिसे ग़म समझ रहे हो—ये अगर शरार होता॥

रगे—लकीर, संग—पत्थर अर्थात् पत्थर में बनी लकीरें, जो नसों के समान हैं। शरार—आग।

पत्थर में आग छिपी हुई है। चकमक पत्थर से अब भी आग सुलगाई जाती है। यदि पत्थर की छिपी आग में उतनी ही जलन होती, जितनी हमारे भीतर छिपी हुई है और जिसे तुम ग़म—दुख-मात्र समझ रहे हो, तो पत्थर की नसों से भी इतना लहू टपकता कि फिर बन्द ही न होता। यह तो हमारी ही पत्थर से भी समान कठोर छाती है कि एक शरार—आग छिपाए और रक्त की एक अजस्र धारा रोके रहते हैं कि इसके बहने से लोग यह न जान जायँ कि हम तुम पर आशिक़ हैं और यह भेद खुलने से तुम्हारी बदनामी फैल जाय।

ग़म अगरचे जाँ-गुसल है, ये कहाँ बचे के दिल है।
ग़मे-इश्क़ गर न होता, ग़मे-रोज़गार होता॥

ग़म—दुख अगरचे—यद्यपि जाँ-गुसल—प्राण को घुलाने वाला है, तथापि ये—यह आशिक़ दुख से कैसे बच सकता है, जब उसके पास उसका दिल है, जो बिना विरहाग्नि के व्याकुल रहता है। यह अच्छा हो है कि वह इस दुख से तड़फता रहता है क्यों कि ग़मे-इश्क़—प्रेम का दुख न होता, तो ग़मे-रोज़गार—उसे संसार के दुख होते, जिनके सामने विरहाग्नि तो एक शीतलता है।

कहूँ किससे मैं के क्या है, शबे-ग़म बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता॥

ग़म—विरह की शब—रात बुरी बला है—बड़ी भयानक चीज़ है, यह मैं किस से कहूँ, किसे समझाऊँ। इतना ही जान लो कि विरह-रात्रि में क्षण-क्षण मरना होता है। मुझे एक बार मरना होता तो क्या बुराई थी। आँखें फूटी पीर बुझानी। इस क्षण-क्षण मरने से तो बचता।

हुए मर के हम जो रुसवा, हुए क्यों न ग़र्क़े-दरिया।
न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता॥

जीते थे तो अपना दुख-सुख छिपाए एक कोने में पड़े रहते थे। मर के तो हम रुसवा—बदनाम हो गए। न तो कोई हमारा जनाज़ा—शव उठाने को तैयार है, न कोई मज़ार—क़ब्र बनाने को तैयार है। इससे अच्छा होता कि हम दरिया—नदी या समुद्र में ग़र्क़ होकर—डूबकर मर जाते। न लाश ढोने की ज़रूरत पड़ती, न क़ब्र बनाने की, न यह बदनामी होती।

उसे कौन देख सकता के यगाना है वो यकता।
जो दुई की बू भी होती तो कहीं दो-चार होता॥

उसे कौन देख सकता है? वह यकता—अनुपम है—उसके समान दूसरा नहीं है। जब कोई दूसरा नहीं है तो वह यगाना—एक है। जहाँ किसी ने देखा तो दो हो जाएँगे—एक वह और एक देखने वाला। इस तरह दुई—दो की बू—गंध आने लगेगी—एकीश्वरवाद की जगह में द्वैतवाद हो जायगा। और एक से दो हुए तो दो से चार भी हो सकते हैं। यह शैर 'एकोब्रह्म द्वितीय नास्ति' दर्शन को प्रतिपादित करता है। यदि कोई उसे देख भी लेता है तो स्वयं 'वह' हो जाता है—'जानत तुमहि, तुमहिं है जाई।' दो कभी नहीं होने पाते।

ये मसायले-तसव्वुफ़, ये तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली समझते, जो न बादाख़्वार होता॥

लोग मिर्ज़ा की कविता की प्रशंसा में अक्सर यह मिसरा पढ़ते हैं—"कहते हैं के 'ग़ालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और।" यह उनकी कविता की आधी प्रशंसा है। पूरी परिभाषा उक्त शैर में है कि 'ग़ालिब' तेरा बयान—तेरी अभिव्यंजना का चमत्कार तो है ही; उसके साथ तेरी तसव्वुफ़—सूफ़ियानी या दार्शनिक मसायल—समस्याओं को प्रस्तुत करने की शक्ति भी है कि ईश्वर एक है, दो हैं या अधिक हैं। तेरी इन दोनों विशेषताओं के कारण तुझे हम वली—पहुँचा हुआ व्यक्ति समझते परन्तु अफ़सोस कि तुझ में

यह दुर्गुण है कि तू बादाख़्वार—शराबी, मद्यपी है। यदि तू शराबी न होता तो वली समझा जाता।

मुशायरे में बादशाह ने जब यह शैर सुना तो कहा—'भई हम तो तब भी न समझते।' मिर्ज़ा ने तुरन्त उत्तर दिया—'हुज़ूर तो अब भी समझते हैं।' फिर कुछ सोच कर कहा—'मैंने अपने दुर्गुण का उल्लेख इस भय से किया है कि कहीं मुझको अपनी कविता का घमंड न आ जाय।'

[१०]

हवस को है निशाते-कार क्या-क्या।
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या॥

हवस—हौसलों को कार—काम करने की अर्थात् अपनी पूर्ति करने की क्या-क्या-बहुत-बहुत निशात—उमंगें हैं। क्यों? इसलिए कि मौत सिर पर खड़ी है। यदि मनुष्य अमर हो जाय तो शायद कुछ काम ही न करे; जैसे उस काम को अक्सर वह टालता रहता है, जिसके लिए वह समझता है कि उसके पास पर्याप्त समय है। अमर हो जाय तो समय ही समय है। फिर क्यों कोई काम करे। मृत्यु है इसीलिए जीने का मज़ा अर्थात् यह काम-धाम, चहल-पहल है। अन्यथा एक घोर मनहूसी छाई रहती।

तजाहिल पेशगी से मुद्दआ क्या?
कहाँ तक ऐ सरापानाज़! क्या? क्या?

तजाहिल पेशगी—जान-बूझकर अनजान बनने से तुम्हारा मुद्दआ—मतलब क्या है? ऐ सरापानाज़—हे नख से शिख तक कमनीय! कहाँ तक—कब तक मैं अपना दुखड़ा रोता रहूँगा और तुम जान बूझकर मुझको यह कह कर टालते रहोगे कि क्या कहा? क्या कहा? फिर से कहो। दया करो! नख से शिख तक की सब नज़ाकत मेरे ही ऊपर मत उड़ेल दो।

नवाज़िशहाय बेजा देखता हूँ।
शिकायतहाय रंगीं का गिला क्या॥

नवाज़िश—कृपा, हाय लगा देने से बहुवचन हो गया। मैं देखता हूँ कि तुम (प्रतिद्वंदियों पर) बेजा—अनुचित कृपायें उड़ेले जा रहे हो और इसकी तुमसे शिकायतें तो करता हूँ पर बड़ी रंगीन अर्थात् मीठी, मुहब्बत से भरी। मगर एक तुम हो कि इन मीठी शिकायतों पर भी गिला करते हो, बुरा मान जाते हो। क्या यह उचित है, या यह उचित है कि सब कृपा उधर न उड़ेल कर कुछ इधर भी आने दो।

निगाहे-बेमहाबा चाहता हूँ।
तग़ाफ़ुलहाय तमकीं आज़मा क्या?

बेमहाबा—बिना झिझक की निगाह—चितवन से मुझे देखो, यह चाहता हूँ। तग़ाफ़ुल—जिसमें ग़फ़लत हो। हाय से तग़ाफ़ुल का बहुवचन। ग़फ़लत भरी निगाहों से अर्थात् मुझे अवहेलना की दृष्टि से देखकर मेरे तमकीं—धैर्य की आज़माइश—परीक्षा क्यों ले रहे हो? एक बार नज़र भर कर देख लो, मैं तड़पकर दम तोड़ दूँ। क़िस्सा तमाम हो।

फ़रोग़े-शोलए-ख़स यक नफ़स है।
हवस को पासे-नामूसे—वफ़ा क्या?

शोलए-ख़स=जलते हुए तिनके की फ़रोग़=रोशनी यक नफ़स है, केवल क्षण भर की है। इसी तरह हवस—(यहाँ) प्रतिद्वन्दी का प्रेम है। प्रतिद्वन्दी वफ़ा—सचाई के नामूस-सम्मान या महत्व का पास, की लाज या मर्यादा क्या जाने? वह तो हवस पूरी करना चाहता है, बुलहवस-कामुक है। सावधान।

नफ़स मौजे-मुहीते—बेख़ुदी है!
तग़ाफ़ुलहाय साक़ी का गिला क्या?

नफ़स—प्रत्येक साँस, बेख़ुदी—आत्म-विस्मरण की मौज=लहर से मुहीत—घिरी हुई है। अर्थात् हम यों ही बिलकुल मस्त हैं; प्रेम-प्याला पीकर। साक़ी हमारी अवहेलना करता है तो हमें कोई शिकायत नहीं। शराब देता तो मस्ती ही तो आती। यहाँ तो साक़ी को देखकर ही साँस-साँस में मस्ती भर गई है।

× × ×

दिले हर क़तरा है साज़ो-अनलजर।
हम उसके हैं; हमारा पूछना क्या॥

हर क़तरा—बिन्दु का दिल 'अनलजर'—मैं सिन्धु हूँ का साज़—राग है। मिलने भर की देर है कि सिन्धु हुआ। इसी तरह यद्यपि हम अंश हैं, पर हैं किसके ! उसके। हमारा पूछना क्या—अजी हमारे ठाठ के क्या कहने! मिलने भर की देर है।

मुहाबा क्या है, मैं ज़ामिन, इधर देख!
शहीदाने—निगह का खूँ—बहा क्या?

मुहाबा-भय क्या है? मैं ज़िम्मेदार हूँ कि तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। तू मेरी तरफ़ देख तो। यदि मैं शहीदाने-निगह—नयनबाण का शहीद या शिकार हो गया तो तुझ से बदला नहीं लिया जायगा (ख़ूँ-बहा—खून का बदला) क्यों कि ऐसा दस्तूर नहीं है। उस पर ज़िम्मेदारी मेरी है कि मैं ज़िद कर के तेरे तीरे-नज़र का शिकार हुआ।

× × ×

बलाए-जाँ है, 'ग़ालिब' उसकी हर बात।
इबारत क्या, इशारत क्या, अदा क्या॥

उसकी हर बात जान के लिए एक बला है, चाहे वह इबारत—लिखावट हो, इशारत=इशारे हों या अदा-हावभाव हों।

[११]

दरख़ुरे क़हरो-ग़ज़ब जब कोई हम-सा न हुआ।
फ़िर ग़लत क्या है के हम-सा कोई पैदा न हुआ?

क़हर—उत्पात और ग़ज़ब—अत्याचार के दरख़ुर—योग्य जब कोई हमारी बराबरी का न हुआ; जो इस बात से प्रमाणित है कि अधिक से अधिक उत्पात और अत्याचार सहने के लिए तुम केवल हमीं को चुनते हो; तो हमारे इस

दावे में कि आज तक कोई हमारी टक्कर का पैदा नहीं हुआ ग़लत क्या है, आपत्ति क्या है !

बन्दगी में भी वो आज़ाद-ओ-खुदबीं हैं हम ।
उल्टे फिर आए दरे काबा—अगर वा न हुआ ॥

बन्दगी—उपासना में भी हम इतने आज़ाद-ओ-ख़ुदबीं—स्वतंत्र प्रकृति और स्वाभिमानी हैं कि यदि काबा (मुख्य तीर्थ-स्थान जो मक्के में है) का दर्वाज़ा वा-खुला न मिले तो हम बिना उपासना किये वापस हो जाते हैं। जब काबे की कुण्डी खटखटाने में ही हम को आपत्ति है तो किसी राजा—रईस की महफ़िल का ज़िक्र ही क्या ! मिर्ज़ा ने अपने अक्खड़ स्वभाव का परिचय देते हुए काबा की मर्यादा भी निबाह ली है। काबा का दर्वाज़ा कभी बन्द नहीं होता। मिर्ज़ा ने यह लक्षित किया है कि हम ऐसी-वैसी जगह पूजा नहीं करते। हमारी पूजा का दर्वाज़ा कभी बन्द नहीं होता।

× × ×

कम नहीं नाज़िशे-हमनामये-चश्मे-ख़ूबाँ ।
तेरा बीमार बुरा क्या है, गर अच्छा न हुआ ॥

चश्मे-ख़ूबाँ—ऐ सुन्दर नेत्रों वाले (मान्यता यह है कि माशूक की आँखें जो नर्गिस के फूलों के समान हैं, 'बीमार' कही जाती हैं; क्योंकि नर्गिस का रंग पीला है और बीमार भी पीला पड़ जाता है) हम बीमार हैं तो और नहीं तो तेरी आँखों के हमनाम—नामराशि तो हैं। यह नाज़िश—घमंड करने के लिए क्या कोई कम या छोटी-मोटी बात है ! हम तेरे बीमार यदि अच्छे नहीं हो रहे हैं तो इसमें ख़राबी क्या है। हाय री लाचारी और वाह री कवि की सूझ !

× × ×

थी ख़बर गर्म के 'ग़ालिब' के उड़ेंगे पुर्ज़े ।
देखने हम भी गए थे, पे तमाशा न हुआ ॥

बड़ी ख़बर फैली हुई थी कि 'ग़ालिब' की आज हड्डी-पसली तोड़ दी जायगी (उड़ेंगे पुर्ज़े)। हम भी उस स्थान में पहुँचे पर तमाशा ही न हुआ,

टिकिट के दाम व्यर्थ गए। इसमें दो बातें हैं। एक तो यह कि हमारी तो जान निकल रही है और लोगों के लिए यह तमाशा-मात्र है। दूसरे यह कि माशूक़ हमारी परीक्षा तो लेना चाहता था, पुर्ज़े-पुर्ज़े उड़ाकर भर नहीं, कदाचित् क़त्ल ही करके, पर जब उसने हमारी हालत देखी तो उसे विश्वास हो गया कि हम सच्चे प्रेमी हैं। उसने और परीक्षा न ली। देखने वाले अपना-सा मुँह लेकर रह गए। कितने तमाशबीनों की टिकटों के दाम गए!

[१२]

× × ×

ले तो लूँ सोते में उसके पाँव का बोसा, मगर।
ऐसी बातों से वो काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

सीधा अर्थ तो यह है कि माशूक़ सो रहा है। इस समय उसके चरण चूम सकता हूँ। पर इस हरकत से यदि वह काफ़िर—निष्ठुर जाग गया तो हमेशा-हमेश के लिए बदगुमाँ—मेरा अविश्वास करने लगेगा।

टेढ़ा अर्थ यह है कि मैं जब स्वयं सो रहा हूँ और वह स्वप्न में दर्शन देने आया है तब उसके चरण तो चूम सकता हूँ पर इस हरकत से उसका विश्वास उठ जायगा और फिर वह स्वप्न में भी दर्शन नहीं देगा।

दिल को हम सर्फ़े—वफ़ा समझे थे, क्या मालूम था।
यानी यह पहले ही नज़रे-इम्तेहाँ हो जायगा॥

हमने यह समझा था कि दिल सर्फ़े—वफ़ा होगा—सच्चे प्रेम की पूरी मियाद तक साथ देगा। हम क्या जानते थे कि हज़रत पहली ही परीक्षा (इम्तेहान) की नज़र—भेंट हो जाएँगे। अब न जाने कितनी लम्बी मियाद हो; और हम हैं कि बिना दिल घिसटे जा रहे हैं।

सब के दिल में है जगह तेरी, जो तू राज़ी हुआ।
मुझ पे गोया इक ज़माना मेहरबाँ हो जायगा॥

तुझे सारी दुनिया तो चाहती है। यदि तू मुझ से राज़ी हो जा—खुश हो जा तो इक ज़माना—एक संसार शायद मुझ पर मेह्रबाँ—कृपालु हो जाय। सम्बोधन ईश्वर के प्रति जान पड़ता है।

गर निगाहे-गर्म फ़र्माती रही तस्लीम ज़ब्त।
शोला-ख़स में, जैसे ख़ूँ रग में, निहाँ हो जायगा॥

गर-यदि निगाहे गर्म—तेरी क्रोध भरी दृष्टि ज़ब्त—धैर्य को तस्लीम करो—अपनाओ; यह फ़र्माती रही—यह आज्ञा देती रही तो मेरी रगों का ख़ून उतनी ही जल्दी निहाँ—छिप जायगा, सूख जायगा जितनी जल्दी ख़स—तिनके में लगाई आग (शोला) लुप्त हो जाती है, बुझ जाती है। अपनी करुण दशा दर्शाई है कि मैं प्रेम में सूख-सूख कर एक तिनका-सा हो रहा हूँ, अधिक मत कसो।

बाग़ में मुझ को न ले जा वरना मेरे हाल पर।
हर गुलेतर एक चश्मे-ख़ूँ-फ़िशाँ हो जायगा॥

मित्र या माशूक़ से कहते हैं कि यदि मुझे उपवन में ले जाओगे तो मेरी बुरी हालत देखकर प्रत्येक गुलेतर—ताज़ा फूल चश्म—आँखों से ख़ूँफ़िशाँ—ख़ून रोने लगेगा। समय प्रातःकाल जान पड़ता है, जब फूल ताज़े होते हैं और उनसे ओस टपकती है जो आँसू हैं और फूल का रंग लाल, इसलिए ख़ून के आँसू कहा है। तू तो घूमने का आनन्द लेने जा रहा है। यदि मित्र है तो इस दृश्य से कि फूल भी मेरे सम-दुःखी हैं, तुझे दुख होगा, और यदि माशूक़, तो तू शर्मिन्दा होगा। दोनों हालतों में घूमने का आनन्द न आएगा, इसलिए मुझे मत ले जा।

वाय! गर मेरा-तेरा इंसाफ़ महशर में न हो।
अब तलक तो यह तवक़्क़ुअ है के वाँ हो जायगा॥

महशर—स्वर्ग में अंतिम इंसाफ़ का दर्बार। वहाँ भी यदि मेरा-तेरा न्याय न हुआ तो सख़्त अफ़सोस (वाय) यद्यपि अभी तक तो मुझे तवक़्क़ुअ है कि वहाँ न्याय होगा और मैं तेरे द्वारा सताया हुआ घोषित किया जाऊँगा। कहने की ध्वनि ऐसी है कि तवक़्क़ुअ—आशा कुछ पतली-सी है। अन्य कवि ने तो निराशा ही प्रगट की है :

'हश्र में इंसाफ़ होगा, बस यही सुनते रहो।
कुछ यहाँ होता रहा है, कुछ वहाँ हो जायगा॥'

और कविवर 'दाग़' ने पक्षपात की आशंका प्रगट की है :

उम्मीद तो है हश्र में इंसाफ़ की, लेकिन।
अल्लाह हसीनों का तरफ़दार न हो जाय॥

फ़ायदा क्या सोच ? आख़िर तू भी दाना है 'असद'।
दोस्ती नादाँ की है, जी का ज़ियाँ हो जायगा॥

यह सभी जानते हैं कि नादान की दोस्ती और जी का जंजाल (ज़ियाँ) अपने को दाना—समझदार जानते हुए भी नादान (माशूक़, जो सच्चे और झूठे आशिक़ का भेद नहीं जानता, इतना नादान है) से दोस्ती किये जाओ इसमें क्या फ़ायदा है, सोचो तो।

[१३]

दर्द मिन्नतकशे-दवा न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥

मिन्नतकशे-दवा—दवा का अपेक्षित। यदि मेरी पीड़ा दवा द्वारा दूर हो जाती तो बुरा होता। दवा न पीकर मैंने दर्द का और अपना अन्त कर दिया यह बुरा नहीं हुआ, अच्छा हुआ।

जमा करते हो क्यों रक़ीबों को।
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ॥

मेरी गिला, यानी शिकायत ही करनी है न ! करो, तुम्हारे सामने हूँ। पर रक़ीबों, प्रतिद्वंदियों को जमा करके तुम कदाचित शिकायत भर नहीं करना चाहते, सब के सामने मेरी खिल्ली भी उड़ाना चाहते हो, मेरा तमाशा करना चाहते हो।

हम कहाँ क़िस्मत आज़माने जायँ।
तू ही जब ख़ंजर-आज़माँ न हुआ ॥

हमारे लिए सबसे अच्छा यह होता कि तुम हमारा वध कर देते। जब तुम्हीं ख़ंजर, कटार हमारे ऊपर आज़माने से इंकार करते हो तो हमारी तक़दीर फूट गई। और कहीं अपने भाग्य की परीक्षा करने जाना व्यर्थ है।

कितने शीरीं हैं तेरे लब, के रक़ीब।
गालियाँ खा के बदमज़ा न हुआ ॥

तेरे लब, ओंठ कितने शीरीं, मीठे हैं कि रक़ीब—प्रतिद्वन्दी को तूने गालियाँ दीं, फिर भी वह बदमज़ा, कड़ुआ न हुआ, अर्थात् उसने न कोई आपत्ति की न क्रोध प्रकट किया। इतने मीठे हैं।

है ख़बर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ ॥

क्या ग़रीबी है! कुछ हास्यरस भी है। बोरिया—फट्टी। और दिन फट्टी रहती थी। आज ही नहीं है, जब कि उसके आने की आशा है।

क्या वो नमरूद की ख़ुदाई थी।
बन्दगी में मेरा भला न हुआ ॥

नमरूद एक बादशाह था जो अपने को ईश्वर मनवाना चाहता था। मैंने जिस ईश्वर की बन्दगी, प्रार्थना की क्या वह नमरूद ही के समान नक़ली ईश्वर था? यदि नहीं, तो प्रार्थना करने पर भी मेरा भला क्यों नहीं हुआ?

जान दी, दी हुई उसी की थी।
हक़ तो ये है के हक़ अदा न हुआ ॥

कबीर दास जी ने कहा है कि 'तेरा तुझको देन में का लागत है मोर?' पर मिर्ज़ा कहते हैं इतने ही से काम नहीं चलेगा। उसके दिए प्राण उसे ही सौंप दिए यह सच है। पर प्राण से भी अधिक कुछ देना था—कदाचित लोक-शांति, लोक-कल्याण। हक़, सत्य तो यह है कि केवल प्राण लौटा देने से ऐसा जान पड़ा कि हमने उसका हक़, उसका पावना अदा नहीं किया, पूरा-पूरा नहीं चुकाया।

ज़ख़्म गर दब गया, लहू न थमा।
काम गर रुक गया, रवा न हुआ॥

घाव दब भर गया है। लहू या पीड़ा के आँसू भीतर ही भीतर बह ही रहे हैं। अतएव यदि मेरे विनाश का कार्य रुक गया है या ज़ख़्म के ऊपर-ऊपर दब भर जाने से ऐसा विश्वास दिलाया जा रहा है तो यह रवा, न्याय-संगत नहीं है। मेरे साथ अन्याय है।

रहज़नी है कि दिलसितानी है।
लेके दिल, दिलसिताँ रवाना हुआ॥

यह दिलसितानी, दिल को लुभा लेना है कि साफ़ रहज़नी, डाका डालना है, जबकि दिलसिताँ, दिल को लुभानेवाला दिल लेते देर नहीं कि रवाना अर्थात् नौ-दो-ग्यारह हो गया। पलक मारते दिल भी ग़ायब, दिलदार भी ग़ायब।

कुछ तो पढ़िये के लोग कहते हैं।
आज 'ग़ालिब' ग़ज़लसरा न हुआ॥

ग़ज़लसरा न हुआ—ग़ज़ल नहीं पढ़ी। भई मिर्ज़ा! आज के मशाअरे के लिए कोई नई ग़ज़ल न कही हो, तो पुरानी ही पढ़ दो। लोग तुम्हारे मुँह से कुछ सुनने को व्याकुल रहते हैं। कहते हैं कि आज 'ग़ालिब' ने कुछ भी क्यों नहीं पढ़ा।

[१४]

इस ग़ज़ल में कुल दो ही शैर कहे हैं :—

क़तरए-मय बस्के हैरत से नफ़स परवर हुआ।
ख़त्ते-जामे-मय सरासर रश्तए-गौहर हुआ॥

माशूक़ को शराब का प्याला दिया गया। वह प्याला ओंठ के पास ले गया। क़तरए-मय—शराब की बूँद ने जैसे ही उसका सौंदर्य देखा तो बसके—अत्यधिक हैरत—आश्चर्य के कारण-अपना कर्त्तव्य भूल गया। वह

मुँह में न जाकर नफ़स परवर—प्याले ही में गिरफ़्तार हो गया, या ठिठक कर रह गया। दूसरी बूँदों का भी यही हाल हो गया। प्याले के किनारे-किनारे वे मोतियों के समान जमा हो गईं। इस तरह जामे-मय शराब के प्याले का ख़त—किनारा सरासर—साफ़ गौहर—मोतियों के हार का रश्त—धागा बन गया।

ऐतबारे इश्क़ की ख़ानाख़राबी देखना।
ग़ैर ने की आह लेकिन वह ख़फ़ा मुझ पर हुआ॥

उसको मेरे प्रेम पर ऐतबार—विश्वास है। यों तो यह अच्छी बात होती पर इससे भी मेरी ख़ानाख़राबी—बर्बादी होती है, मुझे दुख उठाना पड़ता है। कारण, वह इतना अधिक विश्वास करने लगा है कि ग़ैर—प्रतिद्वंदी भी यदि आह—फ़रियाद करता है तो वह समझता है कि मैंने ही की और वह मुझे ही डाँटता है। परिणाम यह कि व्यर्थ डाँट भी खानी पड़ती है और उधर प्रतिद्वंदी, यह समझ कर कि माशूक़ मुझ पर नाराज़ है, उस पर द्विगुणित उत्साह से डोरे डालने लगता है।

[१५]

इस ग़ज़ल में मिर्ज़ा ने कुल तीन शेर कहे हैं—

मैं और बज़्मे-मय से यूँ तिश्नाकाम आऊँ।
गर मैंने की थी तौबा, साक़ी को क्या हुआ था?

मैं बज़्मे-मय, शराब की महफिल से यों तिश्नाकाम—प्यासा उठ आऊँ? यदि मैंने तौबा ही कर ली थी, प्रण कर लिया था कि अब कभी न पियूँगा, तो साक़ी को क्या हो गया था कि उसने मेरी तौबा को तोड़ने का कुछ प्रयत्न ही नहीं किया। एकाध बार तो मनाता, मुस्कराता, प्याला आगे बढ़ाता। साफ़ प्रगट है कि मेरे प्रण को महत्त्व देकर साक़ी ने मेरे प्रति अवहेलना प्रगट की।

है एक तीर जिसमें दोनों छिदे पड़े हैं।
वो दिन गए कि अपना दिल से जिगर जुदा था॥

कभी ऐसे भी दिन थे कि दिल अपनी जगह आराम से था और जिगर

अपनी। उसने ऐसा नयन-बाण छोड़ा है कि दिल और जिगर दोनों उससे छिद कर एक हो गए हैं अर्थात् बाण अभी भीतर है और दोनों उसमें नत्थी हैं।

दरमाँदगी में 'ग़ालिब', कुछ बन पड़े तो जानूँ।
जब रश्ता बेगिरह था, नाख़ुन गिरहकुशा था॥

दरमाँदगी—मुसीबत में कोई ऐसी बात बन पड़े—हो जाय कि जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाय तो जानूँ-समझूँ कि कोई मेरा है। जब मुसीबत नहीं थी अर्थात् रश्ता—रस्सी, बेगिरह—बिना गाँठ की थी तब नाख़ूनों में गिरहकुशा—गाँठ खोलने की शक्ति थी। अब इस प्रकार गाँठों, कठिनाइयों से घिर गया हूँ कि अक़्ल काम नहीं करती। जीवन की रस्सी और मुसीबत की गाँठ से उपमा दी है।

[१६]

इस ग़ज़ल में भी मिर्ज़ा ने कुल तीन ही शैर कहे हैं :—

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बह्र गर बह्र न होता तो बियाबाँ होता॥

हमारे रोने से घर डूब गया; इतना अधिक रोये। जब डूब ही गया तो वीरान—उजाड़ या बर्बाद तो हो ही गया। पर मान लो न रोते तो क्या होता? बह्र—समुद्र में भी तो पानी ही पानी है। यदि सब सूख जाय तो समुद्र क्या रहे—बियाबाँ—शून्य, मनहूस स्थल अर्थात् वही वीराना। रोयें या न रोयें बरबादी तो होनी ही है।

तंगिये-दिल का गिला क्या, ये वो काफ़िर दिल है।
के अगर तंग न होता तो परीशाँ होता॥

तंगिये-दिल—मन की या हृदय की बेचैनी की शिकायत (गिला) क्या करें। यह ऐसा काफ़िर—कमबख़्त है कि यदि तंग—बेचैन न होता तो उसे

यही परेशानी—चिन्ता खाये जाती, जलाये जाती कि वह अशान्त क्यों नहीं है। प्रेमी के लिए रोना, न रोना, शांत रहना, अशांत रहना, सब बराबर है।

बाद यक उम्र—दरअ़ बार तो देता बारे।
काश रुज़वाँ ही दरे-यार का दरबाँ होता॥

उम्रे-दरअ़—ईश्वरोपासना का जीवन। बार देना—प्रवेश करने की अनुमति देना। काश—ईश्वर करता कि। रुज़वाँ—वैकुन्ठ का द्वार रक्षक। दरे-यार का दरबाँ—प्रियतम के द्वार का रक्षक या दरबान। बारे—अलबत्तः।

कहते हैं कि मनुष्य यदि अपना समूचा जीवन ईश्वरोपासना में व्यतीत कर दे तो मरने पर स्वर्ग के द्वार का रक्षक उसे भीतर जाने की अनुमति दे देगा। मैंने प्रियतमोपासना में समूचा जीवन व्यतीत किया, तब भी प्रियतम के द्वार का रक्षक मुझे भीतर प्रवेश नहीं करने देता। उसने यमराज के भी कान काट लिए।

[१७]

कुल तीन शेर कहे हैं :—

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता।
डुबोया मुझ को होने ने, न होता मैं तो क्या होता?

इस शेर में 'अस्ति' को ख़राब और 'नास्ति' को अच्छा कहा गया है। आरंभ में केवल ईश्वर था। बाद में कुछ 'होना' शुरू हुआ। कुछ न होता तो मात्र ईश्वर होता। इस होने में मैं भी हो गया और संसार के सुख-दुख झेल रहा हूँ। यदि भाग्यवश मैं न होता, तो क्या होता? 'कुछ न होता' की दशा में रहता, अर्थात् ईश्वर होता।

हुआ जब ग़म से यूँ बेहिस तो ग़म क्या सर के कटने का।
न होता गर जुदा तन से तो ज़ानू पर धरा होता॥

मैं ग़म—दुख से बिलकुल बेहिस—जड़ हो गया हूँ। ज़िन्दगी ऐसे बीतती है कि सिर को ज़ानू—जाँघ या घुटने पर रख लिया और बैठे हैं। न हिलते

हैं, न डुजते हैं। ऐसा सिर जो संज्ञाहीन है यदि काट लिया जाय तो दुख किस बात का। शरीर से न अलग किया जाता तो जाँघ पर मुर्दे के समान पड़ा होता। दोनों हालतें उसके लिए एक-सी हैं।

हुई मुद्दत के 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है।
वो हर इक बात पर कहना के यूँ होता तो क्या होता ?

इस में मिर्ज़ा ने अपने स्वभाव की सब से बड़ी विशेषता की चर्चा की है। वे बड़े जिज्ञासु थे। किसी भी बात की नई-नई पहलुओं पर विचार करते थे, टीका-टिप्पणी करते थे, मीनमेख निकालते थे। इसलिए बाद में भी जब लोग उनकी याद करेंगे तो यह कहकर कि मिर्ज़ा होते तो कहते—यूँ हो तो कैसा और यूँ हो तो कैसा !

[१८]

फिर मुझे दीदएतर याद आया।
दिल-जिगर तिश्नए-फ़रियाद आया॥

मुझको फिर से दीदएतर—गीली आँखें याद आ गईं। 'फिर' का अर्थ यह नहीं है कि रोए हुए महीने—दो महीने बीत गए हों वरन् यह कि अभी रोना बन्द ही किया था कि फिर रोने की इच्छा उत्पन्न हो गई। और जैसे ही यह इच्छा उत्पन्न हुई कि दिल और जिगर फ़रियाद—निवेदन से तिश्ना—तृषित हो उठे, अर्थात् मुझसे निवेदन करने लगे कि हाँ, हाँ, जल्दी रोना शुरू करो जिससे हमें कुछ ठंडक प्राप्त हो।

दम लिया था न क़यामत ने, हनौज़।
फिर तेरा वक़्ते—सफ़र याद आया॥

हनौज़—अभी तेरी विदाई की घड़ी ने मुझ पर जो क़यामत—प्रलय ढाया था, उसने दम नहीं लिया था, अर्थात् वह दुख हलका नहीं होने पाया था कि फिर से तेरा वक़्ते-सफ़र—तेरी विदाई की घड़ी याद आ गई। तात्पर्य यह कि जिस क्षण से तू गया है, तेरा विछोह मुझे लगातार सता रहा है।

सादगीहाय तमन्ना यानी।
फिर वो नैरंग-नज़र याद आया॥

मेरी तमन्ना—इच्छा, अभिलाषा की सादगीहाय—नादानियाँ तो देखो। फिर वही नैरंग-नज़र—जो बार-बार मुझ से धोखा करता रहता है, मुझे याद आ गया। कितना सीधा-सादा, नादान हूँ मैं!

उज़्रे वामाँदगी; ऐ हसरते-दिल।
नाला करता था जिगर याद आया॥

ऐ हसरते दिल—हे मेरे दिल की इच्छाओ, तुम्हारा यह तक़ाज़ा है कि मैं ख़ूब रोऊँ—तड़पूँ। परन्तु वामाँदगी—दुर्बलता के कारण मुझे उज़्र है—आपत्ति है। नाला करता था—मैं रोना-कलपना ही चाहता था कि मुझे अपने जिगर—कलेजे की याद आ गई, जो इन्हीं हर्क़तों से फट चुका है। अब अगर रोऊँगा, तो ऐ मेरे दिल! तुम से भी हाथ धोना पड़ेगा। इसलिए मेरी आपत्ति मान जाओ।

ज़िन्दगी यों भी गुज़र ही जाती।
क्यों तेरा राहे-गुज़र याद आया॥

जीवन किसी तरह बीत ही जाता। तेरा राहे-गुज़र—तेरी गली क्यों याद आ गई! इस याद ने तो तत्काल जीवन का अन्त कर दिया अन्यथा रोते-धोते कुछ दिन और जी लेते।

क्या ही रुज़वाँ से लड़ाई होगी।
घर तेरा ख़ुल्द में गर याद आया॥

ख़ुल्द—बैकुण्ठ में यदि मुझे तेरे घर की याद आ गई तो रुज़वाँ—बैकुण्ठ के द्वारपाल से क्या ही अर्थात् ख़ूब जमकर लड़ाई होगी। लड़ाई के दो कारण होंगे। एक तो मैं कहूँगा कि तेरा घर बैकुण्ठ से अच्छा है और वह विरोध करेगा। दूसरे मैं कहूँगा कि बैकुण्ठ में कुछ नहीं रखा, मैं ये चला तेरे घर और वह कहेगा, वाह! बैकुण्ठ से भी फिर किसी को जाने दिया जाता है?

आह! वो जुर्रते-फ़रियाद कहाँ।
दिल से तंग आ के जिगर याद आया॥

हाय ! वह फरियाद—रोने-चिल्लाने की जुर्रत—ताक़त अब कहाँ रह गई ? पहले दिल साथ देता था। अब नहीं देता, शायद इसलिए कि चीख़-पुकार करने से माशूक़ दिल पर नाराज़ होता है। ऐसे बेवफ़ा दिल से तंग आकर मुझे जिगर की याद आई कि शायद ये हज़रत साथ दे जायँ, परन्तु वे भी ठण्डे पड़े हुए हैं। जब दोनों ने साथ छोड़ दिया तो रोने-कलपने की ताक़त कहाँ आए ?

फिर तेरे कूचे को जाता है ख़याल।
दिले-गुमगुश्ता मगर याद आया ॥

मिर्ज़ा ने 'मगर' शब्द का प्रयोग 'शायद' के स्थान पर कई जगह किया है, यहाँ भी। तेरी गली में जाने का विचार फिर से इसलिए कर रहा हूँ कि शायद अपने दिले-गुमगुश्ता = खोए हुए दिल की याद आ गई है। संभव है ढूँढ़े—खोजे तेरी गली में मिल जाय।

कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्त को देख के घर याद आया ॥

हम यह समझते थे कि हमारा घर बहुत वीरान—उजाड़ है। इतना उजाड़ और कोई स्थान न होगा। परन्तु जब हमने दश्त—उजाड़ या जंगल को देखा तब हमें अपना घर याद आ गया कि हाँ, घर और जंगल दोनों एक-दूसरे के टक्कर के हैं। क्या यह कोई साधारण वीरानी है ?

मैं ने मजनू पे लड़कपन में 'असद'।
संग उठाया था के सर याद आया ॥

मजनू लैला पर पागल हुआ था, परन्तु वह मिर्ज़ा के समय में जीवित नहीं था। यहाँ किसी भी प्रेम के पागल से मुराद है। ऐसे पागल को मारने के लिए मैंने लड़कपन में पत्थर (संग) उठाया ही था, क्योंकि लड़कों की आदत ही है पागलों को पत्थर मारने की, कि मुझे अपना सर याद आ गया। शायद आगे चलकर मैं भी प्रेम में पागल होऊँ और लड़के मेरे सर पर पत्थर मारें, इसलिए बेहतर यह है कि मैं इस हर्क़त से बाज़ आऊँ।

[१६]

हुई ताख़ीर तो कुछ बायसे-ताख़ीर भी था।
आप आते थे मगर कोई अनाँगीर भी था॥

ताख़ीर—देर हुई आने में तो कुछ बायस—सबब भी ज़रूर रहा होगा। आप आना तो चाहते थे पर जान पड़ता है कि कोई अर्थात् प्रतिद्वन्दी अनाँगीर था—आपके आने में रुकावट डाल रहा था; अन्यथा देर न होती।

तुम से बेजा है मुझे अपनी तबाही का गिला।
इसमें कुछ शायबये-ख़ूबिये-तक़दीर भी था॥

तुमसे अपनी तबाही—बर्बादी का गिला—की शिकायत करना बेजा—अनुचित है क्योंकि मेरी बर्बादी में कुछ मेरी शायबये-ख़ूबिये—तक़दीर—क़िस्मत में लिखी हुई बात का भी हिस्सा है।

× × ×

क़ैद में है तेरे वहशी को वही ज़ुल्फ़ की याद।
हाँ कुछ इक रंज गिराँबारिये-ज़ंजीर भी था॥

तेरे वहशी—तेरे दीवाने को क़ैद में वही तेरी केशराशि की याद आती रहती है। यह रंज—दुख ज़रूर होता है कि ज़ुल्फ़रूपी ज़ंजीर गिराँबारी—भारी है और क़ैद में लोहे की ज़ंजीर हल्की पर यह रंज अधिक नहीं है, कुछ—थोड़ा-सा ही है। केशराशि की प्रशंसा है।

बिजली इक कौंध गई आँखों के आगे तो क्या ?
बात करते के मैं लब-तिश्नए तक़रीर भी था॥

तुम आए और एक झलक दिखला कर, बिजली-सी चमकाकर ग़ायब हो गए। तो क्या ! इससे मुझे क्या संतोष मिल गया ? आए थे तो बैठते, कुछ बात करते; मैं लब-तिश्ना प्यासा था तुम्हारी तक़रीर—वाणी सुनने का भी।

× × ×

देखकर ग़ैर को हो क्यों न कलेजा ठंडा।
नाला करता था वले तालिबे-तासीर भी था॥

ग़ैर—दुश्मन नाला करता था—रो रहा था यह देखकर तो कलेजा ठंडा हुआ ही; वले-लेकिन वह तालिब था—इच्छुक था कि उसके रुदन का तुम पर असर हो—प्रभाव पड़े—यह देखकर भी कलेजा ठंडा हुआ। वह मेरी टक्कर का नहीं है। स्वार्थी है। मैं भी नाला करता हूँ पर असर (तासीर) नहीं चाहता।

× × ×

हम थे मरने को खड़े पास न आया न सही।
आख़िर उस शोख़ के तरकश में कोई तीर भी था॥

पास आकर तलवार से क़त्ल करने में यदि वह अपनी बेइज़्ज़ती समझता था या यह डर था कि मैं पास से दर्शन कर लूँगा, तो उसके तरकश में तीर तो रहा होगा; दूर ही से तीर छोड़कर मुझे निशाना बना लेता।

पकड़े जाते हैं फ़िरिश्तों के लिखे पर नाहक़।
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था॥

फ़िरिश्ते—देवदूत हमारे पाप-पुण्य का जो ब्यौरा चाहते हैं लिख लेते हैं और हम उसी पर पकड़े जाते हैं अर्थात् इकतर्फ़ा लिखावट पर हमारा न्याय ईश्वर करता है। यह विचित्र बात है। क़ानून तो यह है कि दमे-तहरीर लिखते वक़्त हमारा भी कोई आदमी—वकील-मुख़्तार रहना चाहिए था।

रेख़्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई 'मीर' भी था॥

रेख़्ते—उर्दू शायरी या ग़ज़लगोई। 'मीर'—उस्ताद मीर तक़ी 'मीर'। अपने को 'मीर' की श्रेणी मे शुमार किया है।

[२०]

तू दोस्त किसी का भी सितमगर न हुआ था।
औरों पे है वो ज़ुल्म के मुझ पर न हुआ था॥

प्रत्यक्ष यह है कि औरों अर्थात् मेरे प्रतिद्वंदियों पर तूने ऐसे-ऐसे ज़ुल्म किए जो मुझ पर भी न किए थे; उनको तक को न छोड़ा। अंतरंग यह है कि प्रतिद्वंदी तो झूठे प्रेमी हैं। उन पर जो नए-नए ज़ुल्म तूने किए, वे मुझ पर होने चाहिए थे। इस प्रकार, तू उन पर ज़ुल्म करता है, इसलिए उनका दोस्त नहीं है। मुझ पर ज़ुल्म नहीं करता है, इसलिए मेरा दोस्त नहीं है। तू किसी का दोस्त नहीं है।

× × ×

तौफ़ीक़ बअँदाज़ये-हिम्मत है अज़ल से।
आँखों में है वो क़तरा जो गौहर न हुआ था॥

अज़ल—सृष्टि के आरम्भ से, बअन्दाज़ये-हिम्मत—साहस के अनुकूल तौफ़ीक—रुतबा या उच्च स्थान प्राप्त होता आया है। उदाहरण के लिए एक बूँद की हिम्मत इतनी थी कि वह समुद्र में गौहर—मोती हो गई। पर वह बूँद जो मोती न हुई, क्योंकि वह अधिक साहसी थी, आँख में आँसू बन स्थान पा गई। आँखों में बस जाने से बढ़कर और क्या होगा? मोती तो अधिक से अधिक नाक, कान, गले आदि में ही स्थान पाएगा।

जब तक के न देखा था क़दे-यार का आलम।
मैं मौतक़िदे-फ़ित्नए-महशर न हुआ था॥

जब तक मैंने यार—प्रियतम के क़द—नखशिख के आलम—सौंदर्य को नहीं देखा था, तब तक महशर—प्रलय में जो फ़ित्ने—आफतें बयान की गई हैं उन पर मेरा मौतक़िदा—विश्वास नहीं था। उसके सौंदर्य ने यहीं प्रलय ढा दिया। विश्वास हो गया।

मैं सादा दिल आज़ुर्दगिये यार से ख़ुश हूँ।
यानी सबके-शौक़ मुकर्रर न हुआ था॥

मैं भी क्या सादा दिल—भोला हूँ। यार की आज़ुर्दगी—प्रियतम के क्रोध से मैं ख़ुश हूँ। यानी—कारण कि; शौक—प्रेम के सबक—पाठ मैं मुकर्रर—

दुहरा नहीं पाया था। नाराज़ होकर यार मुझे प्रेम के पाठ दुहराने का मौक़ा देता है।

× × ×

[२१]

इस ग़ज़ल में केवल दो शेर कहे हैं :—

आईना देख अपना-सा मुँह ले के रह गए।
साहब को दिल न देने पे कितना गुरूर था।

साहब को—माशूक़ को बड़ा गुरूर—घमंड था कि हम किसी को दिल न देंगे—किसी पर आशिक़ न होंगे। परन्तु जब आईना सामने किया तो अपने ही अक्स पर मर मिटे और अपना-सा मुँह लेकर रह गए अर्थात् शर्मा गए; झेंप गए।

क़ासिद की अपने हाथ से गर्दन न मारिए।
उसकी ख़ता नहीं है ये मेरा क़ुसूर था॥

क़ासिद—पत्र-वाहक को अपने हाथ से क़त्ल न कीजिए। उसका दोष नहीं है। पत्र तो मैंने भेजा था। मेरी गर्दन मारिए। केवल पत्र ले जाने के कारण उसे वह गौरव न दीजिए कि जिस गौरव पर मेरा अधिकार है।

[२२]

अर्ज़े-नयाज़े-इश्क़ के क़ाबिल नहीं रहा।
जिस दिल पे नाज़ था मुझे, वो दिल नहीं रहा॥

अब मैं इश्क़—प्रेम के अर्ज़े-नयाज़—प्रदर्शन या निवेदन के क़ाबिल—योग्य नहीं रहा। कारण, जिस दिल पर मुझे नाज़—घमंड या भरोसा था, वह दिल नहीं रहा। माशूक़ के लगातार दुर्व्यवहार ने उसे मृत कर दिया या माशूक़ ने उसे छीन लिया।

जाता हूँ दाग़े-हसरते-हस्ती लिये हुए।
हूँ शमअ्-कुश्ता, दरख़ुरे-महफ़िल नहीं रहा॥

हस्ती—जीवन की—हसरतों—इच्छाओं का दाग़=घाव अर्थात् अपूर्त अभिलाषाओं को लेकर मैं बिदा हो रहा हूँ। मैं कुश्ता—बुझा हुआ, शमअ्—दीप हूँ, अब महफ़िल—सभा के दरखुर—योग्य नहीं रहा।

मरने की दिल अब और ही तदबीर कर के मैं।
शायाने-दस्तो-बाज़ुए क़ातिल नहीं रहा॥

ऐ दिल मरने का और उपाय (तदबीर) कर क्योंकि मैं क़ातिल—माशूक़ के दस्तो-बाज़ू—हाथ और बाहुओं द्वारा क़त्ल किए जाने योग्य (शायान) नहीं रहा। इतना त्याज्य हो गया हूँ।

× × ×

वा कर दिए हैं शौक़ ने बन्दे-नक़ाबे-हुस्न।
ग़ैर अज़ निगाह अब कोई हायल नहीं रहा॥

शौक़—प्रेम ने या प्रेम की प्रगाढ़ता ने हुस्न—सौन्दर्य के नक़ाब के सब बन्द—बटन वा—खोल दिए हैं। अब अज़ निगाह—केवल दृष्टि के अतिरिक्त (ग़ैर) कोई हायल (पर्दा) नहीं रहा। पर सौंदर्य को देखने के लिए हृदय की दृष्टि चाहिए।

गो मैं रहा रहीने-सितमहाय-रोज़गार।
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा॥

यद्यपि मैं रहीने-सितमहाय-रोज़गार—दुनिया के काम-धाम, दंद-फंद में फँसा रहा, तथापि तुझ से कभी ग़ाफ़िल नहीं रहा—तुझे कभी नहीं भूला।

बेदादे-इश्क़ से नहीं डरता मगर 'असद'।
जिस दिल पे नाज़ था मुझे वो दिल नहीं रहा॥

बेदादे—इश्क़=प्रेम के कष्टों से।

[२३]

ज़िक्र उस परीवश का, और फिर बयाँ अपना।
बन गया रक़ीब आख़िर था जो राज़दाँ अपना॥

एक तो उस परीवश—अप्सरा के समान सुन्दरी का ज़िक्र—वर्णन ! उस पर मेरा बयान—मेरी वर्णन-शैली ! सोने में सुहागा। परिणाम यह हुआ कि जो हमारा राज़दाँ था, अंतरंग मित्र था वही हमारा रक़ीब—प्रतिद्वंदी बन गया। हमारे मुँह से वर्णन सुन-सुन कर ही मित्र उस सुन्दरी पर मर मिटा।

यहाँ तो एक महाकवि अपनी प्रेमिका के सौंदर्य का वर्णन करता है। उसकी शैली के अतिरिक्त उसके हावभाव, उसकी मुख मुद्रा आदि का भी प्रभाव पड़ा होगा। महाकवि बिहारी का विरह-सौंदर्य तो और ऊपर उठ गया है। नायिका ने सुआ पाला था। सुनते-सुनते सुआ को विरह-वार्ता रट गई और वह जब-तब दुहराने लगा और जिस-किसी ने सुना दो आँसू गिराए—

'कहे जु बचन वियोगिनी विरह विकल बिललाय।
किए न को अँसुआ सहित, सुआ सुबोल सुनाय।'
मय वो क्यों बहुत पीते, बज़्मे-ग़ैर में या रब !
आज ही हुआ मंज़ूर उनको इम्तेहाँ अपना॥

अपना इम्तेहान—अपनी परीक्षा करना चाहते थे कि वे अधिक-से-अधिक कितनी मय—शराब पी सकते हैं। उन्होंने पी और बहुत पी परन्तु या रब—हे ईश्वर, बज़्मे-ग़ैर—दूसरे की अर्थात् प्रतिद्वंदी की महफ़िल में बैठकर क्यों पी ? क्या आज ही जब वे प्रतिद्वंदी के यहाँ बैठे हुए थे, उन्हें अपनी परीक्षा लेनी मंज़ूर थी—अपेक्षित थी ? तात्पर्य यह कि किसी दिन जब मेरे यहाँ बैठे होते और अपनी यही परीक्षा लेते तो क्या बिगड़ जाता ? इशारा यह है कि परीक्षा-अरीक्षा मात्र बहाना था; असल में मुझे नीचा दिखाना था, मुझे कष्ट पहुँचाना था।

मंज़र इक बुलन्दी पर और हम बना सकते।
अर्श से इधर होता; काश के मकाँ अपना॥

काश के—यदि ईश्वर ऐसा करता कि हमारा मकान अर्श—आकाश के इधर—इस तरफ़ अर्थात् नीचे होता तो हम इक बुलन्दी—एक ऊँचाई पर मंज़र—दृश्य या घर और बना लेते। क्या करें? हमारा घर तो स्वयं आकाश में है। आकाश से ऊँचा स्थान तो और होता नहीं। हम उससे ऊँचा स्थान नया घर बनाने के लिए कहाँ ढूँढें। अपने आपको सांसारिक विकारों से परे कहने का एक मौलिक ढंग है।

दे वो जिस क़दर ज़िल्लत हम हँसी में टालेंगे।
बारे, आशना निकला, उनका पासबाँ, अपना॥

बारे—एक बार या इस बार तो उनका पासबाँ—द्वार रक्षक अपना आशना—पुराना मित्र निकला। इसलिए वह हमें जिस क़दर ज़िल्लत दे—चाहे जितना रोके-टोके, डाँटे-फटकारे शायद मारे-पीटे भी, हम तो यही कहकर टाल देंगे, अर्थात् जो हमारी दुर्गति देखने को जमा हो जायेंगे, उन्हें यही कहकर समझा देंगे या अपने ही मन को ऐसा बहला लेंगे कि यह दरबान तो हमारा पुराना लँगोटिया है। इससे हमसे तो मैं-मैं तू-तू तथा हाथापाई भी चलती ही आई है। इतनी हँसी दिल्लगी तो पुराने दोस्तों में जायज़ है। अपमानित होने पर भी बेशर्मी अख़्तियार कर लेने की अच्छी सूझ निकाली है।

दर्दे-दिल लिखूँ कब तक, जाऊँ उनको दिखला दूँ।
अँगुलियाँ फ़िगार अपनी, ख़ामा ख़ूँ-चका अपना॥

पत्र लिखते-लिखते अँगुलियाँ फ़िगार—घायल हो गईं। फफोले पड़कर फूट गए। रक्त बहने लगा। इसलिए ख़ामा—क़लम, ख़ूँ-चका रक्तरंजित हो-हो जाता है। रक्त मज़मून को इस तरह ढाँक लेता है कि कुछ पढ़ने में नहीं आता। और मेरी विरहवार्ता क्या है कि इस परिस्थिति में भी समाप्त नहीं होती। इसलिए बेहतर यही है कि स्वयं जाकर उसे अपनी अँगुलियों की और क़लम की हालत दिखला दूँ।

ता करे ना ग़म्माज़ी, कर लिया है दुश्मन को।
दोस्त की शिकायत में, हमने हमज़बाँ अपना॥

ता—जिससे कि ग़म्माज़ी—चुगली न करे, इसलिए हमने दुश्मन या अपने प्रतिद्वंदी को दोस्त—प्रियतम की शिकायत—निष्ठुरता के वर्णन में अपना हमज़बाँ—सहभाषी या सहयोगी बना लिया है। जब वह स्वयं उसकी निष्ठुरता का बखान करने लगता है तो हमारी चुगली किस मुँह से करेगा?

हम कहाँ के दाना थे ? किस हुनर में यकता थे ?
बेसबब हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आसमाँ अपना ॥

ऐसा माना गया है कि जितनी आफ़तें—मुसीबतें आती हैं उसकी सारी ज़िम्मेदारी आस्मान—आकाश या कह लीजिए, विधि पर है। यों तो सभी को विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, परन्तु आस्मान ने गुणियों को, विद्वानों को अपना विशेष निशाना बना लिया है और उन पर चुन-चुन कर आफतें ढाता है। मिर्ज़ा कहते हैं कि हम कहाँ के दाना—विद्वान थे, हम किस हुनर—गुण में यकता—अद्वितीय थे। बेसबब—अकारण ही आस्मान हमारा शत्रु हो गया और हमें तमाम उम्र सताया किया। क्या तरीक़ा निकाला है अपने को विद्वान् और गुणी साबित करने का! एक तरफ तो कहते हैं कि हमारे बयान में वह तासीर है कि दोस्त-दुश्मन सब पानी हो जायँ और दूसरी तरफ़ यह कि हम तो बड़े भोले हैं, हमें तो कुछ आता नहीं। बलिहारी है!

[२४]

केवल दो शैर कहे हैं :—

सुर्मए मुफ़्त-नज़र हूँ, मेरी क़ीमत ये है।
के रहे चश्मे-ख़रीदार पे अहसाँ मेरा ॥

मैं ऐसा सुर्मा हूँ जो मुफ्त-नज़र है, बिना मूल्य के प्राप्य है। यदि कुछ मूल्य है तो यह कि ख़रीदने, या यह मुफ़्ती सुर्मा लगाने वाले की आँख (चश्म) मेरा अहसान माने। व्यंजना है। तात्पर्य यह कि मेरी कविता सब को प्राप्य है। उसे पढ़ने वाला उससे आनंद प्राप्त करे, यही उसका मूल्य है।

रुख़सते-नाला मुझे दे के, मबादा, ज़ालिम।
तेरे चेहरे से हो ज़ाहिर ग़मे-पिनहा मेरा॥

ऐ ज़ालिम—माशूक़! मुझे नाला—रुदन करने की रुख़सत—छूट दे। मबादा—कहीं ऐसा न हो कि तेरे चेहरे से मेरी पिनहा—छिपी हुई या अव्यक्त ग़म—व्यथा ज़ाहिर हो—प्रगट हो। मेरी अंतर्व्यथा अब उस सीमा तक पहुँच गई है कि बिना तुझ पर प्रभाव डाले न रहेगी। तुझ पर प्रभाव पड़ेगा अर्थात् तेरे चेहरे पर उदासी छाएगी तो लोग जान जायँगे कि तू किसी के प्रेम जाल में फँस गया है। इस तरह तू बदनाम हो जायगा। इसलिए मुझे रोने-कलपने की आज्ञा दे दे, जिससे व्यथा इतनी हल्की हो जाय कि तुझ पर अनिवार्य रूप से प्रभाव न डाले।

[२५]

जौर से बाज़ आए—पर बा. आएँ क्या?
कहते हैं हम तुझ को मुँह दिखलाएँ क्या?

अब हम ने जौर—अत्याचार करने से, बाज़ आए—मुँह मोड़ लिया,—ऐसा वे कहते हैं। पर वे क्या बाज़ आएँगे जब यह कर कि हमने तुझ पर इतने अत्याचार किए हैं कि तुझे मुँह दिखलाने लायक़ नहीं रह गये, वे सबसे बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। अर्थात् उनके ज़ुल्म न करने का निश्चय और भी बड़े-बड़े ज़ुल्म करने का बहाना है।

रात दिन गर्दिश में हैं सात आस्माँ।
हो रहेगा कुछ-न-कुछ, घबराएँ क्या॥

आकाश सात हैं ऐसा माना गया है। ये सातों आकाश रात-दिन गर्दिश में हैं—चक्कर लगा रहे हैं। जो कुछ होता है इन्हीं के चक्कर से होता है। जब ये इतने व्यस्त हैं तो कुछ न कुछ तो हो के ही रहेगा। हमारा घबराना या

चिन्ता करना व्यर्थ है। जब उन्हीं के किए सब-कुछ होता है, तो जो—कुछ होगा, अच्छा ही होगा।

लाग हो, तो उसको हम समझें लगाव।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएँ क्या ?

लाग—दुश्मनी हो तो हम उसी को लगाव—दोस्ती समझ लें। दुश्मन से भी एक तरह का सम्बन्ध तो रहता है और हम इतना धोखा खाने के लिए तैयार हैं कि शत्रुता को ही मित्रता समझें। पर वहाँ तो न शत्रुता है न मित्रता, हमारे लिए कोई स्थान ही नहीं है। तो हम धोखा किस बात का खायँ ?

हो लिये क्यों नामाबर के साथ-साथ ?
या रब ! अपने ख़त को हम पहुँचाएँ क्या ?

पत्र लिखा, नामाबर—पत्र-वाहक को दिया और ख़ुद भी उसके साथ-साथ हो लिये। क्यों हो लिये ?

(१) उत्तर पाने की बेचैनी के कारण (२) ईर्ष्या के कारण कि प्रेमिका के लिए लिखा हमारा पत्र दूसरा ले जा रहा है, (३) कर्त्तव्य का ज्ञान लुप्त हो जाने के कारण। जब रास्ते में होश आया तो कहते हैं हे ईश्वर ! (या रब !) क्या हमारी ऐसी स्थिति हो गई है कि आप ही लिखें और आप ही पहुँचाएँ यदि स्वयं जाएँ तो पत्र लिखने की क्या आवश्यकता ? प्रेमोन्माद बतलाया है।

मौजे-ख़ूँ सर से गुज़र ही क्यों न जाए।
आस्ताने-यार से उठ जाएँ, क्या ?

प्रेम किया तो प्रेम किया। अब वे मार ही क्यों न डालें। सर से मौजे-ख़ूँ—रक्त की धारा क्यों न गुज़रे—क्यों न बह जाय। यार—माशूक के आस्ताँ—चौखट से उठ जायँ, क्या ? अर्थात् क्या प्रेमी को यह उचित है कि मरने के डर से प्रेमिका की ड्योढ़ी से भाग खड़ा हो। कदापि नहीं।

उम्र भर देखा किए मरने की राह।
मर गए पर देखिए दिखलाएँ क्या ?

आजीवन मरने की राह जो देखा किए, यह उन्हीं की कृपा थी। अब मर जाने पर देखिए और क्या-क्या दिखलाने की कृपा करते हैं। अन्यत्र कहा है कि हम उसके लिए भी तैयार हैं।

न हुई गर मेरे मरने से तसल्ली न सही।
इम्तेहाँ और भी बाक़ी है, तो यह भी न सही॥

× × ×

पूछते हैं वो के 'ग़ालिब' कौन है।
कोई बतलाओ के हम बतलाएँ क्या?

ज़िन्दगी भर मरते रहे। क्या उनको यह भी पता नहीं कि 'ग़ालिब' कौन है। सब पता है। जानबूझ कर अनजान बन रहे हैं। भला ऐसे को हम अपना परिचय देना भी चाहें, तो क्या दें?

[२६]

केवल दो शैर ही कहे हैं :—

लताफ़त बेकसाफ़त जल्वा पैदा कर नहीं सकती।
चमन ज़ंगार है आइनए-बादे-बहारी का॥

लताफ़त लतीफ़ से बना है जिसका अर्थ पवित्र या अलौकिक है। कसाफ़त कसीफ़ से बना है जिसका अर्थ भद्दा या भौतिक है। कहते हैं कि पवित्र या अलौकिक वस्तु बिना लौकिक के सम्पर्क के अपना जल्वा—सौंदर्य प्रदर्शित नहीं कर सकती।

फ़ौलादी आईने में वसंत (ईरान की वर्षा) ऋतु में जंग लग जाता है, जिसका रंग सब्ज़ या हरा होता है। वसंत में चमन—बग़ीचा हरा हो जाता है यानी वह वसंत ऋतु जो अलौकिक है अपने को तभी प्रदर्शित कर सकती है जब आईने के ज़ंग रूपी बाग की हरियाली का उसे माध्यम मिले। यह ज़ंग या हरियाली लौकिक है।

तात्पर्य यह कि अलौकिक वस्तु आत्मा अपने सौंदर्य का तभी प्रदर्शन कर सकती है जब वह भौतिक वस्तु शरीर से अपना सम्पर्क स्थापित कर ले। 'प्रभु तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो। साधन-धाम विबुध-दुर्लभ तन मोहिं कृपा कर दीन्हों ॥' तुलसीदास। 'तन' का महात्म्य बतलाया है।

हरीफ़े-जोशिशे-दरिया नहीं खुद्दारिये-साहिल।
जहाँ साक़ी हो तू, बातिल है दावा होशियारी का ॥

दरिया—समुद्र जब जोश पर हो अर्थात् जब उसमें ज्वारभाटा आए तब साहिल—किनारा उसका हरीफ़—मुक़ाबला करके अपनी खुद्दारी बनाए रख सके, अपने को लहरों से अछूता रख सके, यह असंभव है। इसी तरह जहाँ तू साक़ी हो वहाँ कोई यह दावा करे कि वह होशियार—होश-हवास में है तो यह दावा बातिल—झूठा होगा। यदि शराब के नशे से मस्त न हों तो तेरे रूप के ज्वार से तो सब मस्त हो ही जाएँगे, चाहे वे पीनेवाले हों, चाहे परहेज़गार।

[२७]

इशरते-क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना ॥

क़तरा--बिन्दु की इशरत--खुशी है दरिया--सिन्धु में फ़ना—विलीन हो जाना। बिन्दु जब सिन्धु में समा गया तो उसकी सबसे प्रिय अभिलाषा पूर्ण हो गई। दर्द, पीड़ा भी जब हद से गुज़र जाती है—अंतिम सीमा का उल्लंघन कर चुकती है अर्थात् जब पीड़ा की मनुष्य को अनुभूति ही नहीं रहती, तब वह पीड़ा ही दवा हो जाती है। जब मनुष्य की पीड़ा अनुभूति के परे हो गई तो वह मर गया अर्थात् जैसे बिन्दु सिन्धु में विलीन होकर प्रसन्न हुआ था वैसे ही आत्मा के परमात्मा में विलीन होने के कारण मनुष्य को प्रसन्न होना चाहिए। पीड़ा की अभिवृद्धि से घबराना नहीं चाहिए वरन् यह आकांक्षा करनी चाहिए कि वह

इतनी बढ़े कि पीड़ा न रह जाय, मुक्ति हो जाय। इस भाव को कबीरदास जी ने किस उल्लास से प्रगट किया है :—

जिस मरने से जग डरै सो मेरो आनन्द।
कब मरिहौं, कब देखिहौं, पूरन परमानन्द॥

तुझ से क़िस्मत में मेरी सूरते-क़ुफ़्ले-अबजद।
था लिखा बात के बनते ही जुदा हो जाना॥

क़ुफ़्ल—ताला, अबजद—अक्षरों वाला। अक्षरों वाला एक ताला होता है जिसमें बहुत से अक्षर लिखे रहते हैं। इन अक्षरों को घुमाते-घुमाते एक पंक्ति में इस तरह लाया जाता है कि वह शब्द बन जाता है जो उस ताले की कुञ्जी है। जैसे ही वह शब्द बनता है कि ताला बीच से दो टुकड़े हो जाता है, अर्थात् खुल जाता है। कहते हैं कि मेरे भाग्य में यह लिखा था कि जैसे अक्षर वाला ताला शब्द या बात बनते ही दो टुकड़े हो जाता है वैसे ही ठीक उस समय, जब मैं यह समझूँ कि अब तेरे सम्बन्ध में मेरी बात बन गई अर्थात् अब प्रेम के प्रतिदान का समय आ गया, तब, उसी क्षण मैं वैसे ही विलग कर दिया जाऊँ जैसे शब्द बनते ही ताले के टुकड़े विलग हो जाते हैं।

दिल हुआ कशमकशे-चाराए-ज़हमत में तमाम।
मिट गया घिसने में इस उक़्दः का वा हो जाना।

चाराए-ज़हमत—दवा-दारू की जो दौड़धूप की गई उसी की कशमकश—ठूँसठाँस या भीड़-भड़क्के में दिल ही समाप्त हो गया। इस उक़्द:—गाँठ (उक़्दः का अर्थ भेद या रहस्य भी होता है) का वा हो जाना—खुल जाना तो ऐसा हुआ कि कोई अनाड़ी गाँठ को ठीक तरह न खोलकर उसे पत्थर में घिस-घिस कर खोले। दिल को दिल की तरह सहने-तड़पने न दिया, दवा-दारू की ठूँसठास से ही उसे समाप्त कर दिया।

अब जफ़ा से भी हैं महरूम हम, अल्ला, अल्ला।
इस क़दर दुश्मने-अरबाबे-वफ़ा हो जाना॥

जफ़ा—ज़ुल्म, अत्याचार, महरूम—वंचित। इस क़दर—इस तरह वफ़ा—ईमानदारी के अरबाब—दोस्तों अर्थात् हम सच्चे प्रेमियों से दुश्मनी कर ली

कि कृपा न करो तो न करो, अकृपा से भी वंचित रखने लगे हो! अल्ला, अल्ला—हे भगवान, यह अत्याचार भी न करने का अत्याचार तो देखो!

ज़ोफ़ से गिरिया मुबद्दल बदमे-सर्द हुआ।
बावर आया हमें पानी का हवा हो जाना॥

ज़ोफ़—कमज़ोरी, गिरिया—आँसू; मुबद्दल—बदलकर बदमे-सर्द—ठंडी उसास; बावर आया—विश्वास हो गया। एक तत्व, जल बदल कर दूसरा तत्व वायु हो सकता है, इसका हमें वैज्ञानिक ज्ञान नहीं था परन्तु जब अपने सिर बीती तब हमें विश्वास हुआ कि ऐसा हो सकता है। रोते रोते जब हम शिथिल हो गए तब इतनी भी शक्ति नहीं रह गई कि आँसू गिरा सकते। ये आँसू बदलकर ठण्डी उसास (हवा) के रूप में बाहर निकलने लगे।

दिल से मिटना तेरी अंगुश्त-हिनाई का ख़याल।
हो गया गोश्त से नाख़ुन का जुदा हो जाना॥

अंगुश्त-हिनाई—मेंहदी लगी हुई उँगलियों का ख़्याल दिल से मिटना उतना ही कष्टप्रद है, जितना माँस और नख का अलग हो जाना; इसलिए यह ख़याल कभी दिल से नहीं मिटेगा। तेरी उँगलियाँ मेरे दिल पर उतर आई हैं। दिल मांस है। उँगलियाँ हटीं कि माँस और मेंहदी लगे नख अलग हुए।

है मुझे अब्रे-बहारी का बरस कर खुलना।
रोते रोते ग़मे-फ़ुर्क़त में फ़ना हो जाना॥

ग़मे-फ़ुर्क़त—विरह की पीड़ा में रोते-रोते फ़ना—मर जाना, विलीन हो जाना मुझे वैसा ही है जैसे अब्रे-बहारी—वसन्त के बादलों का बरस कर खुल जाना। जिस देश में जो ऋतु सबमें सुहावनी हो, वही वसंत ऋतु मानी जाती है—ईरान में बरसात, इंग्लैण्ड में गर्मी। ईरानी वसंत में जब बादल छाते हैं, अच्छे लगते हैं। बरसते हैं और भी अच्छे लगते हैं। और बरस कर बाद में खुल जाने की छवि का कहना ही क्या! वैसे ही जब तेरे विरह का दुख उमड़ता है, अच्छा लगता है। आँसू बरसते हैं, और अच्छा लगता है। और जैसे बरस

कर बादल समाप्त हो गए वैसे हम भी रोते-रोते समाप्त हो जाएँगे तो उस सुख का कहना ही क्या !

गर नहीं निकहते-गुल को तेरे कूचे की हवस ।
क्यों है गर्दे-रहे-जौलाने-सबा हो जाना ॥

गर—यदि गुल—फूल की निकहत—सुगंध को तेरे कूचे की हवस—तेरी गली में पहुँचने की इच्छा नहीं है तो वह जौलाने-सबा—बहती हुई हवा के पीछे गर्दे-राह—सड़क की धूल के समान क्यों लग जाती है ? इसलिए कि फूल की सुगंध भी तेरी गली की बहार देखने को लालायित है ।

ता के तुझ पर खुले ऐजाज़े-हवाये-सैक़ल ।
देख बरसात में सब्ज़ आइने का हो जाना ॥

हवा यहाँ पर इच्छा । सैक़ल—चमकदार हो जाने की । ऐजाज़—चमत्कार । यह चमत्कार तुझ पर प्रगट हो जाय कि चमकदार हो जाने की इच्छा सब में है, देख बरसात में निष्प्राण आईना भी सब्ज़ (हरा या काला) हो जाता है कि वह फिर से पालिश करके चमकाया जाय । पहले काँच बनाना नहीं जानते थे । लोहे को रगड़-रगड़ कर इतना चमकाते थे कि उसमें प्रतिबिंब दिखे । ये आइने बरसात में ज़ंग खाकर हरे या काले हो जाते थे ।

बख्शे है जल्वए-गुल ज़ौक़े तमाशा 'ग़ालिब' ।
चश्म को चाहिए हर रंग में वा हो जाना ।

जल्वए-ग़ुल—फूलों का सौंदर्य, ज़ौक़े तमाशा—देखने की इच्छा बख़्शे—प्रदान कर रहा है । चश्म—आँख को चाहिए कि वह हर रंग में—हरदम प्रत्येक मौसम में वा रहे—खुली रहे । न जाने कब कैसा सौंदर्य प्रदर्शित हो । कोई छटा चूक न जाय ।

[२८]

कुंज में बैठा रहूँ यूँ पर खुला ।
काश के होता क़फ़स का दर खुला ॥

कुंज—पिंजड़े में मैं पर खुला—उड़ने लायक पर रखते हुए बैठा रहूँ। काश के—ईश्वर करता कि क़फ़स—पिंजड़े का दर—द्वार खुला होता, तो मैं फ़ुर्र से उड़ जाता।

हम पुकारें औ खुले—यूँ कौन जाय ?
यार का दर्वाज़ा पाऊँ और खुला ॥

यदि माशूक़ का द्वार खुला हुआ मिले तो भीतर कौन जाय—अर्थात मैं न जाऊँ। शायद वह सब के लिए खुला हो। मैं तो तब जाऊँ जब मैं पुकारूँ और मेरी आवाज़ पर दर्वाज़ा खुले। अभिप्राय है केवल मेरे लिए खुले।

× × ×

वाक़ई दिल पर भला लगता था दाग़।
ज़ख़्म लेकिन दाग़ से बेहतर खुला ॥

वाक़ई—सचमुच ही दिल पर दाग़—दुख का चिन्ह अच्छा लगता था। पर ज़ख़्म—घाव तो दाग़ से भी बेहतर—अधिक खुला—शोभायमान हुआ।

× × ×

नामा के साथ आगया पैग़ामे-मर्ग।
रह गया ख़त मेरी छाती पर खुला ॥

नामा—पत्र, माशूक़ के पत्र के साथ-ही-साथ मर्ग—मृत्यु का पैग़ाम—संदेश भी आगया। पत्र खोलते-खोलते दम निकल गया और वह हाथ से छूट कर छाती पर खुला का खुला रह गया।

देखियो, 'ग़ालिब' से गर उलझा कोई।
है वली पोशीदा और काफ़िर खुला ॥

देखियो—चेतावनी देते हैं कि 'ग़ालिब' से अगर उलझो—भिड़ो तो सोच-समझ कर भिड़ना।

अन्यत्र कहा है :—

"ये मसायले तसव्वुफ़, ये तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली समझते जो न बादाख़्वार होता॥"

तू यदि मद्यप न होता तो हम तुझे वली—महात्मा समझते। मद्यप लक्षण काफ़िर होने के हैं।

यहां कहते हैं कि महात्मा तो पोशीदा—छिपा हुआ, पर काफ़िर खुल्लम-खुल्ला है। यदि उससे कोई भिड़ा तो उस का काफ़िर रूप ही देखेगा—अर्थात् वह बड़ा मुँहतोड़ जवाब देगा। मिर्ज़ा का व्यंग और हाज़िर-जवाबी प्रसिद्ध है।

[२६]

कुल एक ही शैर कहकर छोड़ दिया है। ऐसे स्फुट शैर और भी हैं :—

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'।
यार लाए मेरे, बालीं पे उसे, पर किस वक़्त॥

मेरे दोस्त माशूक़ को मेरी बालीं—मृत्यु-शय्या पर लाए तो पर कैसे वक़्त लाए कि इधर मैंने उसे देखने के लिए आँखें खोलने का प्रयत्न किया और उधर मेरी आँखें हमेशा के लिए बन्द हो गईं। बहुत देर से लाए। खोलने के प्रयत्न में आँखों का मुँद जाना शैर की शोभा बढ़ाता है।

[३०]

घर जब बना लिया तेरे दर पर कहे बग़ैर।
जानेगा अब भी तू न मेरा घर कहे बग़ैर॥

अक्सर कह देते थे कि ग़ालिब! कैसे तुम्हारे घर आएँ। हमने तुम्हारा घर देखा ही नहीं। अब उनके द्वार पर ही, बिना आज्ञा, घर बना लिया है। अब तो बिना बताये मेरा घर जान जाएँगे।

कहते हैं, जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न।
जानूँ किसी के दिल की मैं क्योंकर कहे बग़ैर॥

जब मुझ में ताक़ते सुखन—बोलने की शक्ति न रह गई तब कहते हैं कि बिना कहे मैं किसी के दिल की क्या जानूँ। मृत्यु का समय है।

काम उससे आ पड़ा है के जिसका जहान में।
लेवे न कोई नाम सितमगर कहे बग़ैर॥

काम उससे आ पड़ा है—उससे प्रेम हो गया है जिसका नाम दुनिया में कोई बिना सितमगर—अत्याचारी कहे नहीं लेता। मेरा भाग्य!

जी में ही कुछ नहीं है हमारे वगर्ना हम।
सर जाए या रहे, न रहें पर कहे बग़ैर॥

वगर्ना—अन्यथा, जान जाए या रहे हम मन की कह के रहें। मन में ही कुछ कहने को नहीं रह गया, ये लाचारी है।

छोड़ूँगा मैं न, उस बुते-काफ़िर का पूजना।
छोड़े न ख़ल्क़ गो मुझे काफ़िर कहे बग़ैर॥

ख़ल्क़—दुनिया मुझे भले ही काफ़िर कह ले, मैं उस बुते-काफ़िर—विधर्मी सुन्दरी की पूजा न छोड़ूँगा।

मक़सद है नाज़ो-ग़म्ज़ा, वले गुफ़्तगू में काम।
चलता नहीं है दश्ना-ओ-ख़ंजर कहे बग़ैर॥

मक़सद—उद्देश्य तो वर्णन करना है उसके नाज़ो-ग़म्ज़ा—हाव-भाव का परन्तु गुफ़्तगू—बातचीत यानी काव्य-चर्चा में उसकी अदाओं के लिए दश्नाओ-खंजर—छुरी-कटार या तीर-कमान कहे बिना रंगत नहीं आती।

हरचन्द हो मशाहदए-हक़ की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादाओ-साग़र कहे बग़ैर॥

हरचन्द—चाहे पूर्ण रूप से हक़—धर्म की मशाहदए—चर्चा क्यों न हो रही हो, बिना बादाओ-साग़र—मद और प्याला कहे काम नहीं चलता। जैसे मीरा कहती हैं—'और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पिए मद माती। हरी-प्रेम का मैं मद पीऊँ मस्त रहूँ दिन-राती।'

बहरा हूँ मैं तो, चाहिए दूना हो इल्तेफ़ात।
सुनता नहीं हूँ बात मुकर्रर कहे बग़ैर॥

मिर्ज़ा बुढ़ापे में बहरे हो गए थे। सो दोष टीका करते-करते टीकाकार में भी आ गया है। आगे टीका करने वालो, सावधान! कहते हैं मुझपर दूना इल्तेफ़ात—दो बार कृपा होनी चाहिए। आपका बोलना मुझपर बड़ी भारी कृपा परन्तु अब दो बार हो क्योंकि मुकर्रर—दुहराए बिना मैं सुन नहीं पाता।

'ग़ालिब' न कर हुज़ूर में तू बार-बार अर्ज़।
ज़ाहिर है तेरा हाल सब उनपर कहे बग़ैर॥

उनपर अर्थात् बहादुरशाह पर।

[३१]

क्यों जल गया न ताबे-रुख़े-यार देखकर
जलता हूँ अपनी ताक़ते-दीदार देखकर॥

जब माशूक या उपास्य सामने आएगा तब प्रेमी या भक्त का क्या हाल होगा, इस प्रश्न का उत्तर कवियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया है। कबीरदासजी का कहना है कि वह सामने नहीं आएगा, हमीं उसमें समा जाएँगे।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि हज़रत मूसा जल्वा देखते ही के साथ बेहोश हो गए थे। अब मिर्ज़ा का ठाठ देखिए। कहते हैं रुख़े-यार, माशूक़ के मुख-छबि की ताब—प्रखर ज्योति देखकर मैं जल क्यों नहीं गया? जल गया होता तो दो लाभ होते। उसे तो ज्योति दिखा कर लुप्त होना ही था, जल जाता तो भविष्य की विरह-व्यथा से बच जाता। दूसरे मुझे वह गति प्राप्त होती जो प्रेमी के लिए सबसे बड़ा गौरव है।

अस्तु, तब रूप-ज्योति से नहीं जले तो अब जल रहे हैं। किससे? ईर्ष्या से। अपनी दीदार—दृष्टि की ताक़त—शक्ति को देखकर जल रहे हैं कि इस बेईमान ने उसे देख लिया और अभी तक जीवित है और तब नहीं जलने दिया और अब जला रही है। अपने को अपनी दृष्टि से भिन्न मान लेना और उससे ईर्ष्या करना बड़ी नाज़ुक ख़्याली है, जो मिर्ज़ा ही का हक़ है।

इस भाव को मिर्ज़ा ने और एक शैर में व्यक्त किया है :

देखना क़िस्मत के आप अपने पे रश्क आजाय है।
मैं उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाय है॥

आतिश-परस्त कहते हैं अहले-जहाँ मुझे।
सरगर्म नालहाय - शररबार देखकर॥

मुझे—शरर—आग, बार—बरसानेवाले, नालहाय—नालों अर्थात् आँसुओं और आहों में सरगर्म—कर्मरत देखकर अहले-जहाँ—दुनिया वाले आतिश—अग्नि, परस्त—पूजक कहने लगे हैं। अग्नि-पूजक के लिए जैसे अग्नि सर्वस्व है, वैसे ही मेरे लिए मेरा आग्नेय रुदन।

क्या आबरूए-इश्क़ जहाँ आम हो जफ़ा।
रुकता हूँ तुम को बेसबब आज़ार देखकर॥

प्रेम का महत्व (आबरू) वहाँ क्या है जहाँ जफ़ा—जुल्म आम हो—सभी पर किया जाता हो। जुल्म केवल सच्चे प्रेमी पर किया जाना चाहिए। एक तुम हो कि सच्चा-झूठा कुछ नहीं देखते, सब धान बाइस पसेरी कर रक्खी है। तुम्हारी इस बेसबब आज़ार—बिना कारण सताने की आदत देखकर अर्थात् जो झूठे प्रेमी हैं और जिन पर ज़ुल्म करने का कोई कारण नहीं हैं, उन पर भी ज़ुल्म करते देखकर, मैं रुकता हूँ—मैं अपना प्रेम शिथिल करता हूँ। झूठे-सच्चे में कुछ तो फ़र्क़ होना चाहिए।

आता है मेरे क़त्ल को पर जोशे-रश्क से।
मरता हूँ उसके हाथ में तलवार देखकर॥

मुझे मारने को आ रहा है परन्तु मैं तो रश्क—ईर्ष्या के इसी जोश—आधिक्य से मर रहा हूँ कि उसके कर—कमलों का स्पर्श तलवार को नसीब हो गया। जिन्हें मेरे गले का हार होना चाहिए था, वे कर-कमल, तलवार को दुलराएँ?

साबित हुआ है गरदने-मीना पे ख़ूने-ख़ल्क़।
लरज़े है मौजे-मय, तेरी रफ़्तार देखकर॥

तेरी रफ़्तार—चाल (जो मस्ती से भरी हुई है) देखकर मौजे-मय—शराब (जो मीना—सुराही में बच रही है) की लहर काँप रही है। तेरी गति—माधुरी ने ख़ल्क़—तमाम दुनिया का खून कर दिया। यह गति-माधुरी शराब पीने से आई। शराब सुराही में रखी थी। इसलिए इस क़त्ले आम की ज़िम्मेदारी सुराही की गर्दन या सुराही के सर पर हुई। और सुराही भी क्या करे? अन्ततोगत्वा तो यह मय का प्रभाव था। इसलिए मय सुराही में काँप रही है कि दुनिया को मार डालने की ज़िम्मेदारी जब मुझ पर है तो भगवान के यहाँ क्या दंड मिलेगा?

वा हसरता ! के यार ने खींचा सितम से हाथ।
हम को हरीसे-लज्जते-आज़ार देखकर॥

वा हसरता—हाय रे दुर्भाग्य, कि माशूक़ ने हम को आज़ार—दुख की, लज़्ज़त—मिठास का हरीस—लोभी देखकर सितम—अत्याचार से हाथ खींच लिया—अत्याचार करना ही बन्द कर दिया।

बिक जाते हैं हम आप मताए-सुख़न के साथ।
लेकिन अयार तबः-ख़रीदार देखकर॥

हम स्वयं मताए-सुख़न—मय कविता के भंडार के बिक जाते हैं—बिना मोल के ग़ुलाम हो जाते हैं काव्य-पारखियों के, परन्तु पहले यह देख लेते हैं कि कविता के ख़रीददार की तबअ—रुचि की अयार—कसौटी कैसी है अर्थात् उसकी कसौटी खरी-खोटी कविता की परख कर सकती है या नहीं।

ज़ुन्नार बाँध, सिजदए-सददाना तोड़डाल।
रहवर चले है, राह को हमवार देखकर॥

ज़ुन्नार बाँध—जनेऊ पहन ले, सिजदा—ध्यान के सददाना—सौ दाने वाली माला को तोड़कर (जिसका मुसलमान फ़क़ीर उपयोग करते हैं) क्योंकि रहवर—यात्री राह-मार्ग को हमवार-समतल देखकर, चले है, चलना पसंद करता है। जनेऊ सीधा-सादा है, माला की गुरियाँ ऊबड़-खाबड़ हैं। कहना यह चाहते हैं कि साकार पूजा सरल है, निराकार पूजा कठिन है।

इन आबलों से पाँव के घबरा गया था मैं।
जी खुश हुआ है राह को पुरख़ार देखकर॥

प्रेम की प्रारम्भिक मंज़िलों में मेरे पैरों में फफोले (आबले) पड़ गए थे। उन से मैं घबरा गया था। अब वह मंज़िल आई है जो पुरख़ार है—काँटों से भरी हुई है। इसलिए मैं खुश हूँ कि फफोले फूटेंगे और फूटने से इन प्रिय फफोलों को आनन्द प्राप्त होगा।

× × ×

सर फोड़ना वो 'ग़ालिबे' शोरीदा हाल का।
याद आ गया मुझे तेरी दीवार देखकर॥

शोरीदा हाल—पागल, इसीलिए सरफोड़ा। 'वो' शब्द यह बतलाता है कि पूरा दृश्य सामने आ गया। कैसे सर पटका और फिर पटका, और फिर पटका और कैसे मर गया। तेरी दीवार पर सिर पटका, इसलिए तेरी दीवार देखते ही वह दृश्य फिर मुझे स्मरण हो आया।

[३२]

है, बस कि, हर इक उनके इशारे में निशाँ और।
करते हैं मोहब्बत तो गुज़रता है गुमाँ और॥

'बस्के' या 'बस्केह' जिसका अर्थ है 'बहुत', जैसे 'बस्के दुश्वार है हर काम का आसाँ होना' अर्थात् बहुत कठिन है और 'बस कि' या 'बस केह' अर्थात् 'इतना ही'। दोनों पाठ मिलते हैं। यहाँ हम 'बस कि' मान रहे हैं। कहते हैं—बस कि—इतना ही (समझिये) कि उनके प्रत्येक इशारे—हाव-भाव में और—नवीन, निशाँ—इंगिति या अर्थ होता है। यहाँ तक कि जब वे प्रेम प्रदर्शित करते हैं तब भी गुमाँ—सन्देह ही गुज़रता है, होता है—यह कि धोखा दे रहे हैं। कदाचित् इसलिये कि फाँस लें और फिर मनमाने अत्याचार करें।

या रब ! न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात ।
दे और दिल उनको, जो न दे मुझ को ज़बाँ और ॥

प्रत्यक्ष अर्थ तो यह है कि हे ईश्वर न मेरी बात उन्होंने समझी है, न समझेंगे; कदाचित् रूठ गये हैं और मान नहीं रहे हैं। इसलिए यदि मुझे और-ज़बाँ—दूसरी जीभ या अभिव्यंजना की और शक्ति नहीं देता है तो उन्हीं का दिल ऐसा बदल दे कि मेरी बात समझ जायँ और मान जायँ ।

एक टीकाकार लिखते हैं कि मैं रति की प्रार्थना कर रहा हूँ, जो बहुत खुल्लमखुल्ला नहीं की जा सकती और प्रियतमा अज्ञात-यौवना होने के कारण समझ नहीं रही है, इसलिए आदि ।

मौलाना हाली का अर्थ सबसे अधिक उपयुक्त जँचता है। मिर्ज़ा के कलाम को जो लोग क्लिष्ट या निरर्थक कहते थे, उनके लिए कहा है कि उन्हें सुबुद्धि दे। तब वे मेरा कलाम समझेंगे।

अबरू से है क्या उस निगहे-नाज को पैबन्द ।
है तीर मुक़र्रर मगर उसकी है कमाँ और ।

अबरू—भौंह यद्यपि कमान के समान हैं पर उस निगहे नाज़—बाँकी चितवन का भौंह से कोई पैबन्द—सम्बन्ध नहीं है। है तीर मुकर्रर—यह निश्चित है कि निगहे-नाज़ तीर है (स्मरण रहे मुक़र्रर—तय और मुक़र्रर दुहराना है) पर उसकी कमान और है। उसकी कमान माशूक़ का सौंदर्य है या उसकी इच्छा है। कभी ख़ुश होकर छोड़ा, कभी क्रोध करके। बहरहाल निशाना कभी नहीं चूकता और तड़पाता भी हर हालत में है। भौंह की कमान तान ही कर निगह का तीर छोड़े यह ज़रूरी नहीं है।

तुम शहर में हो तो हमें क्या ग़म जब उठेंगे ।
ले आएँगे बाज़ार से जाकर दिलो—जाँ और ॥

हमारा दिल और हमारी जान यदि खो भी जाय, छीन भी ली जाय तो भी जब तक तुम इस शहर में हो, हमें कोई ग़म—दुख नहीं। सारा शहर तुम्हारी नज़रों से हैरान—परेशान है और एक-एक आदमी दिल और जान से

तंग आकर सरे बाज़ार उन्हें सस्ती क़ीमत पर बेच रहा है। हम एक जोड़ नया ख़रीद लाएँगे।

× × ×

है ख़ूने-जिगर जोश में—दिल खोलकर रोते।
होते जो कई दीदए-ख़ूँ-नाबा-फ़िशाँ और॥

इस समय ख़ूनेजिगर—कलेजे का रक्त जोश में—उफान पर है। यदि ख़ूँ-नाबा-फिशाँ—रक्त के आँसू रोने वाली कई दीद—आँखें होतीं तो दिल खोलकर रो लेते। दो आँखें तो रोने के लिये कम पड़ जाती हैं।

मरता हूँ इस आवाज़ पे, हरचन्द सर उड़ जाय।
जल्लाद से लेकिन वो कहे जाए के 'हाँ और॥'

हरचन्द—चाहे जिस तरह सिर कट गिरे—पहले ही वार में या बार-बार वार करने में—मैं तो उसकी इस आवाज़ पर न्यौछावर हूँ कि वह जल्लाद से कहता रहे—'हाँ एक बार और, एक बार और तलवार का वार कर।'

× × ×

लेता,—न अगर दिल तुम्हें देता,—कोई दम चैन।
करता;—जो न मरता;—कोई दिन आह .फ़ुग़ाँ और॥

कोई दम—कुछ देर चैन लेता अगर दिल तुम्हें न दे दिया होता। कोई दिन—कुछ दिन और आह फ़ुग़ाँ—हाय-हाय करता, यदि मर न गया होता। 'लेता' और 'करता' का संबंधित वाक्यांश से दूर होना यहाँ भाषा-सौंदर्य माना गया है। यद्यपि उर्दू में यह अपवाद है।

पाते नहीं जब राह तो चढ़ जाते हैं नाले।
रुकती है मेरी तबअ़ तो होती है रवाँ और॥

यहाँ नाले याने रुदन नहीं वरन् नदी-नाले, जो रुकावट पा कर और भर जाते हैं। उसी तरह मेरी तबीयत, मेरा कवित्व रुकावट पाता है तो और रवाँ हो जाता है—और जोश पर आ जाता है। रुकावट होती है दुखों-कष्टों से पर ये दुख-कष्ट ही मेरी कविता को विस्तृत करते हैं और निखारते हैं।

हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे।
कहते हैं के 'ग़ालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और॥

सुख़नवर—कवि। अन्दाज़े-बयाँ—अभिव्यक्ति की शैली। इस शैर के कारण मिर्ज़ा को आत्म-प्रशंसा का दोष लगाया गया है। परन्तु सौंदर्य यह है कि अपने मुँह से तो दूसरे कवियों की प्रशंसा की कि दुनिया में और भी बहुत अच्छे-अच्छे कवि हैं और अपनी प्रशंसा दूसरों के मुख से कराई कि कहते हैं—अर्थात् लोग कहते हैं। यह नहीं कहते कि 'ग़ालिब' बड़ा कवि है। केवल इतना ही कहते हैं कि उसकी अभिव्यक्ति की शैली और है अर्थात् दूसरों से विभिन्न है। विभिन्न होना विशेषता का लक्षण तो है पर सर्वश्रेष्ठता का अनिवार्य लक्षण नहीं है। इसलिए दूसरों से प्रशंसा कराकर भी सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा नहीं कहलाया।

[३३]

यह ग़ज़ल मिर्ज़ा ने शोक-गीत के रूप में कही है। मिर्ज़ा की बीबी के एक आत्मीय थे—नवाब ज़ैनुल आब्दीन ख़ाँ 'आरिफ़'। मिर्ज़ा के कोई सन्तान जीवित थी नहीं, इन्हीं को पुत्रवत् मानते थे। और अधिक स्नेह इसलिये था कि 'आरिफ़' स्वयं एक होनहार कवि थे। भरी जवानी में उनके देहान्त से आजन्म दुखी महाकवि को जो धक्का लगा, वह निम्नलिखित शैरों से प्रकट है :—

लाज़िम था के देखो मेरा रास्ता कोई दिन और।
तनहा गए क्यों, अब रहो तनहा कोई दिन और॥

लाज़िम—उचित यह था कि कुछ दिन और मेरा रास्ता देखते—मेरी (मृत्यु की) प्रतीक्षा करते। छोटे थे, मुझे पहिले जाने देते—अधिक से अधिक मेरे साथ जाते। तुमने इतनी जल्दी की कि तनहा—अकेले चले गए। अब लाचारी है। कोई—कुछ दिन और वहाँ अकेले रहो, अर्थात् कुछ ही दिनों में मैं भी आता हूँ।

मिट जायगा सर गर तेरा पत्थर न घिसेगा।
है दर पे तेरे नासिया-फ़रसा कोई दिन और॥

कुछ दिन और मुझे तेरे दर पर अर्थात् तेरी क़ब्र पर नासिया-फ़रसा होना है—माथा रगड़ना है। इन थोड़े दिनों में यदि तेरी क़ब्र का पत्थर नहीं घिसेगा, तो मेरा सर तो अवश्य मिट जायगा।

आए हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ।
माना के हमेशा नहीं,—अच्छा कोई दिन और॥

कल ही तो तुमने जन्म लिया और आज पूछते हो कि जाऊँ? हमने माना कि जो जन्म लेता है वह हमेशा नहीं रहता, एक दिन जाता ही है। अच्छा चले जाना, पर कोई दिन और—कुछ दिन और रह लो।

जाते हुए कहते हो क़यामत को मिलेंगे।
क्या ख़ूब, क़यामत का है गोया कोई दिन और?

परलोक जाते हुए कहते हो क़यामत—प्रलय के दिन भेंट होगी। अभी प्रलय का दिन बाक़ी रह गया है क्या? तो फिर इस जुदाई का दिन क्या है? यही तो प्रलय है।

हाँ, ऐ फ़लके-पीर! जवाँ था, अभी 'आरिफ़'।
क्या तेरा बिगड़ता जो न मरता कोई दिन और?

हे फ़लके पीर—बूढ़े अस्मान! अभी 'आरिफ़' जवान था। तू आफ़त ढाते-ढाते बूढ़ा हो गया पर इतनी समझ न आई कि एक जवान को कुछ दिन और न मारता।

तुम माहे-शबे—चारदहम थे मेरे घर के।
फिर क्यों न रहा घर का वो नक़्शा कोई दिन और॥

तुम मेरे घर के चारदहम—चौधवीं की शब—रात के माह-चाँद थे। उर्दू में पूर्णिमा के चन्द्र को चौधवीं का चाँद कहते हैं। पूर्ण चन्द्र तो धीरे-धीरे घटता है। कुछ दिन वैसा ही नक़्शा मेरे घर का और क्यों नहीं रहा। तुम एकदम क्यों छिप गए? एकदम अंधकार क्यों हो गया?

तुम कौन से ऐसे थे खरे दादो-सितद के
करता मलकुल-मौत तक़ाज़ा कोई दिन और ॥

तुम दादो-सितद—लेनदेन के कौन से खरे थे कि मलकुल-मौत—यमदूत ने इधर तक़ाज़ा किया कि जान दो और तुरन्त तुमने दे दी। कुछ दिन और उसको तक़ाज़ा करने देना था, अर्थात् कुछ दिन और जीना था।

मुझ से तुम्हें नफ़रत सही, 'नैयर' से लड़ाई।
बच्चों का भी देखा न तमाशा कोई दिन और ॥

माना कि तुम मुझसे नफ़रत—घृणा करते थे। 'नैयर' (रियासत लोहारू के रईस जो 'आरिफ़' को बहुत चाहते थे) से भी माना कि तुमसे लड़ाई थी। अपने बच्चों से तो कोई वैमनस्य नहीं था। कुछ दिन और उनका भी तमाशा—बाल-विहार न देखा।

गुज़री न, बहरहाल ये मुद्दत ख़ुशो-नाख़ुश।
करना था जवाँ—मर्ग गुज़ारा कोई दिन और।

गुज़री न—कट ही तो गए न, ये मुद्दत—जीवन के ये दिन बहरहाल—हर हालत में, ख़ुशो-नाखुशी—खुश की या रंज की। जवाँ-मर्ग—हे जवानी में मरने वाले कुछ दिन और गुज़ारा करना था—काटना चाहिए था—ख़ुशो-नाखुश जैसे पहले बीते थे वैसे और भी बीत जाते।

नादाँ हो जो कहते हो के क्यों जीते हो 'ग़ालिब'।
क़िस्मत में है मरने की तमन्ना कोई कोई दिन और ॥

तुम लोग नादान—नासमझ हो जो कहते हो कि इतना बड़ा दुख झेल करके 'ग़ालिब' तुम क्यों जी रहे हो। अरे भाई, लाचारी है। अभी भाग्य में कुछ दिन और मरने की तमन्ना—इच्छा करना लिखा है।

[३४]

कुल तीन ही शैर कहे हैं—

क्यों कर उस बुत से रखूँ जान अज़ीज़।
क्या नहीं है मुझे ईमान अज़ीज़ ॥

उस बुत—माशूक़ से अधिक अज़ीज़—प्रिय अपनी जान को कैसे रखूँ। क्या मुझे ईमान—धर्म प्यारा नहीं है। क्या मैं नहीं जानता कि प्रेमी का धर्म प्रिय पर अपने प्राण न्यौछावर कर देना है।

दिल से निकला पे न निकला दिल से।
है तेरे तीर का पैकान अज़ीज़॥

पैकान—तीर का फल। यद्यपि तेरे नयन—बाण का फल (अग्र-भाग) मेरे दिल से निकल गया, अर्थात् एक बार कर तूने आँखें फेर लीं, तथापि वह (बाण) मुझे इतना प्यारा है कि उसे मैंने दिल से नहीं निकलने दिया। उस एक ही चितवन की ख़लिश (जलन) अब भी दिल में हो रही है। अन्यत्र भी कहा है—

तेरे तीरे—नीमकश को कोई मेरे दिल से पूछे।
ये ख़लिश कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता॥

ताब लाए ही बनेगी 'ग़ालिब'।
वाक़या सख़्त है और जान अज़ीज़॥

इसमें फिर 'आरिफ़' की मृत्यु का शोक है। ताब—धैर्य करना ही पड़ेगा। वाक़या—घटना, सख़्त—घातक है पर जान भी तो प्यारी है। धैर्य के साथ सहन करो।

[३५]

न गुले-नग़मा हूँ, न पर्दए-साज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्त की आवाज़॥

न तो मैं गुले-नग़मा—मधुर रागिनी हूँ न साज़—बाजे का पर्दा—मीठा स्वर, अर्थात् सुख—चैन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपनी शिकस्त—हार या पीड़ाओं का स्वर-मात्र हूँ।

तू और आरायशे-ख़मे-काकुल।
मैं और अंदेशाहाय दूर-दराज़॥

× × ×

तू—तेरा सौन्दर्य यों ही प्राण-घातक है। और—उस पर तू काकुल—ज़ुल्फ़ों को ख़म—पेंच दे-दे कर आरायश—सँवार रहा है। यह देख मैं दूर-दराज़—दूर-दूर के अंदेशों—सोच-विचारों में पड़ गया हूँ, अर्थात् ज़ुल्फ़ सँवरने के बाद मेरा क्या हाल होगा, और लोगों का क्या हाल होगा, आदि, आदि। 'दूर' से केशों के लम्बे होने का भाव है, इसीलिये विचार भी लम्बी यात्रा में है।

× × ×

हूँ गिरफ़्तार उल्फ़ते-सैयाद।
वर्ना बाक़ी है ताक़ते-परवाज़॥

सैयाद—शिकारी, जिसने मुझे पिंजड़े में डाल रखा है उसकी उल्फ़त—मोहब्बत मुझे हो गई है, इसलिए गिरफ़्तार रहना—क़ैद में रहना मुझे अच्छा लगता है। वरना—अन्यथा ताक़ते-परवाज़—उड़ जाने की शक्ति मुझ में बाक़ी है अर्थात् दुनिया पिंजड़ा है, मोह-माया—शिकारी, जिन में फँस गया हूँ अन्यथा अपना अन्त कर लेना या वैराग्य ले लेना कौन बड़ी बात है।

वो भी दिन हो के उस सितमगर के।
नाज़ खींचूँ, बजाय हसरते-नाज़॥

अभी उसके नाज़ उठाने की हसरत—इच्छा ही करके रह जाना पड़ता है। वह सितमगर मुझे इस योग्य नहीं समझता कि नाज़ उठवाए। ईश्वर वह दिन लाए जब बजाय—नाज़ उठाने की इच्छा के स्थान में नाज़ खींचूँ—यथार्थ में उसके नाज़ उठाऊँ।

नहीं दिल में मेरे वो क़तरए-ख़ूँ।
जिससे मिज़गाँ हुई न हो गुलबाज़॥

गुलबाज़—फूलों से खेलना। मेरे दिल में कोई क़तरए-ख़ूँ—रक्त का बिन्दु ऐसा नहीं बचा जिससे मिज़गाँ—पलकों ने न खेला हो। रक्त लाल इसलिए फूल। पलकों का खुलना बन्द होना—खेल। अब रक्त चुक गया।

ऐ ! तेरा ग़म्ज़ा यक कलम अंगेज।
ऐ तेरा ज़ुल्म सरबसर अन्दाज॥

ऐ माशूक़ तेरा ग़म्ज़ा—आँख और भौं का इशारा यक—क़लम—सरासर, अंगेज़—जीवित कर देने वाला है। और तेरा ज़ुल्म सरासर अंदाज़ (मार डालने वाली)—अदा है अर्थात् तुझमें दोनों ख़ूबियाँ हैं।

तू हुआ जल्वागर, मुबारक हो।
रेज़िशे - सिज्दए - जबीने - नियाज़॥

तू जल्वागर—प्रगट हुआ। तेरी सिज्दए-नियाज़—पूजा के लिए रेज़िशे-जबीन—हजारों माथाओं का झुकना मुबारक हो। यह भी अर्थ हो सकता है कि तेरी पूजा के लिए मेरे माथे का बार-बार झुकना मुझे मुबारक हो।

मुझको पूछा तो कुछ ग़ज़ब न हुआ।
मैं ग़रीब और तू ग़रीब-नेवाज़॥

मैं दीन हूँ तू ग़रीब-नेवाज़—दीन दयाल है। मेरी सुधि ले ली तो ग़ज़ब—अंधेर नहीं हो गया, ठीक ही हुआ।

'असदुल्लाह ख़ाँ' तमाम हुआ।
ऐ दरेग़ा वो रिन्दे-शाहिदबाज़॥

'ग़ालिब' मर गया। ऐ दरेग़ा-हाय अफ़सोस, वो रिन्द—शराबी और शाहिदबाज़—सौंदर्योपासक (अच्छा आदमी था)।

[३६]

मुज़दह ऐ ज़ौक़े-असीरी! के नज़र आता है।
दाम ख़ाली क़फ़से-मुर्ग़े-गिरफ़्तार के पास॥

ऐ ज़ौक़े—असीरी—हे बन्दी होने के इच्छुक! मुज़दह=बधाई है। क़फ़स—पिंजड़े में, गिरफ़्तार—बन्द, मुर्ग़—पक्षी के पास एक दाम=जाल, ख़ाली—जिसमें अभी कोई फँसा नहीं, नज़र आ रहा है। शिकारी जब जाल बिछाते हैं तो उसके पास एक पालतू चिड़िया बन्द पर्देदार पिंजड़े में रख देते हैं।

जब वह बोलती है तो उसकी जाति के जंगली पक्षी उसके पास उड़ आते हैं और बैठते ही जाल में फँस जाते हैं। तू भी उड़ और जल्दी फँस जा।

जिगरे—तिश्नए—आज़ार तसल्ली न हुआ।
जूये-ख़ूँ हमने बहाई बुने—हर ख़ार के पास ॥

हमने हर ख़ार—काँटे की बुन—जड़ के पास .ख़ून की जू—नहर बहाई परन्तु हमारे जिगर=कलेजे की आज़ार—पीड़ा की तिश्ना—प्यास, तसल्ली न हुई=न बुझी। इशारा यह है कि काँटों-झाड़ियों में भटके और जगह-जगह पाँव के आबलों से रक्त टपकाया किया; फिर भी उन्माद न घटा।

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें, है, है।
खूब वक़्त आए तुम इस आशिक़-बीमार के पास ॥

व्यंग है। है है—हाय हाय, बीमार प्रेमी के पास .खूब वक़्त=बड़े मौके से आए कि देखने के लिये आँखें खोलने का प्रयत्न करता रहा पर वे उल्टा हमेशा के लिए मुँद गईं। अन्यत्र एक शेर में भी यही भाव है—

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'।
यार लाए मेरी बाली पे उसे, पर किस वक़्त ॥

मैं भी रुक-रुक के न मरता, जो ज़बाँ के बदले।
दश्ना एक तेज़-सा होता मेरे ग़म-ख्वार के पास ॥

यदि मेरे ग़मख्वार—दुख बँटाने वाले के पास एक तेज़ दश्ना—छुरी होती तो मैं उसके उपदेशों के प्रभाव (ज़बाँ) से रुक-रुक कर, धीरे-धीरे या तिल-तिल न मरता। वह एकदम भोंक देता, मैं एक दम मर जाता।

दहनए-शेर में जा बैठिए, लेकिन ऐ दिल !
न खड़े हूजिये ख़ूबाँ दिले-आज़ार के पास ॥

.ख़ूबाँ=सुन्दरी जो दिले-आज़ार है—हृदय को दुख देने वाली है के पास, हे हृदय मत खड़े होना, चाहे दहनए-शेर=शेर के मुँह में जाकर बैठ जाना।

× × ×

मर गया फोड़ के सर 'ग़ालिबे' वहशी है, है !
बैठना उसका वो आकर तेरी दीवार के पास ॥

वहशी = पागल। यहाँ 'मुझको याद आ रहा है' यह वाक्यांश लुप्त है। तेरी दीवार के पास आकर बैठना और सर फोड़ कर उसका मरना मुझको याद आ रहा है। ऐसा ही एक और शैर मिर्ज़ा ने कहा है।

सर फोड़ना वो 'ग़ालिबे' शोरीदा हाल का।
याद आ गया मुझे तेरी दीवार देखकर ॥

[३७]

ज़ख्म पर छिड़कें कहाँ तिफ़्लाने-बेपरवा नमक।
क्या मज़ा होता अगर पत्थर में भी होता नमक ॥

बच्चे दीवानों को पत्थर मारते हैं, यह भाव पहले एक शैर में आ चुका है—

मैंने मजनू पे लड़कपन में 'असद'।
संग उठाया था के सर याद आया ॥

अब कहते हैं तिफ़्लाने—बच्चे जिनको अभी कोई परवाह नहीं है, मेरे घावों पर नमक कहाँ से छिड़कें, कहाँ से लाएँ। हाँ, जो पत्थर वे मुझे मारते हैं, उनमें नमक होता तो क्या मज़ा—आनन्द आता ! पत्थर खाने की साध भी पूरी हो जाती और घावों को नमक भी मिल जाता।

गर्दे राहे-यार है सामाने-नाज़े-ज़ख्मे-दिल।
वर्ना होता है जहाँ में किस क़दर पैदा नमक ॥

राहे—यार—मशूक़ की गली की गर्द—धूल, ज़ख्मे-दिल—दिल के घाव के नाज़=गर्व का सामान है, वर्ना=अन्यथा दुनिया में कितना नमक पैदा नहीं होता। दिल के घाव जलन के फफोले हैं। जलने पर, स्थान नमक के पानी से धो दिया जाता है। कष्ट तो बहुत होता है पर घाव पकने नहीं पाते और जल्दी अच्छे हो जाते हैं। दुनिया में बहुत नमक है। मैं दिल के घाव नमक लगाकर,

बावजूद कष्ट सहने के, उन्हें अच्छा कर सकता हूँ। परन्तु मैं उन पर यार की गली की धूल लगाता हूँ, धूल लगाने से घाव पक जाता है तथा अधिक कष्ट साध्य हो जाता है।

मुझको अर्ज़ानी रहे, तुझ को मुबारक हूजियो।
नालये-बुलबुल का दर्द और ख़न्दये—गुल का नमक॥

मुझ को अर्ज़ानी रहे-मुबारक हो बुलबुल के नाला=रुदन का दर्द और तुझ को गुल—फूल की नमकीन (आकर्षक) ख़न्दा—हंसी मुबारक हो। फूल का हँसना और बुलबुल का तड़पना मशहूर है।

× × ×

दाद देता है मेरे ज़ख़्मे जिगर की, वाह, वाह!
याद करता है मुझे देखे है वो जिस जा नमक॥

जिस जा=स्थान में वो=माशूक़ नमक देख लेता है, तुरन्त मेरी याद करता है कि यदि वह यहाँ होता तो उसके ज़ख़्मों में लगा कर तड़पने का मज़ा देखता। यह तो मेरे ज़ख़्मे-जिगर—कलेजे के घाव की दाद—प्रशंसा हुई। वाह, वाह—मैं धन्य हूँ, मैं धन्य हूँ।

× × ×

याद हैं 'ग़ालिब' तुझे वो दिन के वज्दे—ज़ौक़ में।
ज़ख़्म से गिरता तो मैं पलकों से चुनता था नमक॥

ऐसी एक मान्यता है कि नमक ज़मीन पर गिराना नहीं चाहिए। यदि गिर जाय तो उसे आँखों की पलकों से चुन-चुन कर उठाना चाहिए। 'ग़ालिब' ने भी वे दिन देखे हैं जब वज्दे—ज़ौक—प्रेमोन्माद की हालत में उनके घावों से नमक गिर जाता था और उसे वे पलकों से चुनचुनकर उठाते थे।

[३८]

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक॥

मेरी आह तुम पर कुछ प्रभाव कर सके, इसके लिये एक उम्र—दीर्घ काल तक मुझे आह करते रहना चाहिए। ज़ुल्फ़ का सर होना तो बालों का सुलझ जाना है। पर सर होना एक मुहावरा है जिसका अर्थ है समझ में आ जाना। उसी पर श्लेष किया गया है। जब तक तेरी ज़ुल्फ़ के सर-समझ में अर्थात् तेरी समझ में मेरी आह की व्यथा आएगी, उस मुद्दत तक कौन जीता है!—क्या मैं जीवित रहूँगा? नहीं।

दाम हर मौज में है हल्क़ए-सद कामे-निहंग।
देखें क्या गुज़रे है क़तरे पे गुहर होने तक॥

हर मौज—समुद्र की प्रत्येक लहर में एक दाम—एक जाल बिछा है। उस जाल के हल्क़े—हर एक फंदे में काम—मुँह फाड़े हुए सद—सैकड़ों निहंग—मगर मच्छ हैं। इधर बिचारा क़तरा बूँद है। जो गुहर—मोती होना चाहता है। बूँद से मोती होने के बीच में, हर लहर में मगर-मच्छ के होते, देखना चाहिए कि उस पर क्या-क्या बीतती है। भाव यह है कि मनुष्य को महत्ता प्राप्त करने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आशिक़ी सब्र-तलब और तमन्ना बेताब।
दिल का क्या रंग करूँ, ख़ूने-जिगर होने तक॥

आशिक़ी—प्रेम, सब्र—धैर्य, तलब है—चाहता है और तमन्ना—अभिलाषाएँ बेताब—धैर्य-विहीन हैं, पूर्ति हेतु उतावली हैं। जिगर—कलेजे का ख़ून—नाश हो जाय, यह प्रेम चाहता है और इसमें समय लगेगा। इधर दिल उतावला हो रहा है कि उसकी इच्छाओं की—दर्शन-पर्शन की पूर्ति हो जाय, जो जल्द हो नहीं सकती। इस बीच दिल का क्या रंग करूँ—दिल को कैसे रोकूँ—थामू, समझाऊँ-बुझाऊँ। कलेजे के नाश होने में तो अभी देर है।

हमने माना के तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन।
ख़ाक हो जाएँगे, हम तुमको ख़बर होने तक॥

यह मान लिया कि तुम तग़ाफ़ुल—ग़फ़लत, उपेक्षा न करोगे, उदासीनता न दिखलाओगे परंतु जब तक हमारा समाचार तुम तक पहुँचेगा तब तक तो

हम ख़ाक—राख हो जाएँगे, समाप्त हो जाएँगे। तात्पर्य यह कि हम बिलकुल मृतप्राय हैं। हमारे पत्र या संवाद के बिना पाये ही चले आओ।

× × ×

ग़मे-हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज।
शमअ़ हर रंग में जलती है सेहर होने तक॥

हस्ती—जीवन के ग़म—दुखों की इलाज—चिकित्सा जुज़—सिवाय मर्ग—मृत्यु के और किस से हो सकती है? जीवन शमअ़—दीप के समान है। जिसे हर रंग में—चाहे घर या महफ़िल में ख़ुशी हो या ग़मी, प्रत्येक दशा में सेहर—सवेरा होने तक जलना है। सवेरा उसका अंतिम काल है। हमारा भी जब तक अंतिम काल नहीं आ जाता तब तक हमें जीवन के दुख भोगने ही पड़ेंगे।

[३६]

कुल दो ही शैर कहे हैं—

गर तुझको है यक़ीन एजावत दोआ न माँग।
यानी बग़ैर यक दिले-बेमुद्दआ़ न माँग॥

गर—यदि तुझ को यक़ीन—विश्वास है कि तेरी दोआ—प्रार्थना को एजावत—स्वीकृत मिल जायगी, भगवान तेरी प्रार्थना सुन लेंगे तो प्रार्थना मत कर,—यानी अर्थात् बग़ैर—सिवाय इसके कि तुझे यक—एक बेमुद्दआ—निरुद्देश्य, निष्काम, दिल—हृदय मिले, और कुछ न माँग। माँगने के परे हो जाना ही सबसे बड़ी प्राप्ति है।

आता है दाग़े-हसरते-दिल का शुमार याद।
मुझ से मेरे गुनह का हिसाब, ऐ ख़ुदा न माँग॥

यह सच है कि मैंने गुनाह—पाप किए हैं और बहुत किए हैं, पर हे भगवान! उनका हिसाब—विवरण मुझ से मत माँग। जब मैं उनकी गिनती

करने लगता हूँ, तो मुझे उन दाग़—घावों का शुमार—की गिनती याद आ जाती है जो मेरे दिल की हसरतों—अपूर्त इच्छाओं के कारण मुझे जीवन में लगे थे; हे ईश्वर ! तेरी अकृपा या मेरी शक्तिहीनता के कारण। और मैं देखता हूँ कि मेरे किए पाप और तेरे दिये घाव संख्या में लगभग बराबर हैं। तब हिसाब-किताब क्या ! लेना-देना बराबर।

[४०]

केवल दो शैर ही कहे हैं—

मुझको दयारे-ग़ैर में मारा वतन से दूर।
रख ली मेरे ख़ुदा ने मेरी बेकसी की शर्म ॥

यथार्थ में मिर्ज़ा उन लोगों की शिकायत कर रहे हैं, जो उनके गाँव—घर के थे, पर कभी उनकी महत्ता नहीं समझी और सदैव उनको अपमानित, अवहेलित किया, जिससे उन्हें बेकसी—निर्धनता तथा साधनहीनता की दशा में रहना पड़ा। अन्यत्र अपने शहर में मरने की कल्पना इस प्रकार की है :

यह लाश बेकफ़न 'असदे'-ख़स्ता-जाँ की है।
हक़ मगफ़रत करे अजब आज़ाद मर्द था ॥

अर्थात लाश बिना कफ़न के पड़ी रह गई है। अब कहते हैं कि दयारे-ग़ैर—आन गाँव में, वतन—जन्मभूमि से दूर मुझको मेरे ईश्वर ने मृत्यु दी, तो मेरा बड़ा उपकार किया कि मेरी साधन हीनता की लाज रख ली। यहाँ कौन मुझ को जानता-पहचानता है कि यह कहे कि इसे कफ़न भी नसीब नहीं। इस बहाने वतन वालों की शिकायत है।

वो हल्क़ाहाय ज़ुल्फ़ कमीं में हैं, ऐ ख़ुदा !
रख लीजो मेरे दावाए-वारस्तगी की शर्म ॥

हे ईश्वर ! वे ज़ुल्फ़—केशराशि के हल्क़ाहाय—की विभिन्न छटाएँ, कमीं—घात में लगी हुई हैं कि कब अवसर मिले और कब मुझे बाँध लें। मेरा जो दावा वारस्तगी—स्वतन्त्रता का है उसकी लाज अब तेरे हाथ है। मेरी लाज का निर्वाह कर।

[४१]

ज़हरे-ग़म कर चुका था मेरा काम।
तुझको किसने कहा के हो बदनाम॥

ग़म—दुख का ज़हर—विष मेरा काम कर चुका था, मेरा जीवन समाप्त कर चुका था। तुम से किसने कहा था कि मुझको क़त्ल कर व्यर्थ बदनाम हो।

मय ही फिर क्यों न मैं पिये जाऊँ।
ग़म से जब हो गई है ज़ीस्त हराम॥

मय—शराब, हराम अर्थात् वर्ज्य मानी गई है। जो शराब पीता है वह अधार्मिक है। परन्तु जब स्वयं ज़ीस्त—ज़िन्दगी ही ग़म-दुख से हराम हो गई है—जीने लायक नहीं रह गई, तब मैं शराब ही क्यों न पिये जाऊँ कि दुख कुछ तो हल्का हो। एक हराम को दूसरे हराम से क्यों आपत्ति हो?

बोसा कैसा यही ग़नीमत है।
के न समझें वो लज्ज़ते-दुश्नाम॥

बोसा—चुम्बन मीठा होता है, परन्तु बोसा कैसा—हमको और भला वे बोसा देंगे—झूठ बात है। यही ग़नीमत—बड़ी बात समझो कि दुश्नाम—गाली में भी लज्ज़त—मिठास है, यह न समझें। यदि यह समझ गए कि हमें उनकी गालियों में भी आनन्द आता है, तो वे चुम्बन तो दूर हमें गालियाँ देना भी छोड़ देंगे।

काबे में जा बजाएँगे नाक़ूस।
अब तो बाँधा है दैर में अहराम॥

अब, जब कि हम धर्म-भ्रष्ट हो ही गए हैं (शायद शराब पीने से) तो हम सब काम उल्टे ही करेंगे। दैर-मंदिर में हमने अहराम-वह वस्त्र बाँधा है—पहना है, जिसे पहिन काबा-मक्का-मदीना जाते हैं। तो काबे में पहुँच कर हम नाक़ूस-शंख बजाएँ तो आश्चर्य क्या? दोनों जगह विपरीत कार्य ही करेंगे।

× × ×

छेड़ता हूँ के उनको ग़ुस्सा आय।
क्यों रखूँ वरना अपना 'ग़ालिब' नाम ॥

ग़ालिब शब्द का अर्थ है प्रभावशील, समर्थ। मैंने अपना नाम 'ग़ालिब' रख लिया है, यद्यपि मैं असमर्थ, अप्रभावशील हूँ। इसलिये रखा है कि माशूक़ सुने और व्यंग करे कि अच्छा यह असमर्थ और अप्रभावशील भी 'ग़ालिब' हो गया—मेरे सामने अपने को 'ग़ालिब' कहने की हिम्मत करता है। और मेरे इस ग़लत नाम रखने की छेड़ से उसे क्रोध आए और मैं उसके क्रोधपूर्ण सौंदर्य का आनन्द उठाऊँ। वरना—अन्यथा ऐसा नाम क्यों रखता जो मेरे उपयुक्त नहीं।

[४२]

कुल एक ही शैर कहा है :—

लूँ दाम बख़्ते-ख़ुफ़्ता से इक ख़्वाबे-ख़ुश, वले।
'ग़ालिब' ये ख़ौफ़ है के कहाँ से अदा करूँ॥

लूँ दाम—क़र्ज़ ले लूँ, बख़्त—नसीब से जो खुफ़्ता है—टेढ़ा है अर्थात् सदैव सोता रहता है, एक ख़्वाबे-ख़ुश—एक सुन्दर स्वप्न, वले पर भय यह है कि क़र्ज़ मैं अदा कैसे करूँगा, पटाऊँगा कैसे! मेरा भाग्य मेरी सब नींद छीनकर स्वयं सो गया है। मुझे कभी नींद आती ही नहीं। इसलिये स्वप्न भी नहीं देखता। इसलिये जो स्वप्न उधार लिया है वह चुकाऊँगा कैसे! मिर्ज़ा हमेशा ऋणी रहते थे। इस तरह अपनी बीती कह रहे हैं।

[४३]

यह ग़ज़ल क़ितअनुमा है, अर्थात् पूरी ग़ज़ल में एक ही विचार धारा है। भूतकाल का स्मरण कर आज की परिस्थिति का एक चित्र है—

वह फ़िराक़ और वह विसाल कहाँ!
वो शबो-रोज़, माहो-साल कहाँ?

वह फ़िराक़—विरह और वह विसाल—मिलन अब कहाँ है, वो शबो-रोज़—रात और दिन, माहो-साल—मास और वर्ष अब कहाँ हैं !

फ़ुर्सते कारोबारे-शौक़ किसे ?
ज़ौक़ नज़्ज़ारये-जमाल कहाँ ?

शौक़—इश्क़ के कारोबार की चहल-पहल के लिये अब किसको फ़ुर्सत है, जमाल-सौंदर्य के नज़्ज़ारे—दर्शन का अब किसे ज़ौक़—उत्साह है ?

दिल तो दिल वो दिमाग़ भी न रहा।
शोरे-सौदाए-ख़त्तोख़ाल कहाँ ?

हृदय की बात जाने दो वह दिमाग़ भी न रह गया, वह मस्तिष्क भी नहीं है, जो ख़त्तोख़ाल—नखशिख पर सौदाई—पागल हो शोर—हल्ला मचाया करता था।

थी वो एक शख़्स के तसव्वुर से।
अब वो रानाइए—ख़याल कहाँ ?

वो—वह सब कुछ एक शख़्स—व्यक्ति के तसव्वुर—ध्यान करने के कारण था। अब वह रानाई = शृंगारमय ख़याल—कल्पना कहाँ ?

ऐसा आसाँ नहीं लहू रोना।
दिलमें ताक़त; जिगर में हाल कहाँ ?

रक्त—रुदन सरल काम नहीं है। उसके लिये दिल में ताक़त और जिगर में वह हाल—हालत अब कहाँ है ?

हम से छूटा क़ुमारख़ानए-इश्क़।
वाँ जो जाएँ गिरह में माल कहां !

हमसे इश्क़ का क़ुमारख़ाना—जुआ-घर छूट गया। वहाँ जाएँ तो गिरह में—हमारे पास दाँव में रखने के लिये माल—दिल और जिगर कहाँ है ?

फ़िक्रे दुनिया में सर खपाता हूँ।
मैं कहाँ, और ये वबाल कहाँ ?

फ़िक्रे दुनिया—सांसारिक मोह-माया में सर खपाता हूँ—फँसा रहता हूँ। कहाँ मैं और कहाँ ये वबाल—झंझटें ?

मुज़महिल हो गए क़ुबा 'ग़ालिब'।
वो अनासर में ऐतदाल कहाँ ?

क़ुबा—अंग, मुज़महिल—अशक्त हो गए। अब अनासिर—पंचभूत में ऐतदाल—समन्वय कहाँ ! अर्थात अंतिम समय है।

[४४]

की वफ़ा हमसे तो ग़ैर उसको जफ़ा कहते हैं।
होता आया है कि अच्छों को बुरा कहते हैं॥

माशूक़ ने हमसे वफ़ा—सद्व्यवहार किया तो ग़ैर—प्रतिद्वंदी कहने लगे यह तो जफ़ा—दुर्व्यवहार है। यह भय हुआ कि प्रतिद्वन्दियों के इस तरह चिल्लाने से कहीं माशूक़ सचमुच दुर्व्यवहार न करने लगे। तब उसे समझाते हैं कि अच्छों को बुरा कहना हमेशा से होता आया है। आप इन लोगों की न सुनिए और हम से अच्छा व्यवहार किए जाइए।

आज हम अपनी परेशानिए-ख़ातिर उन से।
कहने जाते तो हैं, पर देखिए क्या कहते हैं॥

हम अपनी परेशानियों का कारण माशूक़ से कहने तो जा रहे हैं पर उसके सामने पहुँच कर देखें मुँह से क्या निकलता है और क्या नहीं निकलता या जैसे एक शायर कहता है कुछ उल्टा-सीधा तो नहीं निकल जाता :—

'हाले-दिल कहने गये थे, हुस्न की तारीफ़ की।
यह भी क़िस्मत का लिखा; तक़रीर उल्टी हो गई॥

अगले वक़्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो।
जो मय-वो-नग़्मों को अन्दोहरुबा कहते हैं॥'

जो मय—सुरा और नग़्मा—संगीत को अन्दोहरुबा—दुख को भगा देने वाला कहते हैं, वे अगले वक़्तों के लोग हैं, पुराने बूढ़े-ठूढ़े हैं। उनसे कुछ न कहो—उनसे कुछ तर्क न करो; उनकी कुछ आलोचना न करो। आज न; सुरा और संगीत आपत्तिजनक तथा दुखद हुए हैं। उनके वक़्तों में शायद इसके

विपरीत रहा हो। तब क्यों बहस करके उनकी धारणाओं को घात पहुँचाओ? तुम अपनी-सी सोचो, उन्हें अपनी-सी सोचने दो।

दिल में आ जाए है, होती है जो फ़ुर्सत ग़श से।
और फिर कौन से नाले को रसा कहते हैं॥

रुदन—विलाप (नाले) का उद्देश्य यह है कि वह माशूक़ तक रसा हो जाय—पहुँच जाय। मैं रोता हूँ और ख़ूब रोता हूँ और रोते-रोते बेहोश हो जाता हूँ। परन्तु जैसे ही ग़श बेहोशी से फ़ुर्सत—छुटकारा मिलता है कि माशूक़ स्वयं तुरन्त दिल में उतर आता है। यदि मेरा यह रोना उसके पास तक नहीं पहुँचा तो फिर किस तरह के रोने को कहोगे कि उसके पास तक पहुँचा?

× × ×

पाये-अफ़ग़ार पे जब से मुझे रहम आया है।
ख़ारे-रह को तेरे हम मेहर-गया कहते हैं॥

मेहर-गया—एक बूटी है। यह जिसके पास हो उस पर सब कृपालु हो जाते हैं। कहते हैं जबसे तुझे हमारे अफ़ग़ार—घायल, पा—पैरों पर रहम—दया आई है तब से हम तेरी ख़ारे-रह—गली के काँटो को मेहर-गया, बूटी समझते हैं, क्योंकि न वे काँटे हमारे पैरों को घायल करते न तुझको हम पर दया आती।

देखिये लाती है उस शोख़ की नख़वत क्या रंग।
उसकी हर बात पे हम 'नामे-ख़ुदा' कहते हैं॥

वह जो कुछ भी बोले हम 'नामे-ख़ुदा' बहुत अच्छा, बहुत ख़ूब, धन्य है, कह देते हैं। इससे उसका नख़वत—घमंड बहुत बढ़ गया है। देखें वह घमंड हम पर क्या रङ्ग लाता है—क्या ग़ज़ब ढाता है।

अंतिम शैर यह है कि 'ग़ालिब' मर गया, कदाचित उसके फ़लाँ-फ़लाँ दोस्त मसिया—शोक-गीत लिखेंगे।

[४५]

आबरू क्या ख़ाक उस गुल की जो गुलशन में नहीं।
है गरेबाँ नंगे-पैराहन जो दामन में नहीं॥

उस गुल—फूल की क्या ख़ाक आबरू—इज़्ज़त है जो गुलशन—फुलवारी में नहीं है। जब चुन लिया गया तो बेचा जायगा, मला जायगा आदि। वह गरेबाँ—कुर्ते के गले का काट भी, पैराहन—वस्त्र या कुर्ते के लिए, नंग—लज्जास्पद है, जो दामन–कुर्तें के पल्लों में नहीं है। गले का काट तभी पल्लो में पहुँचेगा जब वह वहाँ तक फाड़ दिया जायगा। तभी लोग समझेंगे कि आशिक़ है और आशिक़ की यही शोभा है। अन्यथा कुर्ता तो सभी पहिनते हैं। गले के काट को इतना फाड़ना चाहिए कि वह पल्लों या दामन के अर्थात् बगल के काट तक पहुँच जाय। फूल अपने घर, फुलवारी में शोभा देता है। गरेबाँ भी जब फट कर अपने घर, दामन, में पहुँच जाता है, तब शोभा देता है :

× × ×

हो गए हैं जमा अजज़ाए-निगाहे-आफ़ताब।
ज़र्रे उसके घर की दीवारों के रोज़न में नहीं॥

रोज़न—खिड़की। जब सूर्य की किरणें खिड़की में से होकर कमरे में आती हैं, तब बहुत से धूल के छोटे-छोटे कण दिखाई पड़ते हैं। कहते हैं कि माशूक़ के घर की दीवारों की खिड़कियों से जो सूर्य का प्रकाश आता है, उसमें जो धूल के कण दीख पड़ते हैं, वे धूल के कण नहीं हैं, ज़र्रे नहीं हैं, वरन् आफ़ताब—सूर्य की निगाह—दृष्टि के अजज़ा—टुकड़े हैं, अर्थात् सूर्य हज़ार आँखों से माशूक़ को देखने आया है।

क्या कहूँ तारीकिए-ज़िन्दाँने-ग़म, अंधेर है।
पंब नूरे-सुबह से कम जिसके रोज़न में नहीं॥

पंब—रुई का टुकड़ा, दीवाल के छेद में इसलिए लगा दिया जाता है कि बाहर से रोशनी न आए। परन्तु उस ज़िन्दाँने-ग़म—विरह के दुखपूर्ण क़ैद-

ख़ाने की तारीकी—अँधियारी को क्या कहूँ जहाँ ऐसा अँधेरा है कि छेद या खिड़की में रुई का टुकड़ा भर देने से प्रकाश रुकता नहीं वरन् अँधेरे के कारण रुई का टुकड़ा ही नूरे-सुबह—प्रातः रश्मि की तरह चमने लगता है।

× × ×

ज़ख़्म सिलवाने से मुझपर चाराजोई का है तअ़न।
ग़ैर समझा है के लज़्ज़त ज़ख़्मे-सोजन में नहीं॥

मैंने घाव सिलवाये तो मुझ पर यह ताना—कटाक्ष किया गया कि मैं झूठा प्रेमी हूँ, कि इसीलिए चारागोई—इलाज करवा रहा हूँ। प्रतिद्वंदी यह समझता है ज़ख़्मे-सोज़न—सुई से घाव सिये जाने में लज़्ज़त—पीड़ा की मिठास नही है! घाव के सिये जाने में भी दर्द होता है।

× × ×

थी वतन में शान क्या 'ग़ालिब' के हो .ग़ुरबत में क़द्र।
बेतकल्लुफ़ हूँ वो मुश्ते-ख़श के गुलख़न में नहीं।

वतन—घर में ही कौन बड़ी इज़्ज़त थी कि ग़ुरबत—परदेश में क़द्र—आदर किया जाए। मैं बेतकल्लुफ़—बिना हिचक के कह सकता हूँ कि एक मुश्तेख़श—मुट्ठी भर घास हूँ जो कि गुलख़न—भट्ठी में नहीं झोंकी गयी है। घास घर में होती है तो जलायी जाती है। बाहर होती है तो व्यर्थ पड़ी रहती है। इसी तरह मैं घर में था तो जलता था, बाहर हूँ तो बे काम हूँ।

[४६]

कुल तीन ही शैर कहे हैं—

मेहरबाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक़्त।
मैं गया वक़्त नहीं हूँ के फिर आ भी न सकूँ॥

यदि मुझ में तुममें कोई रंजिश आ गई है तो इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि मैंने तुम्हें प्रेम करने से मुख मोड़ लिया है। केवल तुम्हारे मेहरबान—कृपालु होकर चाहे जिस समय बुला लेने भर की देर है। कोई गया वक़्त—भूतकाल थोड़ी हूँ कि फिर वापस लौट ही न सकूँ।

जौफ़ में तानअ़ अग़यार का शिकवा क्या है।
बात कुछ सर तो नहीं है के उठा भी न सकूँ॥

ज़ौफ़—शिथिलता में, अग़यार—प्रतिद्वंदी के तान—व्यंग की शिकायत (शिकवा) क्या? यह सच है कि मैं इतना दुर्बल हो गया हूँ कि सिर जो झुक गया है, उसको उठाना भी मेरे लिये असम्भव है। पर प्रतिद्वंद्वी की व्यंग पूर्ण बातें—कुछ शब्द ही तो हैं। वे इतनी वज़नी नहीं हैं, जितना सिर। बिना शिकायत मैं उन्हें उठा लेता हूँ, अर्थात् चुपचाप सुन लेता हूँ।

ज़हर मिलता ही नहीं मुझको सितमगर, वरना।
क्या क़सम है तेरे मिलने की के खा भी न सकूँ॥

जो वस्तु बहुत प्रिय होती है उसकी क़सम—सौगंध नहीं खाई जाती। प्रिय—मिलन बहुत प्यारी वस्तु है। उसकी क़सम खाना मेरे लिये असम्भव है। परन्तु हे सितमगर—अत्याचारी (प्रिय) तेरे विरह में या तेरे दुर्व्यवहार से तंग आकर ज़हर खा लेना मेरे लिये सहज—साध्य है। कठिनाई यह है कि ज़हर मिल नहीं रहा है। वरना—अन्यथा ज़हर तेरी क़सम थोड़ी है कि मैं उसे न खा सकूँ।

इसे पढ़ने के बाद डा० लक्ष्मी नारायण जी सिलाकारी, (सागर म० प्र०) ने दो शैर भेजे, जो इसी ग़ज़ल के जान पड़ते हैं परन्तु वे इसी क़ाफ़िया-रदीफ़ में अन्य कवि के हैं :—

(१) 'लग गई आग—अगर घर को तो अंदेशा क्या।
शोलए-दिल तो नहीं है के बुझा भी न सकूँ॥'
(२) 'तुम न आओगे तो मरने की हैं सौ तदबीरें।
मौत कुछ तुम तो नहीं हो के बुला भी न सकूँ॥'

[४७]

हम से खुल जाओ बवक़्ते-मय-परस्ती एक दिन ।
वरना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती, एक दिन ॥

खुल जाओ—निस्संकोच हो जाओ, बेतकल्लुफ़ हो जाओ । इस मुहावरे का प्रयोग अन्यत्र भी इसी अर्थ में किया गया है :

'गो न समझूँ उसकी बातें, गो न पाऊँ उसका भेद ।
पर ये क्या कम है के मुझ से वो परी पैकर खुला ॥'

एक दिन मय परस्ती—शराब की पूजा अर्थात् मधुपान के वक़्त मुझ से निस्संकोच होकर बातचीत करो । वरना—अन्यथा मस्ती—हम को शराब का नशा अधिक हो गया है, यह उज़्र—बहाना करके एक दिन—किसी दिन हम तुम को छेड़ेंगे—चिढ़ाएँगे या सताएँगे । बाद में जब तुम हमारी इस हरकत की शिकायत करोगे तो कह देंगे कि क्या करें, उस दिन ज़्यादा चढ़ गई थी । इस स्वाँग के पहले ही खुल जाओ तो अच्छा हो ।

ग़ुर्रए-औजे-बिनाए-आलमे इम्काँ न हो ।
इस बुलंदी के नसीबों में है पस्ती एक दिन ॥

आलम—संसार जो इम्काँ—नश्वर है उसकी बिना—बुनियाद या निर्माण की औज—ऊँचाई पर ग़ुर्रा—गर्वोन्नत मत हो, अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य का घमंड न कर क्योंकि इस बुलन्दी—ऊँचाई के नसीब—भाग्य में भी एक दिन पस्ती-हार या ढह जाना लिखा है ।

क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे के-हाँ ।
रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ॥

मिर्ज़ा अधिकतर ऋणी रहा करते थे । एक बार उनके साहूकार या मधुविक्रेता ने उनपर अपनी उधारी की नालिश ठोंक दी । मिर्ज़ा के पास

रुपया-पैसा चुकाने के लिये था नहीं। उन्होंने जज के सामने तत्काल यह शेर पढ़ा। जज काव्य-पारखी था। उसने अपने पास से क़र्ज़ चुका दिया और मिर्ज़ा को छुट्टी दे दी।

क़र्ज़ की पीते थे—या पैसा क़र्ज लेते थे और शराब में ख़र्च करते थे या दूकानदार से ही शराब उधार लेकर पीते थे पर हाँ, इतना अवश्य जानते थे किसी दिन हमारी यह फ़ाक़ामस्ती—मोहताजी, यह ऋणम् कृत्वा सुरां पिवेत् रंग लाएगी—हमें घपले में डालेगी।

> नग़माहाये-ग़म को भी ऐ दिल ग़नीमत जानिए।
> बेसदा हो जाएगी यह साज़े-हस्ती, एक दिन॥

ग़म—दुख के नग़मा—गीतों अर्थात् विरह—रुदन को भी मेरे दिल ग़नीमत जानो—बड़ी बात लेखों क्योंकि एक दिन यह हस्ती—जीवन का साज़—वाद्य भी बेसदा—स्वर-विहीन हो जायगा। इस भाव को अन्यत्र भी व्यक्त किया है—

> एक हंगामे पे मौक़ूफ़ है घर की रौनक़।
> नोहये-ग़म ही सही, नग़मये शादी न सही॥

> धौल-धप्पा उस सरापा-नाज़ का शेवा नहीं।
> हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेश-दस्ती, एक दिन॥

मिर्ज़ा की मखौल की आदत ने यह शेर पैदा किया है, अन्यथा यह उनके गम्भीर चिंतन के प्रतिकूल है। वह तो सरापा-नाज़—नख से शिख तक कमनीय है। धौल-धप्पा—मारपीट करने या हाथ छोड़ देने की उसकी आदत (शेवा) नहीं थी। हमने ही एक दिन पेश-दस्ती कर दी थी—अनुचित रूप से हाथ बढ़ा दिया था। तो उसने एक चाँटा दिया और तभी से धौलधप्पा का अध्याय शुरू हुआ। उसकी आदत नहीं थी। हमारी ही ग़लती से हाथ छूटा सो छूटा।

[४८]

हम पर जफ़ा से तर्क-वफ़ा का गुमाँ नहीं।
इक छेड़ है, वगर्ना मेरा इम्तेहाँ नहीं॥

माशूक़ हम पर जफ़ा—अत्याचार करता है, तथापि उसको यह गुमाँ—संदेह नहीं है कि उसके अत्याचार से हम वफ़ा—अपने सच्चे प्रेम को तर्क—त्याग देंगे। उसका अत्याचार करना एक मात्र छेड़-माशूक़ी अदा है। वगर्ना—अन्यथा मेरा इम्तेहाँ नहीं-मेरी परीक्षा नहीं है कि आत्यचार सह सकते हो या नहीं। हम तो कब्र के परीक्षा में पास हैं। अत्याचार को रंगीन शब्दावली से ढाँप दिया है।

किस मुँह से शुक्र कीजिए उस लुत्फ़े-ख़ास का।
पुरसिश है और पाये सुख़न दर्मयाँ नहीं॥

पुरसिश—मेरे अच्छे—भले के हालचाल को दर्याफ़्त तो कर लेता है परन्तु दर्मयाँ—हमारे और माशूक़ के बीच सुख़न—शब्द की पाया—बुनियाद नहीं रहती अर्थात् मुँह से कोई बातचीत नहीं होती। वह इशारों में ही हमारा हाल दरयाफ़्त कर लेता है। इन इशारों में ख़ास—विशेष लुत्फ़—आनन्द मिलता है उसका किस मुँह से शुक्र करू—धन्यवाद दूँ। एक तरफ़ चुप्पी, दूसरी तरफ धन्यवाद के लिये मुँह खोलने में विरोधाभास है। यह शैर ईश्वर के लिये भी लागू है।

हमको सितम अज़ीज़, सितमगर को हम अज़ीज़।
नामेहबाँ नहीं है, अगर मेहबाँ नहीं॥

हमको सितम—अत्याचार अज़ीज़-प्रिय है। उस सितमगर—अत्याचारी (माशूक़) को हम प्रिय हैं। यदि हम प्रिय न होते, तो हम पर वह सितम न करता क्योंकि सितम में हमें आनन्द आता है और अप्रिय व्यक्ति को कोई आनन्द नहीं देना चाहता। इससे साफ प्रगट है कि वह हम पर मेहबाँ—कृपालु नहीं है, तो नामेहबाँ—अकृपालु भी नहीं है। फिर रंगीन ख़याली से अत्याचार को सदव्यवहार बना दिया है।

बोसा नहीं, न दीजिए, दुश्नाम ही सही।
आख़िर ज़बाँ तो रखते हो तुम गर दहन नहीं ॥

माशूक़ की जैसे कमर इतनी पतली होती है कि लगभग ग़ायब, वैसे ही दहन—मुँह भी इतना छोटा होता है कि पता नहीं चलता। तो जब मैं बोसा—चुम्बन की याचना करता हूँ, तब कह देते हो कि हमारे तो मुँह ही नहीं, चुंबन दें तो किसका ! अच्छा मत दो। दुश्नाम—गाली तो दे सकते हो, वही दो। मुँह नहीं है तो ज़बान—जीभ तो है।

इसके बाद कई शैर क़ितअबन्द, अर्थात् एक ही विचार-धारा में हैं, जिनमें अपनी सहन—शक्ति की चर्चा है।

नुक़्साँ नहीं जुनूँ में बला से हो घर ख़राब।
सौ गज़ ज़मीं के बदले बियाबाँ गिराँ नहीं ॥

जुनूँ—पागल हो जाने से घर ख़राब हो जाय—बर्बाद हो जाय तो हमारी बला से। इससे हमारा कोई नुकसान नहीं। घर अधिक से अधिक सौ गज़ ज़मीन की नाप—जोख का ही तो था। उसके बदले पागलपन में हमें बियावाँ—जंगल का जंगल या सारा वीराना दे दिया तो यह सौदा कोई गिराँ—मँहगा नहीं पड़ा।

कहते हो क्या लिखा है तेरी सर-नविश्त में।
गोया जबीं पे सिज्दये—बुत का निशाँ नहीं ॥

तुम और पूछते हो कि मेरे सर नविश्त—भाग्य में क्या लिखा है ? गोया—जैसे जबीं-मेरे माथे पर बुत-मूर्ति या माशूक़ की सिज्दा—पूजा का निशान तुम्हें दीख नहीं पड़ता ! तात्पर्य—तुम्हारी पूजा ही मेरे भाग्य में लिखी है या सौंदर्योपासना ही मेरे भाग्य में है।

× × ×

जाँ है बहाये-बोसा, वले क्यों कहे अभी।
'ग़ालिब' को जानता है के वो नीमजाँ नहीं ॥

बोसा—चुंबन का बहाय मूल्य, जाँ—जीवन है पर अभी माशूक़ यह सौदा क्यों करे ? 'ग़ालिब' जान दे देगा और चुंबन ले लेगा। वह जानता है कि अभी 'ग़ालिब' नीम-जाँ—अधमरा नहीं हुआ है। जब अधमरा हो जायगा तो कहेगा कि लाओ जान और लो चुंबन। मेरे पास देने की कुल आधी जान रह जायगी। इस प्रकार जब मैं सौदा पटाने लायक नहीं रहूँगा, तब वह अपनी बोली बोलेगा। अभी तो मैं तुरन्त पूरी जान के साथ खेल कर चुंबन का सौदा कर लूँगा।

[४६]

मानअ़ दश्ते-नवर्दी कोई तदबीर नहीं।
एक चक्कर है, मेरे पाँव में ज़ंजीर नहीं॥

मुझे दश्त—जंगल में नवर्दी—भटकने से मानअ़—रोकने वाला कोई तदबीर-उपाय नहीं है। मेरे पाँव में चक्कर है अर्थात भटकना ही मेरे भाग्य में है। ये जो तुमने ज़ंजीर बाँध दी है, यह भी एक चक्कर है,—गोल—गोल चक्र के रूप की ही तो है। अब मैं ज़ंजीर बँधे पाँवों से भटकूँगा। ज़ंजीर है प्रेम की और चक्कर है पागलपन का।

× × ×

हसरते-लज्ज़ते आज़ार रही जाती है।
जादहे-राहे-वफ़ा, जुज़ दमे-शमशीर नहीं॥

आज़ार—रोग (प्रेम) की लज़्जत—मिठास का अनुभव करने की हसरत—इच्छा पूरी होती नहीं दीखती क्योंकि राहे-वफ़ा—सच्चे प्रेम के रास्ते की जादह—पगडंडी जुज़—सिवाय दमे-शमशीर—तलवार की धार के और कुछ नहीं। यहाँ प्रथम पग में ही अंत है, रोग का आनन्द लेने का समय ही नहीं। पगडंडी भी अधिक अन्तर को कम कर देती है।

× × ×

सर खुजाता है जहाँ ज़ख़्मे-सर अच्छा हो जाय।
लज़्ज़ते-संग ब-अंदाज़ए तक़रीर नहीं॥

सिर खुजाना मुहावरा है पिटने की इच्छा होना। उधर घाव भी जब अच्छा होने लगता है, तब कुछ खुजली होने लगती है। लड़कों ने पागल समझ पत्थर मारे थे। घाव हो गए। अच्छे होने लगे तो फिर इच्छा होने लगी कि लड़के पत्थर मारें, क्योकि संग—पत्थर की लज़्ज़त-मिठास अर्थात् पत्थर से जो घाव हो जाते हैं उनकी मिठास ऐसी है कि तक़रीर—शब्दों में उसका अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता।

× × ×

'ग़ालिब' अपना भी अक़ीदा है बक़ौले 'नासिख़'।
"आप बेबहरा है जो मौतक़िदे 'मीर' नहीं॥"

महाकवि मीर तक़ी 'मीर', जो मिर्ज़ा से पहले गुज़रे हैं, की प्रशंसा में यह मक़ता कहा गया है। अन्य प्रसिद्ध कवि 'नासिख़' के समान 'ग़ालिब' कहते हैं कि उनका भी अक़ीदा-विश्वास है, और उन्ही 'नासिख़' के शब्दों में: "जो 'मीर' पर दिल से विश्वास नहीं करता, (मौतक़िद) नहीं, अर्थात् उनके कलाम का अध्ययन और प्रशंसा नहीं करता वह आप-स्वयं बेबहरा—अनभिज्ञ, मन्दमति है।"

[५०]

इश्क़ तासीर से नौमेद नहीं।
जाँसपारी शजरे-वेद नहीं॥

इश्क़ अपने प्रभाव (तासीर) से नौमेद—निराश नहीं है। जाँसपारी—प्राण दे देना वेद नामक शजर—वृक्ष नहीं है, जिस में कोई फल ही नहीं आता। अर्थात् प्रेम अवश्य फलदायक है।

× × ×

राज़े माशूक़ न रुसवा हो जाय।
वरना मर जाने में कुछ भेद नहीं॥

यदि यह डर न होता कि प्रिय का राज़—रहस्य रुसवा—प्रगट हो जायगा, अर्थात् प्रियतम बदनाम हो जायगा तो मर जाने में कोई भेद—अन्तर नहीं; अर्थात् मरना-जीना मेरे लिए बराबर है। मैं मर जाता।

× × ×

कहते हैं जीते हैं उम्मीद पे लोग।
हम को जीने की भी उम्मीद नहीं॥

आशा पर जीवन निर्भर है, ऐसा माना गया है। जब जीवन की ही आशा नहीं रही, तो आशा किसकी !

[५१]

मिलती है खूये यार से नार इल्तेहाब में।
काफ़िर हूँ, गर न मिलती हो राहत अज़ाब में॥

मैं मर गया हूँ और नर्क में मुझे स्थान मिला है। नर्क में नार—आग जल रही है। उस आग की इल्तेहाब—प्रचंडता जानी-मानी है, क्योंकि वह यार—माशूक़ की ख़ू—आदत से मिलती-जुलती है अर्थात् माशूक़ भी इसी तरह मुझ पर आग-भभूका हुआ करता था। माशूक़ के आग-भभूका होने से मुझे बहुत राहत—चैन मिलता था। अज़ाब—नर्क की आग (साधारण अर्थ 'पाप' है) जब माशूक़ की आग से मिलती-जुलती है, तब उससे मुझे चैन मिलना आवश्यक है। यदि चैन नहीं मिलता तो मैं काफ़िर-मुसलमान नहीं; विधर्मी हूँ।

कब से हूँ, क्या बताऊँ जहाने-ख़राब में।
शबहाये-हिज्र को भी रखूँ गर हिसाब में।

मैं क्या बतलाऊँ कि इस ख़राब—कलुषित, जहान—संसार में मैं कब से जो

रहा हूँ। अपनी उम्र के सालों की गिनती करूँगा तो उसमें हिज्र—वियोग की शबहाय—रातें भी जोड़नी पड़ेंगी और एक-एक विरह-रात्रि मुझे हज़ार-हज़ार साल की जान पड़ी है। न जाने कितनी ऐसी रातें बीती हैं। यदि इन रातों को भी हिसाब-जोड़ में रक्खूँ तो यह गणना करना असंभव है कि मैं कब से जी रहा हूँ।

ता फिर न इंतेज़ार में नींद आए उम्र भर।
आने का अहद कर गए आए जो ख़्वाब में ॥

ता—जिससे कि फिर तमाम उम्र इन्तेज़ार—प्रतीक्षा करने के कारण नींद न आए वे जब ख़्वाब—स्वप्न मे आए तो अहद-वादा कर गए कि हम एक दिन आएँगे। अब यदि सोता हूँ तो यह भय है कि सोते में न आकर चले जायँ।

क़ासिद के आते-आते ख़त इक और लिख रखूँ।
मैं जानता हूँ जो वो लिखेंगे जवाब में ॥

क़ासिद—पत्र-वाहक। वे जवाब में यही लिखेंगे कि ख़बरदार! आगे पत्र मत भेजना या यह आशा कभी न करना कि हम आवेंगे आदि-आदि मर्मांतक बातें। इधर बिना पत्र लिखे चैन नहीं। इसलिये वे चाहे जितना ख़राब जवाब दें, मैं पत्र-वाहक के लौटते तक एक पत्र और लिख रखूँ। पत्र लिखने के बारे में अन्यत्र कहा है—

हाल दिल लिखूँ कब तक जाऊँ जाके दिखला दूँ।
अँगुलियाँ फिगार अपनी ख़ामा खूँ-चका अपना ॥

मुझ तक कब उनकी बज़्म में आता था दौरे-जाम।
साक़ी ने कुछ मिला न दिया हो शराब में ॥

उनकी बज़्म—सभा में दौरे—जाम—प्याले की पहुँच मुझ तक तो कभी नहीं होती थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज प्याला मुझ तक पहुँच गया है। हो-न-हो इसमें कुछ भेद है। साक़ी भी तो उन्हीं का आदमी है और उनका प्रेमी भी है। इसने आज शराब में कुछ, अर्थात् ज़हर तो नहीं मिला दिया?

जो मुन्करे वफ़ा हो फरेब उसपे क्या चले?
क्यों बदगुमाँ हूँ दोस्त से; दुश्मन के बाब में!

जो वफ़ा—सचाई, सद्व्यवहार से मुन्कर हो—इन्कार करता हो, अर्थात् जिसके कोश में 'वफ़ा' शब्द को ही स्थान न हो, उस पर फ़रेब—धोखे या झूठी प्रीति का प्रभाव हो जाय यह असंभव है। आज दुश्मन, प्रतिद्वंदी के बाब में—बारे में मैं क्यों अपने दोस्त माशूक़ के प्रति संदेहशील हूँ। प्रतिद्वंदी झूठा प्रेमी है (प्रत्येक प्रेमी प्रतिद्वंदी को झूठा प्रेमी ही मानता है) वह मेरे दोस्त—माशूक़ पर झूठा प्रेम दिखा रहा है। मेरे माशूक़ के कोश में जब 'वफ़ा' शब्द ही लापता है, तब मैं यह गुमाँ—शक क्यों करूँ कि वह प्रतिद्वंदी के धोखे में आ जायगा!

मैं मुज़तरिब हूँ वस्ल में ख़ौफ़े रक़ीब से।
डाला है तुमको वहम ने किस पेचो-ताब में॥

आज वस्ल—मिलन-यामिनी में भी मैं रक़ीब—प्रतिद्वंदी के खौफ़—भय से मुज़तरिब हूँ कि कहीं वह न टपक पड़े और दाल—भात में मूसरचन्द बन जाय। पर तुम को किस वहम—संदेह ने पेचो-ताब—परेशानी में डाल दिया है! कहीं मेरी घबराहट का कारण तुम यह तो नहीं समझ बैठे कि मैं किसी और माशूक़ के चक्कर में हूँ।

मैं और ख़ते-वस्ल! ख़ुदासाज़ बात है।
जाँ नज़्र देनी भूल गया इज़्तेराब में॥

कहाँ मैं और कहाँ तुम्हारा ख़त—पत्र जो वस्ल—मिलन का संदेश दे रहा है। यह तो ख़ुदासाज़—भगवान की देन हो गई और इज़्तेराब—घबराहट के मारे मैं यह भूल ही गया कि इस शुभ—संदेश के उपलक्ष में मुझे जाँ—प्राण की नज़्र-भेंट दे देनी चाहिए।

त्यौरी चढ़ी हुई है जो अन्दर नक़ाब के॥
है इक शिकन पड़ी हुई तर्फ़े-नक़ाब में॥

तर्फ़े-नक़ाब घूँघट के बाहर घूँघट के कपड़े पर जो एक शिकन—सिलवट पड़ी हुई है, उससे मैं समझ गया कि घूँघट के भीतर तुम्हारी त्यौरियाँ चढ़ी हुई हैं-भौंहें तनी हुई हैं, जिस कारण घूँघट बाहर भी तन गया है।

लाखों लगाव एक चुराना निगाह का।
लाखों बनाव एक बिगड़ना अ़ताब में ॥

लगाव है प्रेम या मित्रता। अन्यत्र कहा है—'लाग (दुश्मनी) हो तो उसको हम मानें लगाव (मित्रता)'। यहाँ—लगाव मित्रता से देखना। तुम्हारा प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखना सुन्दर है, बहुत सुन्दर है। परन्तु एक बार आँख चुरा कर देखना, तिरछी आँखों से चोरी-चोरी देखना लाखों प्रेमपूर्ण दृष्टियों को मात करता है। इसी प्रकार तुम्हारा बनाव-शृंगार करना तुम्हारे सौंदर्य को उद्दीप्त करता है। परन्तु अताब—क्रोध में बिगड़ने—उद्दीप्त होने में तुम्हें जो सौंदर्य प्राप्त होता है, उसके सामने लाख-लाख शृंगार भी कुछ नहीं।

मिर्ज़ा के एक प्रतिद्वंदी थे जो उनके काव्य में क्लिष्टता तथा भाव-संदिग्धता का दोष निकाला करते थे। जब यह शैर सुना तो दंग रह गए।

× × × ×

'ग़ालिब' छुटी शराब पर अब भी कभी-कभी।
पीता हूँ रोज़े-अब्रो-शबे माहताब में ॥

छोड़ा तो भाई पर अब भी कभी-कभी रोज़े—अब्र—उमड़े—घुमड़े दिनों और शबे—माहताब—चाँदनी रातों में पी लेता हूँ।

[५२]

हैराँ हूँ दिल को रोऊँ के पीटूँ जिगर को मैं।
मक़दूर हो तो साथ रखूँ नौहागार को मैं ॥

दो-दो प्रियजन, दिल और जिगर, एक साथ काल-कवलित हो गए हैं। मैं हैरान हूँ कि अकेला मैं, किसे रोऊँ, किसे न रोऊँ। फिर इतने मर्मान्तिक शोक! और रोने वाला एक मैं, यह भी लज्जास्पद है। यदि मेरे मक़दूर—सामर्थ्य की बात होती तो एक नौहागर—पेशेबाज़ रोने-वाले को (किसी-किसी समाज में ये अब भी प्राप्य हैं) अपने साथ रखता, क्योंकि यह रोना जन्म भर है, और फिर दिल को मैं रोता, जिगर को वह, या अदल-बदल कर भी।

छोड़ा न रश्क ने के तेरे घर का नाम लूँ।
हर इक से पूछता हूँ कि जाऊँ किधर को मैं ॥

जब तेरे घर के लिये चला तो रश्क—ईर्ष्या भी मेरे साथ-साथ चली। चला तो पर तेरा घर कहाँ है, यह नहीं जानता था। अब जो राहगीर मिलता है, उसी से पूछता हूँ कि मैं कहाँ जाऊँ। वह पूछता है—किस के घर जाना है? मैं ईर्ष्यावश कह नहीं सकता कि अमुक के घर जाना है। एक ईर्ष्या यह कि कहीं राहगीर भी मेरे साथ-साथ तेरे घर न चल पड़े। दूसरी यह कि मेरी जीभ को तेरा नाम लेने का आनन्द मिल जायगा। मैं क्यों लेने दूँ?

मिर्ज़ा प्रेम में इतने तन्मय हो जाना चाहते थे कि वे शरीर के अवयवों को भी आत्मा से भिन्न मानने लगे। अन्यत्र भी उन्होंने कहा है :—

देखना क़िस्मत के आप अपने पे रश्क आजाय है।
मैं उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाय है ॥

यहाँ आँखों से ईर्ष्या प्रगट की गई है।

जाना पड़ा रक़ीब के दर पर हज़ार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रह-गुज़र को मैं ॥

तेरे घर का पता तो मैं नहीं जानता, परंतु तेरी रह-गुज़र—अधिकतर तेरे आने-जाने के मार्ग को जानता हूँ। ऐ काश—ईश्वर करता कि यह भी न जानता तो अच्छा होता, क्योंकि हज़ार बार पीछा करते-करते मुझको रक़ीब—प्रतिद्वंदी के दर-द्वार तक जाना पड़ा है। एक दुख यह कि हम दुश्मन के द्वार गए, दूसरे यह कि तू हमेशा दुश्मन के ही यहाँ जाता है।

है क्या जो कस के बाँधी है मेरी बला डरे।
क्या जानता नहीं हूँ तुम्हारी कमर को मैं?

मुहावरा है कि हमने फलाँ काम के लिए कमर कस ली—अर्थात् वह काम अब हम कर के ही रहेंगे। तुम ने संदेश भेजा है कि ग़ालिब को क़त्ल करने के लिए अब तुमने कमर कस कर बाँध ली है, परंतु डरे हमारी बला!

हम जानते हैं कि तुम्हारी कमर तो लापता है, ग़ायब है—बाँधोगे तो किस चीज़ को ? अर्थात् तुम मुझे क़त्ल नहीं करोगे, यह एक भमका छोड़ रहे हो।

लो वो भी कहते हैं के ये बे-नंगो-नाम है।
यह जानता अगर तो लुटाता न घर को मैं॥

बे-नंगो-नाम है—बेहैसियत का है, घर-द्वार नहीं है। उन लोगों के लिए कहा गया है, जिन पर इन्होंने दिल खोल कर ख़र्च किया; क़र्ज़ीले हो गए, बर्बाद हो गए और ऐन मुसीबत के वक़्त पर उन्होंने केवल आँखें ही नहीं फेरीं यह ताना भी दिया कि वह बे-नंगो-नाम—फ़ाक़ामस्त और ख़ानाबदोश है। अगर मैं जानता कि ऐसा व्यवहार करेंगे, तो उन पर अपना घर न लुटा देता।

चलता हूँ थोड़ी दूर हरेक तेज़-रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं॥

यह जानता हूँ कि मेरी एक मंज़िल, मेरा एक गन्तव्य है। वहाँ पहुँचने के लिए बेचैन हूँ। वह माशूक़ का घर भी हो सकता है और ईश्वर का घर भी। मैं बेचैन हूँ। जो तेज़-रौ—जल्दी-जल्दी चलता है, मैं समझता हूँ वह भी माशूक़ के घर जाने की बेचैनी में जल्दी-जल्दी चल रहा है और स्वयं रास्ता न जानने के कारण थोड़ी दूर उसके साथ चलता हूँ, पर वह तो इधर-उधर अटक रहता है। राहबर—पथ-प्रदर्शक को न पहचानने के कारण मुझे निराश हो जाना पड़ता है। ऐसे ही जो भी योगी यदि कह देता है कि मैं ईश्वर के दरबार तक तुझे पहुँचा दूँगा, मैं उसका शिष्य हो जाता हूँ, पर वह तो कहीं बीच ही में ऋद्धि-सिद्धि में अटक जाता है। जब तक गुरु नहीं मिलता तब तक थोड़ी दूर भटकना ही भाग्य में है। इसी भाव को हक़ीक़ी (आध्यात्मिक) पक्ष में कबीरदास जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

कबीर बन-बन मैं फिरा ढूँढ फिरा सब गाँम।
राम सरीखा जन मिले, तब पूरा है काम॥

× × ×

फिर बेख़ुदी में भूल गया राह कूये-यार।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बर को मैं ॥

कूये-यार—माशूक़ की गली की राह मैं भूल गया। अर्थात् एक दिन गया ज़रूर था। भूल इसीलिए गया कि वहाँ पहुँचते ही बेख़ुद—आत्म-विस्मृत हो गया, अपना होश-हवास वहीं छूट गया। अब जो भटक रहा है वह 'मैं' नहीं हूँ। बेख़ुदी में राह भूल गया वगर्ना—अन्यथा एक दिन उसकी गली में जाकर अपनी ख़बर लेता, देखता कि मेरा वहाँ क्या हाल है। अपने को आत्म-चेतन और आत्म-विस्मृत दो अलग-अलग व्यक्ति माना है।

अंतिम शैर एक व्यक्ति के लिए आशीर्वाद है।

[५३]

ज़िक्र मेरा ब-बदी भी उसे मंज़ूर नहीं ॥
ग़ैर की बात बिगड़ जाए तो कुछ दूर नहीं ॥

मेरा ज़िक्र—चर्चा, ब-बदी—चाहे वह मेरी बुराइयों से भरा हुआ ही क्यों न हो, उसे मंज़ूर नहीं—वह सुनना नहीं चाहता। इधर ग़ैर—मेरे प्रतिद्वंदी की आदत है कि वह बार-बार या लगातार मेरी बुराई उसके सामने करता रहता है, बिना बुराई किए रह नहीं सकता और वह बुराई तक सुनकर नाराज़ हो जाता है। इसलिये कुछ दूर नहीं—कुछ असंभव नहीं कि मेरा नाम बार-बार सुनकर वह प्रतिद्वंदी से ही नाराज़ हो जाय और उसकी बात बिगड़ जाय अर्थात् प्रतिद्वंदी का उठना-बैठना बंद हो जाय।

वा'दये-सैरे-गुलिस्ताँ है, ख़ुशा-तालए-शौक़।
मुज़्दए-क़त्ल मुक़द्दर है, जो मज़्कूर नहीं ॥

ऐ शौक़ हे प्रेम, ख़ुशाताला—ख़ुश हो जा क्योंकि गुलिस्ताँ—फुलवारी की सैर करने का उसने वादा मुझ से कर दिया। मुज़्दहे-सुख पहुँचाने वाली क़त्ल—हत्या ही मेरे मुक़द्दर में है—भाग्य में है पर मज़्कूर नहीं—इसकी चर्चा उसने नहीं

की। अर्थात् वह फूलों को देख-देख ख़ुश होगा। मुझे ईर्ष्या होगी और मैं जान दे दूँगा।

× × ×

क़तरा अपना भी हक़ीक़त में है दरिया, लेकिन।
हम को तक़लीद तुनक-ज़र्फ़ए-मंसूर नहीं॥

महात्मा मंसूर को जैसे ही ब्रह्मज्ञान हुआ वैसे ही वे चिल्लाने लगे 'अनल हक़'—जो तुम हो, वही मैं हूँ। मिर्ज़ा कहते हैं हमारा क़तरा--बिन्दु भी हक़ीक़त में, यथार्थ में (यहाँ हक़—अध्यात्म—ज्ञान में) दरिया सिंधु है, अर्थात् हमारी आत्मा भी परमात्मा है। पर हमें मंसूर की तुनक—कम, ज़र्फ़—अक़्ली की तक़लीद—पैरवी, मंज़ूर—स्वीकृत नहीं अर्थात् उनका अनुगमन नहीं करना है—चिल्लाना नहीं है, क्योंकि यह ज्ञान गूँगे का गुड़ है।

× × ×

मैं जो कहता हूँ के हम लेंगे क़यामत में तुम्हें।
किस रऊनत से वो कहते हैं के हम हूर नहीं॥

मुसलमानों का विश्वास है कि स्वर्ग में उन्हें हूरें—अप्सराएँ मिलेंगी, जो ईश्वर क़यामत—प्रलय के दिन बाँटेगा। माशूक़ से कहा अभी नहीं मिलते, न मिलो; उस दिन तो हम तुम्हें माँग लेंगे। उन्होंने किस रऊनत—अदा से उत्तर दिया कि कौन हम अप्सरा हैं कि तुम हमें माँग लोगे?

× × ×

अंतिम शेर व्यक्तिगत है, जिस का सम्बन्ध फ़ारसी कवि 'ज़हूर' से है।

[५४]

नाला, जुज़ हुस्न-तलब, ऐ सितम ईजाद नहीं।
है तक़ाज़ाए-जफ़ा शिकवये-बेदाद नहीं॥

ऐ सितम—पीड़ाओं का ईजाद—आविष्कार करने वाले, अर्थात् ऐ नित

नई पीड़ा पहुँचाने वाले ! मेरा नाला—रुदन, जुज़—सिवाय एक हुस्न—सुन्दर तलब—माँग, निवेदन के कुछ नहीं है। वह तक़ाज़ा—माँग है जफ़ा—अत्याचार की। बेदाद—निर्दयता की शिकवा-शिकायत नहीं है। मैं जितना अधिक रोऊँगा,, उतना ही तुझे अधिक क्रोध आएगा। क्रोधित होकर तू और अधिक अत्याचार करेगा, मुझे और अधिक इश्क़ का मज़ा मिलेगा, यही रुदन का उद्देश्य है।

× × ×

कम नहीं जल्वागरी में तेरे कूचे से बहिश्त।
यही नक़्शा है वले इस क़दर आबाद नहीं॥

जल्वागरी—रौनक में तेरी गली से बहिश्त—बैकुंठ कम नहीं है। यही नक़्शा है—सब ठाठ बाट यही है वले—परन्तु इस क़दर—इतने अधिक लोग वहाँ आबाद नहीं हैं, वहाँ निवास नहीं करते—इतनी चहल-पहल वहाँ नहीं है। क्योंकि जितने लोग तुझ पर फ़िदा हैं, उतने ईश्वर पर नहीं।

करते किस मुँह से हो ग़ुरबत की शिकायत 'ग़ालिब'
तुम को बेमेहरिये याराने—वतन याद नहीं॥

यह भाव मिर्ज़ा ने बार-बार व्यक्त किया है। ग़ुरबत—मुसाफ़िरत में परदेश में किस मुँह से शिकायत करते हो कि यह दुख है, वह दुख है। क्या तुम वतन-घर के यारों—दोस्तों की बेमेहरी—अकृपा भूल गए !

[५५]

कुल तीन शैर कहे हैं—

दोनों जहान् दे के वो समझे ये ख़ुश रहा
याँ आ पड़ी ये शर्म के तक़रार क्या करें॥

जहान—लोक। इस्लाम में दो ही लोकों की कल्पना है, पृथ्वी और आकाश, पाताल की नहीं। उन्होंने मुझे दोनों लोक—इहलोक तथा परलोक

दे दिया और यह समझे कि अब मैं अवश्य खुश हो गया होऊँगा। मैं खुश नहीं हुआ था। मुझे इस शर्म—लज्जा का अनुभव हो रहा था कि दोनों लोक पाने के बाद अब तक़रार, हुज्जत करना अधिक माँगना, अशिष्टता है। इसलिए चुप रह गया। क्योंकि सच बात तो यह है कि मैं लोकों का इच्छुक नहीं था, लोकों के बनाने वाले का था।

थक-थक के हर मुक़ाम पे दो चार रह गए।
तेरा पता न पाएँ तो नाचार क्या करें॥

मुक़ाम—पड़ाव। गन्तव्य स्वर्ग लोक है जहाँ तू रहता है पर जिसका किसी को पता नहीं। इसलिये हर पड़ाव पर, कोई आरंभ में ही, कोई मध्य में थक-थक अटक गए। लाचारी (नाचार) थी।

क्या शमअ के नहीं हैं हवा-ख़्वाह अहले बज़्म।
हो ग़म ही जाँगुदाज़-तो ग़मख़्वार क्या करें॥

हम अहले—बज़्म—सभासद, विशेषकर स्वयं कवि, शमा के हवा-ख़्वाह—हम-दर्द, शमा के साथ सहानुभूति करने वाले नहीं हैं? हैं, अवश्य हैं। कठिनाई यह है कि जब ग़म पीड़ा ही;—इश्क़ के समान शमा के जलने की पीड़ा ही जाँगुदाज़—जीवन को पिघलाने वाली हो तो ग़मख़्वार—पीड़ा हल्की करने वाले लोग क्या करें। वे जानते हैं आशिक़ की पीड़ा आशिक़ को और शमा की शमा को पिघलाएगी ही।

[५६]

कुल एक ही शैर कहा है—

हो गई है ग़ैर की शीरीं-बयानी कारगर।
इश्क़ का उसको गुमाँ हम बेज़बानों पर नहीं॥

ग़ैर—प्रतिद्वन्दी की शीरीं-बयानी—मीठी-मीठी बातें उस पर कारगर -असर कर गई हैं। वह उसे सच्चा प्रेमी समझने लगा है और हम सच्चे प्रेमियों पर बेज़बान—ख़ामोश रहने के कारण, शब्दों द्वारा प्रेम व्यक्त न करने के कारण उसको यह गुमाँ—संदेह भी नहीं कि हम भी इश्क़—प्रेम करत हैं।

[५७]

कुल दो ही शेर कहे हैं :—

क़यामत है, के सुन लैली का दश्ते-क़ैस में आना।
तअ़ज्जुब से वो बोला—यूँ भी होता है ज़माने में॥

आशिक़ लैला-मजनू का क़िस्सा माशूक़ को इस ढंग से सुना रहा था कि उसकी सहानुभूति प्राप्त कर सके। जब यह कहा कि लैला, मजनू को ढूँढ़ते हुए, उस दश्त—जंगल में पहुँची जहाँ क़ैस—मजनू था, तो माशूक़ ने आश्चर्य से यह कह कर क़यामत ढा दी कि ज़माने—दुनिया में कहीं ऐसा भी होता है के माशूक़ आशिक़ को ढूँढ़ता फिरे। नहीं होता, अर्थात् कम-से-कम मैं तुम पर कोई कृपा नहीं करूँगा।

दिले नाज़ुक पे उसके रहम आता है मुझे 'ग़ालिब'।
न कर सरगर्म उस काफ़िर को उल्फ़त आज़माने में॥

तू उल्फ़त—प्रेम को आज़माना चाहता है। यह परीक्षा लेना चाहता है कि वह तुझसे प्रेम करता है या नहीं। तू जान दे देना चाहता है और देखना चाहता है कि वह दुखी होता है या नहीं। वह दुखी होगा पर सोच तो उसके नाज़ुक दिल की क्या हालत होगी। दया कर। मत मर। उसे सरगर्म—मस्ती, प्रेम के दुख की मस्ती; से बचा ले।

[५८]

ये हम जो हिज्र में दीवारो-दर को देखते हैं।
कभी सबा को कभी नामावर को देखते हैं॥

सबा—समीर जो सब जगह जा सकता है। जैसे महाकवि कालिदास ने मेघ को संदेश-वाहक बनाया है, उर्दू कवि समीर को बनाते हैं। विरह (हिज्र) में जो हम कभी दीवाल को, कभी दर्वाज़े को देखते हैं, उसका कारण यह है

कि हम संदेश-वाहकों के वापस लौटने की राह देख रहे हैं; समीर दीवाल पर से आएगा, नामाबर—पत्र-वाहक दर्वाज़े से।

वो आएँ घर में हमारे, ख़ुदा की क़ुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥

हम तो इस योग्य नहीं हैं कि वे आते, ख़ुदा की क़ुदरत—भगवान की ऐसी कृपा हुई कि वे आए। अब हम देखते हैं कि हम तो अयोग्य थे ही, घर भी उनके योग्य नहीं है। कहाँ वे, कहाँ हमारा झोपड़ा!

नज़र लगे न कहीं उसके दस्तो-बाज़ू को।
ये लोग क्यों मेरे ज़ख़्मे-जिगर को देखते हैं॥

उसने मेरे जिगर—कलेजे पर एक ज़ख़्म—घाव कर दिया है। घाव काफ़ी गहरा है। लोग उसे देखते हैं और तारीफ़ करते हैं कि जिसने इतना गहरा घाव किया है, उसका दस्त—हाथ और बाज़ू—कंधा ज़रूर बहुत बलशाली होगा। कहीं ऐसा न हो कि उसके दस्तो-बाज़ू को इन तारीफ़ करने वालों की नज़र लग जाय और उसे नुक़सान पहुँचे। इसलिये बेहतर है कि लोग मेरे घाव को न देखें। यह मिर्ज़ा का नामी शैर है। तारीफ़ दस्तो-बाज़ू की घाव के द्वारा करना नवीनता है।

अंतिम शैर माशूक़ के कुला (पगड़ी) के सम्बन्ध का है।

[५९]

नहीं, के मुझको क़यामत का ऐतक़ाद नहीं।
शबे फ़िराक़ से रोजे-जज़ा ज़ियाद नहीं॥

नहीं—ऐसी बात नहीं है कि मुझे क़यामत—प्रलय पर ऐतक़ाद—विश्वास न हो। मैं तो केवल यह कहना चाहता हूँ कि फ़िराक़—विरह की शब—रात्रि से जज़ा—प्रलय का रोज़—दिन ज़ियाद—अधिक नहीं है। क़यामत का दिन बहुत लम्बा माना गया है, मेरे लिये विरह की रात्रि उससे भी लम्बी है।

कोई कहे के शबे—मह में क्या बुराई है।
बला से आज अगर दिन को अब्रो-बाद नहीं॥

पहले कहा था—

'ग़ालिब' छुटी शराब पर अब भी कभी-कभी।
पीता हूँ रोजे़-अब्र, शबे-माहताब में॥

कभी-कभी बदरारे दिन और उजियारी रात में पी लेता हूँ। अब संशोधन करके बदरारे दिनों को भी धता बाँध रहे हैं। कहते हैं कि बला से आज अगर दिन को अब्रो-बाद—बादल नहीं छाए थे। शबे-मह—चाँदनी रात तो है। कोई बतलाओ तो इस उजियारी में पीने में क्या बुराई है?

जो आऊँ सामने उनके तो 'मरहबा' न कहें।
जो जाऊँ वाँ से कहीं को तो 'ख़ैरबाद' नहीं।

मेरे प्रति इतने उदासीन हैं कि मैं पहुँचता हूँ तो 'मरहबा' 'आइए' या 'स्वागत्' नहीं कहते; जो उठकर जाता हूँ तो 'ख़ै़रबाद' 'कुशल हो, 'आनन्द रहे' नहीं कहते। इतना शिष्टाचार लोग साधारण जान-पहचान वालों से भी निबाहते हैं। मैं उन से भी गया बीता ठहरा।

कभी जो याद भी आता हूँ मैं तो कहते हैं।
के आज बज़्म में कुछ फ़ितनओ-फ़िसाद नहीं॥

कभी जो याद आता हूँ, तो यह नहीं कहते कि आज अमुक नहीं दिखाता। यह कहते हैं कि आज बज़्म—महफ़िल में कुछ फ़ितनओ—फ़िसाद-ऊधम—उत्पात नहीं, दीख पड़ता। गोया, तनिक ईर्ष्यावश लड़-झगड़ क्या लेता हूँ, मैं उनके लेखे ऊधम और उत्पात हो गया।

अलावा ईद के मिलती है और दिन भी शराब।
गदाए—कूचए—मयख़ाना नामुराद नहीं॥

ईद के दिन गदा—फ़कीरों को ख़ै़रात दी जाती है। पर मयख़ाने—कलारी के कूचे—की गली के गदाओं को ईद के दिन के अलावा—अतिरिक्त भी शराब मिलती है। वे नामुराद नहीं रहते—उनकी इच्छा अपूर्ण नहीं

रहती। मिर्ज़ा ने अब तो सारी अँधियारी—उजियारी किनारे रखकर केवल एक ही शर्त रखी है कि किसी तरह कलारी के कूचे तक पहुँच जाओ, फिर सब चित ही चित है।

जहाँ में हो-ग़मो-शादी बहम हमें क्या काम।
दिया है हमको ख़ुदा ने वो दिल के शाद नहीं॥

ग़म—दुख, शादी—सुख (शादी जो शाद रखे, ख़ुश रखे) बहम बारी—बारी क्यों न हो, अर्थात् सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख अवश्यम्भावी क्यों न हो। वे हमारे किसी काम के नहीं। हमें ईश्वर ने वह दिल दिया है जो शाद—ख़ुश होना जानता ही नहीं।

तुम उनके वादे का ज़िक्र उनसे क्यों करो 'ग़ालिब'।
ये क्या के तुम कहो, और वो कहें के याद नहीं॥

तुम कहोगे; वाह साहब! वादा किया और आए नहीं? वे कहेंगे—कौन, कब, किसने वादा किया? हमें बिलकुल याद नहीं कि किया हो। तुम झूठ लगाते हो कि वादा किया था। तो व्यर्थ झूठे बनने से यही अच्छा कि वादे की चर्चा ही उनसे न करो।

[९०]

सब कहाँ? कुछ लाला-ओ-गुल में नुमायाँ हो गईं।
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी जो पिनहा हो गईं॥

क्या सूरतें—क्या-क्या सुन्दर व्यक्ति, मृत्यु के बाद ख़ाक में—मिट्टी में मिलकर, पिनहा—अदृश्य हो गए। उनकी कोई गिनती नहीं उनमें से केवल कुछ ही लाला-ओ-गुल—विभिन्न पुष्पों के रूप में फिर से नुमायाँ—प्रगट हुए हैं। सब कहाँ प्रगट हुए हैं। अधिकतर तो मिट्टी में ही दबे हैं।

× × ×

इन परीज़ादों से लेंगे ख़ुल्द में हम इन्तेक़ाम।
क़ुदरते-हक़ से यही हूरें अगर वाँ हो गईं॥

इन परीज़ादों—सुन्दरियों से (जिन्होंने हमें इस जीवन में बहुत सताया है) हम ख़ुल्द—स्वर्ग में इन्तेक़ाम—बदला लेंगे यदि क़ुदरते हक़—धार्मिक विश्वास के अनुसार ये स्वर्ग पहुँच कर हूरों—अप्सराओं में परिवर्तित हो गईं अर्थात् हमें ईश्वर से इन्हें माँग लेने का अधिकार रहेगा। परन्तु अन्यत्र एक सुन्दरी ने टका-सा जवाब दे रखा है।

मैं जो कहता हूँ के हम लेंगे क़यामत में तुम्हें।
किस रऊनत से वो कहते हैं के हम हूर नहीं॥

नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं।
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ू पर परीशाँ हो गईं॥

टीकाकारों ने इस शैर की बेहद प्रशंसा की है। नीद उसकी है—सोना उसी का सार्थक है, दिमाग़ उसका है—ग़ुरूर या घमंड करना उसी का सार्थक है, रातें उसकी हैं—रातें भी उसीकी सार्थक हैं; जिसकी बाहुओं (बाज़ू) पर, उसकी स्वप्नावस्था में, तेरी ज़ुल्फें-केशराशि, परीशाँ हो गईं—अस्तव्यस्त होकर बिखर गईं। टीकाकार कहते हैं कि ज़ुल्फें-परीशाँ होने से प्रगट यह होता है कि स्वप्न में बहुत अधिक चुम्बन-आलिंगन हुआ है।

मैं चमन में क्या गया गोया दबिस्ताँ खुल गया।
बुलबुलें सुनकर मेरे नाले ग़ज़लख़्वाँ हो गईं॥

मैं बग़ीचे में क्या गया गोया दबिस्ताँ—पाठशाला खुल गई। बुलबुलें अपना राग छोड़कर मेरे नाले-रुदन-राग की ग़ज़लख़्वाँ हो गईं—ग़ज़लें पढ़ने लगीं।

वो निगाहें क्यों हुई जाती हैं यारब! दिल के पार।
जो मेरी कोताहिए-क़िस्मत से मिज़गाँ—हो गईं॥

जो मेरी कोताहिए-क़िस्मत—भाग्य के संकोच अर्थात् मेरे दुर्भाग्य से

अधोन्मीलित रह गईं (शर्म से या अवहेलना से पूरी मिज़गाँ—पलकें नहीं खुलीं) वे निगाहें मेरे दिल के आरपार क्यों हुई जा रही हैं। पूरी चितवन होती तो होती। अधखुली आँखों की प्रशंसा है।

× × ×

वाँ गया भी मैं तो उनकी गालियों का क्या जवाब।
याद थीं जितनी दोआएँ सर्फ़े दरबाँ हो गईं॥

कवि ने यह मान लिया है कि माशूक़ की गाली का जवाब केवल दोआ—आशीर्वाद हो सकता है। कठिनाई यह है कि सारी दोआएँ सर्फ़—ख़र्च कर डाली हैं, उनके दरबान—द्वारपाल पर। तब उसने भीतर घुसने दिया है। नया आशीर्वाद कुछ सूझ ही नहीं रहा है। उनकी गालियों के जवाब में द्वारपाल को दिए हुए बासे आशीर्वाद कैसे दूँगा। चलूँ, लौट चलूँ।

× × ×

रंज से ख़ूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ हो गईं॥

बड़ा मशहूर शेर है और सचमुच बहुत ख़ूब है। रंज—दुख एक दो बार आए तो दुखी करता है। लगातार दुख ही दुख पड़ता रहे तो मनुष्य ख़ूगर—अभ्यस्त हो जाता है, दुख उठाने का। जिस की आदत हो गई, अभ्यास हो गया, उसका कोई असर नहीं। दुख अपने आप मिट जाता है। इसी तरह मुझ पर लगातार इतनी मुश्किलें पड़ीं कि अब वे आसाँ हो गईं—उन्हें मैं हँसते-खेलते झेल लेता हूँ।

यूँ ही गर रोता रहा 'ग़ालिब' तो ऐ अहले जहाँ।
देखना इन बस्तियों को तुम के वीराँ हो गईं॥

ऐ अहले-जहाँ—ऐ संसार के लोगो अगर मैं यों ही लगातार रोता रहा तो देखोगे कि बस्तियाँ, गाँव के गाँव बह कर वीराँ—उजाड़ हो जाएँगे। इसलिये ऐसा उपाय करो कि मेरा रोना बन्द हो।

[६१]

दीवानगी से दोश पे ज़ुन्नार भी नहीं।
यानी हमारी जेब में इक तार भी नहीं।

दीवानगी—उन्माद के कारण, दोश—कन्धे पर, ज़ुन्नार—जनेऊ भी नहीं है। यानी—अर्थात् हमारी जेब में—हमारे कुर्ते के गले से लेकर जेब—दामन तक एक तार—एक धागा भी नहीं बचा, इस बेरहमी से पागलपन में उसे फाड़ा है। एक तार भी बच रहता तो जनेऊ का काम दे जाता। (कल्पना ठीक नहीं। जनेऊ में तीन धागे होते हैं।)

दिल को नियाज़े-हसरते-दीदार कर चुके।
देखा तो हम में ताक़ते-दीदार भी नहीं॥

दिल को हसरते-दीदार—दर्शन—लालसा पर न्यौछावर (नियाज़) कर दिया। बाद में देखा कि रोते-रोते आँखें अन्धी हो गई हैं और उनमें ताक़ते-दीदार—देखने की शक्ति भी बाक़ी नहीं रही। अर्थात् दिल की आहुति व्यर्थ हुई।

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ, तो सहल है।
दुश्वार तो यही है के दुश्वार भी नहीं॥

यह सगुण-निर्गुण दोनों पर लागू है। तेरा मिलना यदि आसाँ न होता अर्थात् कठिन होता या असम्भव होता तो हमें सहल—समस्या सरल हो जाती। हम तेरे मिलने की आशा छोड़ कर रोना-धोना बन्द कर, स्वस्थ होकर बैठ जाते। दुश्वार—कठिनाई यह है कि तेरा मिलना दुश्वार—कठिन या असम्भव नहीं है। पर्याप्त प्रयत्न करने पर तू प्राप्त हो सकता है। इसलिये हमें पूजा-पाठ, रोना-धोना जारी रखना पड़ता है।

बे-इश्क़ उम्र कट नहीं सकती है और याँ।
ताक़त बक़द्रे लज़्ज़ते-आज़ार भी नहीं॥

बिना प्रेम के जीवन कट नहीं सकता और हमारी हालत यह है कि हम

में आज़ार—प्रेम के रोग की बक़द्रे-लज्ज़त—उचित मिठास की परख करने की भी शक्ति नहीं है।

शोरीदगी के हाथ से है सर वबाले-दोश।
सेहरा में ऐ ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं॥

शोरीदगी के हाथ—पागलपन के कारण सिर दोश-कन्धे का बोझ (वबाल) हो रहा है। उन्माद के कारण घर छोड़कर जंगल (सेहरा) में भटक रहे हैं और जंगल में दीवाल कहाँ के सिर पटक कर तमाम हो जायँ। इसलिये वह कन्धे का बोझ हो रहा है।

× × ×

दिल में है यार के सफ़े-मिज़गाँ से रूकशी।
हालाँ के ताक़ते-ख़लिशे-ख़ार भी नहीं॥

जी चाहता है कि माशूक़ को मिज़गाँ—पलकों की सफ़-फ़ौज से रूकश—मुकाबिला करें, हालाँ के—यद्यपि इतनी भी शक्ति नहीं है कि ख़ार—एक काँटे की भी ख़लिश—कसक सह सकें। माशूक़ की पलकें तो अनेक काँटे हैं।

इस सादगी पे कौन न मर जाए ऐ ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

सुन्दरता यही है कि उनकी सादगी ही तलवार का सब काम कर देती है।

देखा 'असद' को ख़िल्वतो-जल्वत में बारहा।
दीवाना गर नहीं है तो हुशियार भी नहीं॥

ग़ालिब को बारहा—कई बार ख़िल्वत—एकांत और जल्वत—भीड़-भाड़ में देखा। आप कहते हैं कि वह दीवाना नहीं है। हम कहते हैं कि अगर वह दीवाना नहीं है तो हुशियार—होश-हवास में भी नहीं रहता। अर्ध-विक्षिप्त-सा है।

[६२]

मजे. जहान के अपनी नज़र में ख़ाक नहीं।
सिवाय खूने-जिगर; सो जिगर में ख़ाक नहीं॥

हमारी दृष्टि में जहान—संसार के मजे.—सुख, ख़ाक नहीं—कोई मूल्य नहीं रखते। सिवाय—केवल अपने जिगर—कलेजे का ख़ून पीने में सुख मिलता था सो वह भी ख़ाक नहीं—समाप्त है।

मगर .गुबार हुए पर हवा उड़ा ले जाय।
वगर्ना ताबो-तवाँ बालो-पर में ख़ाक नहीं॥

मगर—शायद (इस अर्थ में इस शब्द का कई जगह उपयोग किया गया है) ग़ुबार—राख होने पर हवा हमें उड़ा कर बिछुड़े हुए बग़ीचे में फिर ले जाय; अन्यथा हमारे बालो—पर—पंखों में ताबो-तवाँ—(उड़ने की) शक्ति ख़ाक नहीं—बिलकुल नहीं है।

ये किस बहिश्त-शमायल की आमद-आमद है?
के ग़ैर जल्वए-गुल रहगुज़र में ख़ाक नहीं॥

यह कौन बहिश्त—स्वर्गीय, शमायल—प्रतिभा आमद-आमद—आ रही है कि ग़ैर—सिवाय जल्वए-गुल—फूलों के प्रदर्शन के रह गुज़र—सड़क पर ख़ाक नहीं—और कुछ नहीं। फूल ही फूल हैं।

× × ×

ख़याल जल्वए-गुल से ख़राब हैं मयकश।
शराबख़ाने के दीवारो-दर में ख़ाक नहीं॥

जल्वए-गुल—फूलों की शोभा की कल्पना (ख़याल) से मयकश—शराबी, ख़राब—मस्त हो रहे हैं अर्थात् बंसत ऋतु के आगमन से ही उन्हें नशा चढ़ आया है। शराब ख़ाने के दीवारो-दर—दीवाल और द्वार में अब ख़ाक नहीं—उनके लिये कोई आकर्षण नहीं है। अन्यत्र बसंत के सम्बन्ध में लिखा भी है—

है हवा में शराब की तासीर।
बादानोशी है बादा-पैमाई॥

हुआ हूँ इश्क़ की ग़ारतगरी से शर्मिन्दा।
सिवाए हसरते-तामीर, घर में ख़ाक नहीं॥

प्रेम की ग़ारतगारी—लूटमार के कारण शर्मिन्दा हूँ—लज्जित हूँ। मेरे घर में तामीर—मकान बनाने की हसरत—अभिलाषा ही अभिलाषा है और ख़ाक नहीं—कानी कौड़ी भी नहीं है। मिर्ज़ा पचास साल दिल्ली रहे पर कराए के घरों में और तकलीफ़दह घरों में। इस शेर में अपनी लाचारी का ज़िक्र है।

हमारे शैर में अब सिर्फ़ दिल्लगी के 'असद'।
खुला के फ़ायदा अर्ज़े-हुनर में ख़ाक नहीं॥

ऐ असद या ग़ालिब, अब हमारे शैरों में दिल्लगी के सिर्फ़—अतिरिक्त और कुछ नहीं है। खुला-हमें ज्ञात हो गया है कि हुनर–कला की अर्ज़—अभिव्यक्ति में ख़ाक नहीं-कुछ नहीं रखा। न कोई कला समझता है, न उसका आदर करता है। इसलिये हम भी कला के नाम दिल्लगी करने लगे हैं।

[६३]

दिल ही तो है, न संगो-ख़िश्त, दर्द से भर न आये क्यों।
रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमें रुलाए क्यों॥

दिल आख़िर दिल ही है, कोई संग—पत्थर व ख़िश्त—ईंट तो नहीं है। जब पीड़ा पहुँचाई जाएगी, तो वह पीड़ित कैसे नहीं होगा। और जब दिल पीड़ित होगा, तो हम रोएँगे, एक बार नहीं हज़ार बार। कोई अर्थात् माशूक़ चाहता है कि हम न रोएँ, क्योंकि हमारे रोने–धोने से उसकी बदनामी हो सकती है, तो वह हमारे साथ अच्छा व्यवहार करे। माशूक़ हमें रुलाए क्यों!

दैर नहीं, हरम नहीं, दर नहीं, आस्ताँ नहीं।
बैठे हैं रहगुज़र पे हम, ग़ैर हमें उठाए क्यों॥

दैर—मंदिर नहीं है, हरम—काबा भी नहीं है, दर—किसी का द्वार नहीं है; आस्ताँ—किसी की चौखट भी नहीं है। हम तो रह-गुज़र—आम सड़क पर बैठे हैं, जिस पर सबका बराबर का अधिकार है। तब ग़ैर-प्रतिद्वन्दी हमें उठाने की चेष्टा किस बूते पर कर रहा है? हम नहीं उठेंगे, जाव।

जब वो जमाले-दिल फ़रोज़, सूरते-मेहरे-नीम-रोज़।
आप ही हो नज़रा-सोज़, पर्दे में मुँह छिपाए क्यों॥

जब वह दिल फ़रोज़—दिल को रौशन करने वाला जमाल—सौन्दर्य जो नीम—आधे, रोज़—दिन, अर्थात् मध्यान्ह के मेहर—सूर्य की सूरत के समान है; आप स्वयं नज़ारा—दृष्टि को सोज़—जलाने वाला है; तब ऐसा माशूक़ व्यर्थ ही पर्दे में मुँह क्यों छिपाता है। वह मुँह खोल भी दे तो कोई उसे देख नहीं सकेगा। मध्यान्ह के सूर्य को कौन देख सकता है! आँखें अन्धी हो जायँगी।

दश्नए-ग़म्ज़ा जाँसिताँ, नावके-नाज़ बेपनाह।
तेरा ही अक्से-रुख़ सही, सामने तेरे आए क्यों॥

ग़म्ज़ा—हाव—भाव का दश्ना—ख़न्जर, जाँसिताँ—जान ले लेने वाला है (सिताँ का अन्यत्र प्रयोग देखिए, रहज़नी हैं के दिल-सितानी है। लेके दिल दिलसिताँ रवाना हुआ।) नाज़—नखरों के नावक—ज़हरीले तीर बेपनाह—अचूक हैं, गोया 'बिहारी' के सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर' हैं। जब ऐसे-ऐसे अस्त्र-शस्त्र तेरे पास हैं तो दर्पण में तेरे ही अक्से-रुख़—मुख का प्रतिबिम्ब तेरे सामने क्यों आने की हिम्मत करे? कहीं उस पर ही कोई वार न चल जाए। तू भी सँभले रहना; कहीं तुझी पर तेरा प्रतिबिम्ब चोट न कर बैठे, जैसे अन्यत्र कहा है—

आईना देख अपना-सा मुँह लेके रह गए।
साहब को दिल न देने पे कितना ग़ुरूर था॥

कै.दे-हयात, बन्दे-ग़म, अस्ल में दोनों एक हैं।
मौत से पहले आदमी ग़म से नजात पाए क्यों॥

जो हयात—जीवन की कै.द—परिधि है वही ग़म—पीड़ा की भी बन्द—परिधि है। दोनों में कोई भेद नहीं। अर्थात् जब-तक जीना तब-तक सीना है। मृत्यु आ जाएगी तो जीवन से ही नजात—छुटकारा मिल जायगा, तब ग़म से भी अपने—आप छुटकारा मिला समझिए। उसके पहले नहीं।

हुस्न और उसपे हुस्ने-ज़न रह गई बुलहवस की शर्म।
अपने पे ऐतमाद है .ग़ैर को आज़माए क्यों॥

एक तो माशूक़ को अपने हुस्न—सौंदर्य पर पूरा पूरा ऐतमाद-विश्वास है कि उसका मारा कभी पानी नहीं माँगता। दूसरे उसे प्रतिद्वंदी के प्रति यह हुस्न—सुन्दर ज़न-धारणा हो गई है कि वह सच्चा प्रेमी है। इन दो कारणों से उसने ग़ैर—प्रतिद्वंदी की आज़माइश—परीक्षा लेनी आवश्यक नहीं समझी; इस प्रकार प्रतिद्वंदी, जो कि बुलहवस—कामुक-मात्र है, सच्चा प्रेमी नहीं, की लाज बच गई। परीक्षा ली जाती तो वह मैदान से भाग खड़ा होता अर्थात् उसे लज्जित होना पड़ता।

वाँ वो गु.रूर-इज्ज़ो-नाज, याँ ये हिजाब पासे-वज़.अ।
राह में हम मिलें कहाँ, बज़्म में वो बुलाए क्यों॥

माशूक़ अपने इज्ज़ो-नाज़-व्यक्तित्व और सौंदर्य के ग़ुरूर—अभिमान के कारण हमको अपने बज़्म—दरबार में आमंत्रित नहीं करता। हम पासे-वज़अ— संस्कृति तथा शिष्टाचार का इतना हिजाब—आदर करते हैं कि आम सड़क पर माशूक़ को रोककर बातचीत करना अनुचित समझते हैं। इसलिये दोनों जगह हमारी उसकी भेंट नहीं हो सकती। न वो घर बुलाएगा, न हम सड़क पर बातचीत करेंगे, यदि भेंट हो भी जाय।

हाँ, वो नहीं .खुदा-परस्त, जाओ वो बेवफ़ा सही।
जिसको हो दीनो-दिल अज़ीज़, उसकी गली में जाए क्यों॥

मित्र समझाते हैं कि उसका प्रेम छोड़ दो, क्यों कि एक तो वह ख़ुदा-परस्त—ईश्वर-भक्त नहीं है (ख़ुद-परस्त है), इसलिये उसकी प्रीति में तुम्हें दीन—धर्म खोना पड़ेगा, दूसरे वह बेवफ़ा—झूठा है और ऐसे से प्रेम करके दिल से हाथ धोना पड़ेगा। उत्तर देते हैं कि जिसको दीन और दिल अज़ीज़—प्यारे हैं वह उसकी गली में जाता ही क्यों है। हमको वह प्यारा है। ये दोनों प्यारे नहीं हैं। हम तो जायेंगे।

'ग़ालिब' ख़स्ता के बग़ैर, कौन से काम बन्द हैं ?
रोइए ज़ार-ज़ार क्या ? कीजिए हाय-हाय क्यों ?

'ग़ालिब' गोलोकवासी हो गए हैं। लोग उनके शव के पास रो—पीट रहे हैं। उनका एक मित्र जानता है कि यह रोना—धोना दिखाऊ है। इन्हीं लोगों ने मिर्ज़ा से बुरा-से-बुरा व्यवहार करना अपना धर्म मान लिया था। वह व्यंग करता है कि क्यों रो-पीट रहे हो ? उस ख़स्ता—क्षीणकाय 'ग़ालिब' के न रहने से तुम्हारे कौन से काम बन्द हो गए हैं या हो जाएँगे !

[६४]

ग़ुंचए-नाशुगुफ़्ता को दूर से मत दिखा के यूँ।
बोसे को पूछता हूँ मैं, मुँह से मुझे बता के यूँ ॥

पूछा कि चुंबन कैसे लिया जाता है तो उसने नाशुगुफ़्ता—अधखिले, ग़ुंचे—फूल के समान मुँह को दूर से बना कर दिखाया कि ऐसे। तब कहता है कि ऐसे नहीं। मैं पूछता हूँ, इसलिये अपने मुँह से मेरा चुम्बन लेकर बतला।

पुरसिशे-तर्ज़-दिलबरी कीजिए क्या के बिन कहे।
उसके हरेक इशारे से निकले है यह अदा के यूँ ॥

दिलबरी—दिल लुभा लेने के तरीके (तर्ज़) के बारे में क्या पुरसिश कीजिए—क्या पूछताछ कीजिए कि कैसे लुभा लेते हो। बिना उसके कहे ही

उसके प्रत्येक इशारे-हावभाव से प्रगट है (निकले है) कि इस अदा-तरीक़े से लुभाते हैं।

रात के वक़्त मय पिए, साथ रक़ीब को लिए।
आए वो याँ ख़ुदा करे-पर न ख़ुदा करे के यूँ॥

ईश्वर करे वह यहाँ—मेरे घर आए, पर ईश्वर यह न करे कि वह रात के वक़्त और शराब पिए और प्रतिद्वंदी को साथ लिए आए। यह तो मरने-मारने का प्रसंग हो जायगा।

ग़ैर से रात क्या बनी-यह जो कहा तो देखिये।
सामने आन बैठना-और ये देखना-के यूँ॥

मैंने पूछा कि प्रतिद्वंदी के साथ रात कैसे कटी, तो सामने आकर बैठ गए और देखने लगे के अब यह यूँ भी बात करने लगा है या पूछताछ करने लगा है। अपने भाग्य को नहीं सराहता कि हम इसके पास आ गए वरन् यह पूछने का हौसला करने लगा है कि ग़ैर के साथ रात कैसी कटी।

बज़्म में उसके रूबरू क्यों न ख़मोश बैठिए।
उस की तो ख़ामुशी में भी है यही मुद्दआ के यूँ॥

उसकी सभा में उसके सामने (रूबरू) चुपचाप बैठना चाहिए। वह स्वयं चुपचाप बैठकर यही मुद्दआ—उद्देश प्रगट कर रहा है कि तुम भी यों ही बैठो।

मैंने कहा के बज़्मे-नाज़ चाहिए ग़ैर से तिही।
सुन के सितम ज़रीफ़ ने मुझको उठा दिया के यूँ॥

मैंने कहा कि यह नाज़—सौंदर्य की बज़्म-सभा ग़ैर-प्रतिद्वंदी या परायों से तिही—खाली होनी चाहिए। यह सुन उसने यह सितम—दुष्टता की, जिसमें ज़राफ़त—उसके लिये हँसोड़पन भी है, कि मुझी को उठा दिया अर्थात् मैं ही ग़ैर रहा।

× × ×

कब मुझे कूये-यार में रहने की बज़अ् याद थी।
आईनादार बन गई हैरते-नक़्शे-पा के यूँ ॥

मुझे यार की गली में रहने का तरीक़ा (वज़अ) नहीं मालूम था। यार के नक़्शे-पा—चरण-चिन्ह ने (जो यार के पूर्व स्पर्श के कारण हैरतमन्द—भौंचक्का, भूला-भूला सा रहता है) आईना दिखाने का काम किया। अर्थात् वहाँ ठीक तरह से रहने का प्रतिबिंब दिखा दिया कि मिट्टी में मिलकर मेरी तरह अपने आप को भूले-भूले रहो।

× × ×

जो ये कहे के रेख़्ता क्यों न हो रश्के-फ़ारसी।
गुफ़तये-'ग़ालिब' एक बार पढ़ के उसे सुना के यूँ ॥

जो ये कहता है कि रेख़्ता—उर्दू ग़ज़ल फ़ारसी द्वारा रश्क़—ईर्ष्या के योग्य है या नहीं उसको एक बार 'ग़ालिब' का गुफ़्ता—कलाम पढ़कर सुनाओ। मान जायगा कि उर्दू ग़ज़ल फ़ारसी से टक्कर ले सकती है।

[६५]

× × ×

खुशी क्या खेत पर मेरे अगर सौ बार अब्र आवे।
समझता हूँ के ढूँढ़े है अभी से बर्क़ ख़िरमन को ॥

मेरे खेत पर सौ बार भी बादल (अब्र) छाएँ तो भी मुझे ख़ुशी नहीं क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे बरसने नहीं आए वरन् अभी से बादलों में जो बर्क़—बिजली छिपी है वह मेरे ख़िरमन—खलियान को ढूँढ रही है कि उसका पता मिले और मैं गिरूँ।

× × ×

शहादत थी मेरी क़िस्मत में जो दी थी ये ख़ू मुझको।
जहाँ तलवार का देखा झुका देता था गरदन का ॥

मुझे जो यह ख़ू—आदत थी कि जहाँ-कहीं तलवार को देखना तो झट गरदन झुका देना, वह इसलिये के मेरे भाग्य में ही शहीद होना लिखा था।

न लुटता दिन को तो कब रात को यूँ बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का; दोआ देता हूँ रहज़न को॥

दिन-दहाड़े लुट जाने में यह लाभ हुआ कि रात खूब जम के सोता हूँ। चोरी का डर नहीं। जिओ भाई रहज़न—बटमार! चोर।

× × ×

[६६]

धोता हूँ जब मैं पीने को उस सीमतन के पाँव।
रखता है ज़िद से खींच के बाहर लगन के पाँव॥

उस सीमतन—चाँदी के वर्ण की अर्थात् उस रजत-रूपसि के पाँव जब मैं धोने लगता हूँ तो वह ज़िद से-बरबस, पानी के लगन—जल-स्पर्श से पाँव खींच लेती है। मुझे इस योग्य नहीं समझती कि उसका चरणामृत प्राप्त कर सकूँ।

× × ×

मरहम की जुस्तजू में फिरा हूँ जो दूर-दूर
तन से सिवा फ़िगार हैं, इस ख़स्तातन के पाँव॥

मेरे शरीर में घाव लग गए थे। उन्हें अच्छा करने के लिए मलहम की जुस्तजू—तलाश में मैं दूर-दूर भटका किया। परिणाम यह हुआ कि भटकने के कारण इस ख़स्तातन-जीर्णकाय के पाँव, शरीर से सिवा—अधिक, फ़िगार-ज़ख़्मी हो गये।

× × ×

शब को किसी के ख्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुक-बदन के पाँव॥

जान पड़ता है शब—रात को वह किसी प्रतिद्वंदी को ख़्वाब-स्वप्न में दर्शन देने गई थी। इसलिये आज उस बुते-नाज़ुक-बदन—कोमलांगी के पाँव दुख रहे हैं।

× × ×

[६७]

तुम जानो, तुम को ग़ैर से जो रस्मो-राह हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

जान पड़ता है कि लाख समझाने पर भी वे ग़ैर-प्रतिद्वंदी से रस्मो-राह-मिलना-जुलना छोड़ने को तैयार नहीं हुए। कदाचित सच्चे प्रेमी को ही छोड़ने पर उतारू हो गये। तब घुटने टेक कर वह कहता है ग़ैर से तुम्हारे जो सम्बन्ध हैं, वह तुम जानो। मुझे उससे कोई मतलब नहीं। पर साथ ही साथ मुझको भी पूछते रहो—मेरी भी खोज-ख़बर लेते रहो तो कौन गुनाह—पाप हो जायगा।

प्रतिद्वंदी का भी बड़ा महत्व है। यदि वह 'ग़ैर' न हो तो इश्क़ का लुत्फ़ ही न आए। जैसा अज्ञात कवि ने कहा है :—

'सामने उसके न कहते, मगर अब कहते हैं।
इश्क़ का लुत्फ़ गया, ग़ैर के मर जाने से॥'

बचते नहीं मोआख़िज़िए-रोज़े हश्र से
क़ातिल अगर रक़ीब है, तो तुम गवाह हो॥

यह सच है कि मुझे प्रतिद्वंदी ने क़त्ल किया है; शायद तुम्हारे इशारे पर। तो रोज़े—हश्र—प्रलय के दिन जो मोआख़िज़—पूछताछ, जाँच-पड़ताल अपराधों की होगी उससे तुम बच नहीं सकते। वधिक के रूप में न सही, वध के गवाह तो तुम हो। उस रूप में ही पेश किए जाओगे।

क्या वो भी बेगुनह-कुशो-हक़-नाशिनास हैं।
माना के तुम बशर नहीं, ख़ुर्शीदो-माह हो ॥

हमने मान लिया तुम बशर-मनुष्य नही। ख़ुर्शीद-सूर्य और माह-चंद्र हो। पर क्या सूर्य-चन्द्र भी तुम्हारे समान बेगुनाह—बेक़ुसूर को कुश-मारने वाले और हक़-अधिकार (प्रेमी के) को ना-न, शिनास—पहिचानने वाले, अर्थात् उचित मान्यता न देने वालों में से हैं ?

× × ×

जब मैक़दा छुटा तो फिर अब क्या जगह की क़ैद।
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई ख़ानक़ाह हो ॥

मैक़दा—शराबख़ाना छूट गया। क्यों छूट गया ? संभव है उधारी बढ़ गई हो क्योंकि अन्यत्र कहा है—

क़र्ज़ की पीते थे मय और ये समझते के, हाँ।
रङ्ग लाएगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ॥

संभव है, जैसा अन्यत्र कहा है, साक़ी से पेशदस्ती कर दी हो और उसने मारपीट बाहर कर दिया हो और हमेशा-हमेश के लिए इनके लिए द्वार बंद कर दिया हो :

'धौल-धप्पा उस सरापा-नाज़ का शेवा नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन ॥'

बहरहाल मैक़दा तो छुटा और वह चार मित्रों के बीच हँसी-मज़ाक़ करना और साक़ी से छेड़-छाड़ तो हवा हो गई। और पीना ज़रूर है—'छुटती नहीं है काफ़िर ये मुँह की लगी हुई।' फिर जगह की क्या क़ैद, क्या पाबन्दी ? उचित अनुचित स्थान सब एक से हैं, मस्जिद मस्जिद, पाठशाला, ख़ानक़ाह—फ़क़ीरों का डेरा, जहाँ नहीं पीना चाहिए अब वहाँ भी बैठ के पी लेते हैं।

सुनते हैं जो बहिश्त की तारीफ़, सब दुरुस्त।
लेकिन ख़ुदा करे वो तेरी जल्वागाह हो ॥

बहिश्त-बैकुंठ की जो प्रशंसा सुनते हैं सब दुरुस्त—ठीक है पर ईश्वर करे वह तेरा भी जल्वागाह—प्रदर्शन-स्थल हो, अन्यथा बैकुंठ हमारे किस काम का। जैसे गोपियाँ कहती थीं—

ऊधव! का करिबै बैकुण्ठै जाई।
ना बंसीबट, ना जमुना तट, न उँहाँ कृष्ण कन्हाई॥

अंतिम शैर बादशाह की तारीफ़ में है।

[६८]

गई वो बात—के हो गुफ़्तगू तो क्यों कर हो।
कहे से कुछ न हुआ, फिर कहो तो क्यों कर हो?

पहले यह चिन्ता थी कि क्या हिकमत लगाएँ कि उनसे गुफ़्तगू—बातचीत करने का अवसर मिले। वह अवसर प्राप्त हो गया; हमें जो कुछ कहना था कह दिया और उसका प्रभाव कुछ ख़ाक—पत्थर न हुआ। अब बतलाओ कि क्या करें?

हमारे ज़हन में इस फ़िक्र का है नाम विसाल।
के गर न हो तो कहाँ जायँ, हो तो क्यों कर हो?

विसाल—मिलन, हमारे ज़हन में—हमारे मस्तिष्क में अर्थात् हमारी जान में केवल इस फ़िक्र—चिन्ता का नाम है कि अगर न हुआ तो कहाँ जायँ और हो तो किस हिकमत से हो।

× × ×

तुम्हीं कहो के गुज़ारा सनम-परस्तों का।
बुतों की हो अगर ऐसी ही ख़ू तो क्योंकर हो?

सनम-परस्त—मूर्तिपूजक या प्रियतम-पूजक, बुत-मूर्ति या प्रियतम! हमारी बात छोड़ो। हम तुम्हारी ख़ू—आदत जान गए हैं। वह आशिक़ को सताना है। हम सब कुछ सहकर अंत तक निबाह देंगे। परंतु सभी बुतों—

माशूकों की आदत तुम्हारी जैसी अगर हो गई तो तुम्हीं बताओ कि अन्य प्रियतमों को पूजने वाले प्रियतम-पूजकों का गुज़ारा—निर्वाह कैसे होगा ? दुनिया से प्रेम का रोग उठ जायगा।

उलझते हो तुम अगर देखते हो आईना।
जो तुमसे शहर में हों एक-दो, तो क्यों कर हो ?

अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसी से उलझ पड़ते हो कि तू सुन्दर कि मैं। अगर शहर में दो-एक तुम्हारे टक्कर के हों तो क्या बात हो! एक-दूसरे से उलझने के कारण एक कोहराम मच जाय।

जिसे नसीब हो रोज़े-सियाह मेरा-सा।
वो शख़्श दिन न कहे रात को, तो क्यों कर हो ?

जिसके भाग्य में (विरह के कारण) मेरे से रोजे-सियाह—अँधेरे दिन लिखे हों, वह रात को भी दिन न कहे तो उसका काम कैसे चले ? उसे तो दोनों बराबर हैं।

हमें फिर उनसे उमीद और उन्हें हमारी क़द्र।
हमारी बात ही पूछें न वो; तो क्यों कर हो ?

आपस का व्यवहार—हमको तुमसे आशा, तुमको हमारी क़द्र-इज्ज़त—तो तब चले जब हमारी बात पूछो—हमारा हाल दरयाफ़्त करो। जब यही नहीं तो आशा—निराशा क्या ?

ग़लत न था हमें ख़त पर गुमान तस्कीं का।
न माने दीदओ-दीदार जो तो क्यों कर हो ?

पत्र मिला। हमें तस्कीं—तसल्ली का गुमान—अनुभव हुआ। यहाँ तक कोई ग़लती नहीं है। पर ये निगोड़ी आँखें (दीद) बिना दीदार (दर्शन) के व्याकुल हैं (नहीं मानतीं), अब बताओ ख़त अकेले को लेकर क्या करें ?

× × ×

अंतिम शैर में बादशाह का एक मिसरा उद्धृत है।

[६६]

किसी-को दे के दिल कोई नवासंजे-फ़ुग़ाँ क्यों हो ?
न हो जब दिल ही सीने में, तो फिर मुँह में ज़बाँ क्यों हो ?

जब दिल ही दे दिया तो कोई नवासंजे—फ़ुग़ाँ-आह का राग क्यों अलापे ! अच्छा यह होता कि जैसे सीने से दिल गया था, वैसे मुँह से ज़बान भी चली जाती तो रोने-चिल्लाने का अन्त हो जाता।

वो अपनी ख़ू न छोड़ेंगे हम अपनी वज़अ़ क्यों बदलें।
सुबुकसर बन के क्या पूछें के हम से सरगराँ क्यों हो ?

जब वे अपनी ख़ू—आदत (प्रेमी की खोज—ख़बर न लेने की) नहीं छोड़ेंगे तो हमीं अपनी वज़अ़—रीति क्यों बदलें। सुबुकसर—आत्माभिमान को मिटाकर क्या पूछें कि हमसे सरगराँ—गुस्सा क्यों हो।

किया ग़मख़्वार ने रुसवा, लगे आग इस मोहब्बत को।
न लाए ताब जो ग़म की वो मेरा राज़दाँ क्यों हो ?

ग़मख़्वार—मेरे दुख को मिटाने वाले मित्र ने ही मुझे रुसवा-बदनाम कर दिया। मेरी इस मोहब्बत को आग लगे जिसकी आग मेरे दोस्त को भी लग गई कि वह तमाम में चिल्लाता फिरा कि फ़लाँ-फ़लाँ पर आशिक़ है और मृतप्राय है, आदि; इस तरह उसने दोनों को भंडा फोड़ दिया। उसे जब ग़म की ताब नहीं थी—पीड़ा सहने की शक्ति नहीं थीं, तो मेरा राज़दाँ—अंतरंग होने को क्यों आ मरा, यही समझ में नहीं आता।

वफ़ा कैसी, कहाँ का इश्क़ जब सर फोड़ना ठहरा।
तो फिर ऐ संगे-दिल ! तेरा ही संगे-आस्ताँ क्यों हो ?

कहाँ की सचाई, कहाँ का प्रेम। जब तुम्हारी प्रेम की परिभाषा कुल इतनी ही है कि प्रेमी सिर फोड कर मर जाय तो हे संगे-दिल—पाषाण-हृदय ! तुम्हारी ही आस्ताँ—ड्यौढ़ी के संग—पत्थर पर क्यों सिर फोड़े। इतनी बड़ी दुनिया में इतने बहुत से पत्थर पड़े हैं। सिर ही तो फोड़ना है।

क़फ़स में मुझसे रूदादे-चमन कहते न डर हमदम।
गिरी है जिस पे कल बिजली, वो मेरा आशियाँ क्यों हो ?

आप पहले क़फ़स—पिंजड़े में फँस चुके हैं। रात बिजली तड़पी, तड़प कर गिरी। पिंजड़े की तीलियों से ऐसा कुछ दिखा कि आप ही के आशियाँ—घोंसले के आसपास गिरी है। कलेजा धक से हो गया। दूसरे दिन आँधी-तूफ़ान के मारे हुए एक हमदम—बिरादरी वाले फँस कर उसी पिंजड़े में दाख़िल हुए। ये फुदककर पहुँचे कि भाई कुछ घर (बग़ीचे—घोंसले) के हाल-चाल कहो। वह सोच—समझकर गुमसुम रह जाता है कि हज़रत यों ही अरसे से पिंजड़े में रो—बिसूर रहे हैं, अब घोंसले की सुनेंगे तो क्या हालत होगी। ख़ामोशी खटक जाती है और तह तक पहुँचने के लिये व्याकुल होकर कहते हैं कि रूदाद—हाल-चाल कहते डरो मत। यह आवश्यक नहीं है कि जिस पर कल बिजली गिरी थी वह मेरा ही घोंसला हो, दूसरे का भी हो सकता है। अतुलनीय करुण-रस है। बहुत नामी शैर है।

ये कह सकते हो, 'हम दिल में नहीं हैं' पर ये बतलाओ।
के जब दिल में नहीं हो तुम, तो आँखों से निहाँ क्यों हो ?

आँखों से निहाँ—छिपे हुए, अदृश्य हो। इससे साफ़ प्रगट है कि दिल में जा छिपे हो। तुम्हारे कहने से क्या होता है ?

ग़लत है जज़्बे-दिल का शिकवा, देखो जुर्म किसका है ?
न खींचो गर तुम अपने को; कशाकश दरमियाँ क्यों हो ?

तुम्हारी शिकायत (शिकवा) यह है कि मेरा जज़्बे—दिल—मेरे हृदय के भाव या हृदय की पुकार तुम्हें कष्ट देती है अर्थात् तुम्हें स्थिर नहीं रहने देती, तुम्हें मेरी ओर खींचती है। पर इसमें जुर्म—अपराध किसका है। पुकार मेरी ओर खींचती है, तुम अपने को अपनी ओर खींचते हो। नतीजा कशा-कश—रस्साकशी। तुम खिंचे चले आओ तो यह रस्साकशी न हो।

ये फ़ितना आदमी की ख़ाना वीरानी को क्या कम है ?
हुए तुम दोस्त जिसके, दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो ?

यह फ़ितना—दुर्घटना आदमी के खानावीरानी-घर-द्वार को नाश करने के लिये क्या कम है कि तुम उसके दोस्त—माशूक़ हो। आस्माँ जो हमेशा विपत्ति ढाता है, वह उस आदमी का व्यर्थ ही दुश्मन है। आस्माँ की ज़्यादती है। उसे बर्बाद कर देने के लिये तुम दोस्त ही काफ़ी हो।

यही है आज़माना तो सताना किसको कहते हैं।
उदू के हो लिए जब तुम, तो मेरा इम्तेहाँ क्यों हो?

जब उदू—प्रतिद्वन्दी के हो गए तो मेरी परीक्षा क्यों। जब मेरे होना ही नहीं है, क्योंकि उदू के हो गए, तब मेरी परीक्षा लेना केवल मुझे सताना है; परीक्षा लेना नहीं है।

कहा तुमने के क्यों हो ग़ैर के मिलने में रुसवाई।
बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहिये-के हाँ, क्यों हो?

इतनी प्रत्यक्ष बात है, दुनिया का नियम है कि प्रतिद्वंदी से यदि माशूक़ मिले तो रुसवाई—बदनामी होती है। एक तुम्हीं हो जो कहते हो कि क्यों होनी-चाहिए। ठीक है, सच है, ज़रा फिर से तो कहिये एक बार। व्यंग है।

निकाला चाहता है काम क्या तानों से ऐ 'ग़ालिब'।
तेरे बेमेह्र कहने-से वो तुझ पर मेह्रबाँ क्यों हो?

'ग़ालिब' तुम तानों—व्यंग से काम निकालना चाहते हो—उसके कृपापात्र बनना चाहते हो। तुमने यदि उसे बेमेहर—अकृपालु कह कर ताना दिया तो वह तुम पर क्यों कृपालु हो जाय? ताना नहीं, और कोई उपाय करो।

(७०)

कुल तीन शैर कहे हैं, जो बड़े मार्के के हैं :—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम-सुख़न कोई न हो और हम-ज़बाँ कोई न हो॥

'जहाँ कोई न हो' में यह व्यक्त नहीं किया गया है, जैसा कि कबीरदास ने कहा था—'सुन्न महल में दिया बरत है, बाजै अनहद बोल रे' परन्तु यह ज़रूर चाहा गया है कि ऐसी जगह जाकर रहें जहाँ कम से कम हम-सुख़न अर्थात् हमारी तरह बात करने वाला (कविता करने वाला जैसा कि आगे कभी कहा है 'हम- सुख़न-फ़हम हैं, ग़ालिब के तरफ़दार नहीं' अर्थात् हम बात समझने वाले अर्थात् कविता समझने वाले हैं—कोई ग़ालिब के पक्षपाती नहीं हैं) और हमारी भाषा में बोलने वाला (हम ज़बाँ) कोई न हो। कारण, महाकवि की बात (कविता) समझने वालों (या न समझने वालों) ने और उनकी भाषा बोलने वालों ने उन्हें बड़े-बड़े दुख दिए थे।

बे-दरो-दीवार का इक घर बनाना चाहिए।
कोई हम-साया न हो और पासबाँ कोई न हो॥

कहते हैं ऐसा घर बनाना चाहिए जिसमें न दर—दर्वाज़ा हो न दीवार—दीवाल हो, न कोई हमसाया—पड़ोसी हो न कोई पासबाँ रक्षक या चौकीदार हो। बहुत ख़ूब! ईसुरी कवि कहते हैं कि हमारा घर भी कुछ इसी तरह का है—

बखरी रैयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
काची भीत उठी माटी की, बिना फूस-चारे की॥
बे बंधेज परी है बारी, जामैं दस द्वारे की।
किवार किंवरियाँ इक्कउ नइयाँ, बिना कुची-तारे की॥
'ईसुरी' हमैं निकारो जिदिना, हमैं कौन हारे की॥

पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइये तो नौहाख़्वाँ कोई न हो॥

बीमार पड़ें तो कोई तीमारदार—सेवा करने वाला न हो और मर जायें तो कोई नौहाख़्वाँ—शोक गीत गाने वाला या रोने वाला न हो। महाकवि बड़े दुखी थे अपने लोगों से, तभी ऐसी इच्छाएँ प्रगट कीं, पर अपने लोगों द्वारा सताए न जाते तो महाकवि कैसे होते!

(७१)

मस्जिद के ज़ेरे-साया ख़राबात चाहिए।
भौं पास आँख क़िब्लए-हाजात! चाहिए॥

हे क़िब्लए-हाजात—शेख जी या उपदेशक जी! भगवान ने भौं के नीचे आँखें बनाई हैं। भवें हैं मेहराब या कमानियाँ जो मस्जिद में होती हैं और आँखें हैं मदभरी, इसलिये सुरालय के अनुरूप हैं। जब प्रकृति की ही ऐसी रचना है तो मस्जिद के ज़ेरे-साया—नीचे भी ख़राबात—शराबख़ाना होना आवश्यक है।

आशिक़ हुए हैं आप भी एक और शख़्स पर।
आख़िर सितम की कुछ तो मकाफ़ात चाहिए।

अब ऊँट पहाड़ तले आया है। अपने आशिक़ों को बहुत सताया, अब आप भी किसी पर मर मिटे हैं। आप को भी अब आटा-दाल का भाव मालूम होगा। जो सितम—अत्याचार आपने किए हैं आखिर उनका कुछ तो मकाफ़ात—बदला आपको मिलना ही चाहिए।

× × ×

सीखे हैं मह-रुख़ों के लिये हम मुसव्वरी।
तरक़ीब कुछ तो बहरे-मुलाक़ात चाहिए॥

हम मुसव्वरी—चित्रकला सीख रहे हैं। महरुख़ों—चन्द्रमुखियों से बहरे-मुलाक़ात—भेंट करने के लिये कुछ तो तरकीब—हिकमत करना ही चाहिए। चित्र खींचने के बहाने उन लोगों के घर जाया करेंगे।

मय से ग़रज़ निशात है किस रू-सियाह को।
एक गूना बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए॥

किस रू-सियाह—काले मुख वाले को मय—शराब से यह गरज़—स्वार्थ है कि उसे निशात—सुख या चैन मिले? मुझे तो एक गूना, एक प्रकार की बेख़ुदी—आत्म-विस्मृति दिन-रात चाहिए है।

× × ×

[७२]

कुल दो ही शैर कहे हैं :—

ता हम को शिकायत की भी कोई न रहे जा।
सुन लेते हैं गो ज़िक्र हमारा नहीं करते॥

यह नहीं कहते कि उसकी चर्चा ही मत करो। ऐसा कहते तो हमें शिकायत की जा-गुंजाइश रहती कि आप तो हमारा हाल ही नहीं सुनते। सुनते तो हैं पर सुन कर कोई ज़िक्र—टीका-टिप्पणी नहीं करते। गुम-सुम बैठे रहते हैं।

'ग़ालिब' तेरा अहवाल सुना देंगे हम उनको।
वो सुन के बुलाएँ—ये इज़ारा नहीं करते॥

मित्र, 'ग़ालिब' का बुरा हाल देख कर, द्रवित हो जाता है और कहता है कि किसी न किसी बहाने हम तुम्हारी दशा (अहवाल) उन पर प्रकट तो कर देंगे, पर यह इज़ारा-ज़िम्मा हम भी नहीं ले सकते कि सुनकर वे तुमको बुलाएँगे। यदि तुम्हारा हाल बेहद खराब है तो उनका घमंड भी कुछ कम नहीं।

[७३]

कुल एक ही शैर कहा है :—

घर में था क्या ? के तेरा ग़म उसे ग़ारत करता।
वो जो रखते थे हम इक हसरत-तअ़मीर सो है॥

अन्यत्र कहा जा चुका है कि मिर्ज़ा ५० साल दिल्ली में रहे पर अपना घर-द्वार कभी नहीं बना पाए। किराए के घर भी अच्छे नहीं मिले। एक घर की तारीफ़ में लिखा है—'मेह एक घंटे बरसता है, तो घर दो घंटे, अर्थात् टपकता रहता है।

यही कहते हैं: तेरा ग़म—इश्क़ उसे गारत—बर्बाद करता ऐसा मेरा घर था ही कहाँ ? एक हसरते-तअ़मीर घर बनाने की साध ही साध थी, सो है— वह अब भी है। टीकाकार का भी यही हाल है।

[७४]

यह ग़ज़ल प्रियतमा की मृत्यु पर शोक-गीत के रूप में कही गई है। मिर्ज़ा ने अपने एक पत्र में भी किसी प्रियतमा की मृत्यु की चर्चा की है। जान पड़ता है कि मिर्ज़ा की फ़िल्म में जो 'रोमान्स' दिखलाया गया है, उस का आधार यह ग़ज़ल और वह पत्र ही है।

मिर्ज़ा का गार्हस्थ्य जीवन सीधा-सादा था। विवाह के समय इनकी आयु तेरह वर्ष और इनकी धर्मपत्नी की आयु कुल नौ वर्ष की थी। मिर्ज़ा ने एक पत्र में उनकी दीर्घायु की शिकायत की है, परन्तु वह एक ऐसा हास्य है जो हर कोई अपनी पत्नी के मत्थे कर लेता है। मिर्ज़ा ने घर में देख-रेख, भोजन-पान, सेवा-सुश्रूषा की शिकायत कभी नहीं की।

यह दुख अवश्य था कि सन्तानें हुईं तो कई परन्तु जीवित नहीं रहीं। अपनी पत्नी के आत्मीय, श्री ज़ैनुलाब्दीन 'आरिफ़' को पुत्रवत् मानते थे। वे भी भरी जवानी में नहीं रहे। उन पर लिखा अत्यन्त करुण शोक-गीत अन्यत्र देखिए : 'लाज़िम था के देखो मेरा रस्ता कोई दिन और। तनहा गए क्यों, अब रहो तनहा कोई दिन और ॥' मिर्ज़ा की चोट और गहरी इसलिये थी कि 'आरिफ़' स्वयं बड़े होनहार कवि थे।

दर्द से मेरे है तुझ को बेक़रारी, हाय-हाय।
क्या हुई ज़ालिम तेरी ग़फ़लत-शआरी हाय-हाय ॥

प्रेमिका मृत्यु-रोग से पीड़ित है। यह देख प्रेमी को दर्द होता है। प्रेमी का यह दर्द देख, प्रेमिका बेक़रार—बेचैन हो जाती है। तब प्रेमी कहता है—हे ज़ालिम—क्रूर तू तो ग़फ़लत—शआर—प्रेमी की पीड़ा के प्रति उदासीनता दिखलाने में बहुत पटु थी। वह पटुता क्या हो गई ? तू उसी तरह मेरी पीड़ा के प्रति उदासीन बनी रह। भाव यह है कि मेरी पीड़ा की चिन्ता न कर; अपनी पीड़ा की चिन्ता कर और जल्दी स्वस्थ हो जा। जानते हुए कि प्रेमिका स्वस्थ नहीं होगी, यह आशा की डोर बड़ी शिथिल है।

तेरे दिल मे गर न था आशोबे-दिल का हौसला।
तूने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी, हाय-हाय॥

यदि तेरे दिल में दिल के आशोब—दुःख उठाने का हौसला—साहस नहीं था, तो तूने मेरी ग़मगुसारी—विपत्ति से सहानुभूति क्यों दिखलाई और क्यों अपने दिल की यह दशा कर ली? मुझे विपत्ति में पड़ा रहने देती।

क्यों मेरी ग़मख़्वारगी का तुझ को आया था ख़याल।
दुश्मनी इतनी थी मेरी दोस्तदारी, हाय-हाय॥

मेरी ग़मख़्वारगी—मुझ से सहानुभूति करने का तुझे ख़याल—विचार ही क्यों आया? सहानुभूति करके तू ने मुझ से दोस्तदारी—मित्रता प्रदर्शित की। यह मित्रता ही तेरी शत्रु (दुश्मन) हो गई। मित्रता के प्रदर्शन से मेरे प्रति तेरा प्रेम सब लोगों पर प्रगट हो गया। सब लोगों पर प्रेम प्रगट हो जाने से तू बदनाम हो गई। उस बदनामी का तुझे ऐसा धक्का लगा कि तू बीमार हो गई और अब मृत्यु के निकट है। इससे अच्छा होता कि तू दोस्ती न कर के दुश्मनी ही किए जाती।

उम्र भर का तूने पैमाने-वफ़ा बाँधा तो क्या।
उम्र को भी तो नहीं है पायदारी, हाय-हाय॥

तू ने उम्र भर-तमाम आयु पैमाने-वफ़ा बाँधा—सच्चा प्रेम निबाहने का प्रण किया, तो इस से क्या; जब स्वयं आयु को कोई पायदारी-अस्तित्व नहीं है। न जाने कब समाप्त हो जाय, जैसे तेरी असमय समाप्त हो रही है।

ज़हर लगती है मुझे आबो-हवाए-ज़िन्दगी।
यानी तुझ से थी इसे नासाज़गारी, हाय-हाय॥

मुझे ज़िन्दगी का आबो-हवा—जल-वायु ज़हर—विष के समान लगता है, यानी—अर्थात् जब तुझ से इस जल-वायु की नासाज़गारी—विषमता थी, तब मुझ से उसका क्या मेल हो सकता है?

गुलअफ़्शानीहाय नाज़े-जल्वा को क्या हो गया।
ख़ाक पर होती है तेरी लालाकारी हाय-हाय ॥

कहाँ तुम्हारे नाज़े-जल्वा—हाव-भाव गुलअफ़्शानी—पुष्प-वर्षा किया करते थे, कहाँ अब ख़ाक-तुम्हारी समाधि पर लालाकारी हो रही है—फूल चढ़ाये जा रहे हैं।

शर्मे रुसवाई से जा छिपना नक़ाबे-ख़ाक में।
ख़त्म है उल्फ़त की तुझ पर पर्दादारी, हाय-हाय ॥

रुसवाई—बदनामी की शर्म—लज्जा से तू ख़ाक-राख या मिट्टी के नक़ाब—पर्दे में जा छिपा। उल्फ़त—प्रेम (के प्रसंग) पर पर्दादारी—पर्दा डालना ख़त्म है—इस से अंत हो जाता है। इससे बढ़ कर और क्या पर्दा डाला जा सकता है!

ख़ाक में नामूस पैमाने-मोहब्बत मिल गई।
उठ गई दुनिया से राहो-रस्मे-यारी, हाय-हाय ॥

मोहब्बत—प्रेम के पैमाने—वादे को पूरा करने की नामूस—लाज मिट्टी में मिल गई। संसार से यारी–मित्रता की राहो-रस्म—रीति ही उठ गई। न तुझ-सा कोई वादा पूरा करने वाला रहा, न तुझ-सा मित्र।

हाथ ही तेग़-आज़मा का काम से जाता रहा।
दिल पे इक लगने न पाया ज़ख़्मेकारी, हाय-हाय ॥

तेग़-आज़मा—तलवार की परीक्षा करने वाले का हाथ ही बेकाम हो गया और मेरे दिल को ज़ख़्मेकारी—एक गहरा घाव खाने की इच्छा बनी रह गई। अर्थात् अभी प्रेम आरंभ ही हुआ था; उसके सुख-दुख देखने के पहले ही तेरा अंत हो गया।

× × ×

इश्क़ ने पकड़ा न था 'ग़ालिब' अभी वहशत का रंग।
रह गया था दिल में जो कुछ ज़ौक़े-ख़्वारी, हाय-हाय ॥

अभी प्रेम ने वहशत—पागलपन का रङ्ग नहीं पकड़ा था। ज़ौक़े-ख़्वारी—अपने को बर्बाद करने का हौसला दिल का दिल ही में रह गया।

[७५]

सरगश्तगी में आलमे-हस्ती से यास है।
तस्कीं को दे नवेद के मरने की आस है॥

सरगश्तगी में—विक्षिप्तता के कारण, आलमे-हस्ती—जीवन से यास—निराशा हो गई है। तस्कीं—शांति को नवेद-शुभसंवाद दे कि मरने की आशा प्रत्यक्ष है। दुख-द्वंद से छुटकारा मिलने ही पर है।

लेता नहीं मेरे दिले-आवारा की ख़बर।
अब तक वो जानता है, के मेरे ही पास है॥

मेरा दिल आवारा—स्वच्छन्द हो गया है, भटकता फिरता है, परन्तु वह अब तक समझता है कि हृदय मेरे ही वक्ष में है; इसलिए उसकी कोई खोज-ख़बर नहीं लेता।

× × ×

है वह ग़ुरूरे-हुस्न से बेगानए-वफ़ा।
हरचंद उसके पास दिले-हक़-शिनास है॥

हरचंद—बराबर उसका दिल हक़—अधिकार को शिनास—पहचानने वाला है अर्थात् वह आशिक़ के अधिकारों की मर्यादा की रक्षा करना जानता है परन्तु ग़ुरूरे-हुस्न—सौंदर्याभिमान के कारण वह वफ़ा—सद्व्यवहार से बेगाना—अनजान हो गया है।

पी जिस क़दर मिले शबे-महताब में शराब।
इस बलग़मी मिज़ाज को गर्मी ही रास है॥

शबे-महताब—चाँदनी रात में जितनी अधिक शराब मिले पी। कारण चाँदनी ठंडी होती है। ठंड बलग़म—कफ़ खाँसी आदि बढ़ाती है। इसलिए शराब की गर्मी पहुँचाना ही रास—उचित है। शायद मिर्ज़ा बलग़मी थे।

हर एक मकाँ को है मकीं से शरफ़ 'असद'।
मजनूं जो मर गया है तो जंगल उदास है॥

हर घर की इज़्ज़त (शरफ़) मकीं—घर में रहने वाले से है। मजनूं का घर जंगल था। वह मर गया तो उसका घर—जंगल उदास है।

[७६]

× × ×

खिज़ाँ क्या, फ़स्लेगुल कहते हैं किसको, कोई मौसम हो।
वही हम हैं; क़फ़स है और मातम बालो—पर का है॥

इस शैर में छः वाक्य हैं। क्या साफ़ बंदिश है! पिंजड़े में बन्द बुलबुल कहता है—खिज़ाँ क्या—पतझड़ हो तो हम को क्या। फ़स्ले-गुल—बसंत किसे कहते हैं, हम नहीं जानते। कोई मौसम हो—कोई रितु हो; वही हम हैं—वही हम बन्दी हैं; क़फ़स है—पिंजड़ा है और बालो—पर—कटे—छँटे बाल और परों का मातम—शोक मनाना है। प्रेम-फंद में प्रेमी भी ऐसा ही है।

वफ़ाए-दिलबराँ है इत्तेफ़ाक़ी, वरना ऐ हमदम।
असर फ़रियादे—दिलहाए-हज़ीं का किसने देखा है।

ऐ हमदम—हे मित्र दिलबराँ—माशूक़ों की वफ़ा—सदयता, इत्तेफ़ाक़ी है—एक आकस्मिक वस्तु है। वरना—अन्यथा हज़ीं—दुखिया दिलहाय—हृदयों की फरियाद—पुकार का असर—प्रभाव होते किसने देखा है! यह सुना ही सुना है कि आहों—उसासों का कोई प्रभाव भी पड़ता है।

× × ×

[७७]

इश्क़ मुझ को नहीं, वहशत ही सही।
मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही॥

तुम कहते हो मुझ को प्रेम नहीं है, केवल वहशत—पागलपन ही है। ख़ैर यही सही। मेरे पागलपन से तुम्हारी शोहरत—प्रसिद्धि तो हो रही है। यही सोचकर कुछ कृपा करो कि तुम्हारी कुछ सेवा तो हो रही है।

क़तअ कीजे न तअल्लुक हम से।
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

प्रेमी को इससे बड़ी और कोई सज़ा नहीं मिल सकती कि प्रियतम उसके प्रति उदासीन हो जाय। दयालु हो तो कहना ही क्या! न हो, तो निर्दय ही रहे। किसी प्रकार उसके हृदय में कोई स्थान तो बना रहे। मिर्ज़ा को यह भाव बहुत प्रिय है कि हम से क़तअ—तअल्लुक़—संबंध विच्छेद न कर लीजिए। और कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते तो अदावत—शत्रुता का ही सम्बन्ध रखिए। उदासीन न हो जाइए। अन्यत्र कहा है :—

अब जफ़ा से भी हैं महरूम हम अल्ला! अल्ला!
इस क़दर दुश्मने-अरबाबे-वफ़ा हो जाना॥

'बिहारी' ने अपने रंग में क्या ख़ूब कहा है :—

'हरि कीजत बिनती यहै, तुम सों बार हजार!
जेहि-तेहि-भाँति डर्यो-रहौं, पर्यो रहौं दरबार॥

'जेहि-तेहि-भाँति' में यह ध्वनि है कि पुण्यात्मा के रूप में न सही, पापी के रूप में ही सही दरबार में डर्यो—पर्यो रहौं।

मेरे होने में है क्या रुसवाई।
ऐ, वो, मजलिस नहीं, ख़िलवत ही सही॥

मेरे तुम्हारे पास बैठने में भला क्या रुसवाई—बदनामी है। ऐ, वो—हाँ, वह मजलिस न सही,—यदि तुम समझते हो चार आदमियों में मेरे बैठने से बदनामी है तो ख़िलवत—एकांत में ही में भेंट सही। एकांत में भेंट का प्रस्ताव करके कवि अपनी शुद्धवृत्ति इंगित करता है।

हम भी दुश्मन तो नहीं हैं अपने।
ग़ैर से तुझ को मोहब्बत ही सही॥

अपने अर्थात् आपके। मुहावरा है हम भी तो आपके अपने ही हैं—अर्थात् आप के ही हैं। हम भी तो आपके दुश्मन नहीं हैं। ग़ैर—प्रतिद्वंदी से प्रेम है कोई हर्ज़ नहीं। अन्यत्र कहा है :—

तुम जानो तुम्हें ग़ैर जो रस्मो-राह हो।
मुझ को भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

अपनी हस्ती ही से हो जो कुछ हो।
आगही गर नहीं, ग़फ़लत ही सही॥

जो प्राप्य है वह अपने ही अनुभव से मिलेगा। पढ़ने-लिखने या सुनने-सुनाने से नहीं। यदि आगही—आत्म चेतना प्राप्त नहीं हुई तो ग़फ़लत—आत्मविस्मृति ही सही। 'अत्त दीपा भवथ। अत्त सरना भवथ' भ० बुद्ध। अपने दीप आप बनो; अपनी शरण में आप जाओ।

उम्र हरचंद के है बर्क़-ख़िराम।
दिल के ख़ूँ करने की फ़ुर्सत ही सही॥

जीवन हरचंद—बराबर, बर्क़—बिजली की चाल (ख़िराम) से भाग रहा है, तथापि दिल का ख़ून कर लेने की फ़ुर्सत तो है ही। स्वयं बिजली भी बादल के दिल का ख़ून मानी गई है। जैसे वह जल्दी से जल जाती है, वैसे ही हम भी जल्दी से दिल का ख़ून कर सकते हैं।

हम कोई तर्क वफ़ा करते हैं।
न सही इश्क़, मुसीबत ही सही॥

प्रेम का प्रतिदान केवल मुसीबत ही मुसीबत मिले, फिर भी हम वफ़ा—सच्चे प्रेम को तर्क नहीं करेंगे—त्यागेंगे नहीं।

कुछ तो दे ऐ फ़लके-नाइंसाफ़।
आहो-फ़रियाद की रुख़सत ही सही॥

फ़लक—आसमान की जो नाइंसाफ़—अन्यायी है, मिर्ज़ा को तथा अन्य कवियों को हमेशा शिकायत रही है। अन्यत्र उसका अन्याय इस प्रकार व्यक्त किया है :—

'हम कहाँ के दाना थे, किस हुनर में यकता थे।
बेसबंब हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आस्माँ अपना॥'

अब कहते हैं कि आहो—फरियाद—रोने-चिल्लाने के लिये तो कुछ देर रुख़सत—छुट्टी दे दे। कुछ तो दे; क्या एक दम सताए चला जाता है ?

हम भी तस्लीम की ख़ू डालेंगे।
बेनियाज़ी तेरी आदत ही सही॥

यदि तेरी आदत बेनियाज़ी—अकृपा करने की ही है तो हम भी तस्लीम—झुकने या सहने की ख़ू-आदत डालेंगे।

यार से छेड़ चली जाय 'असद'।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही॥

यदि वस्ल—मिलन नहीं है तो उसकी हसरत—अभिलाषा ही सही। उस अभिलाषा को व्यक्त करके हम माशूक़ को छेड़ते रहें, यही बहुत है।

इस ग़ज़ल में 'कुछ नहीं है तो अदावत ही सही,' 'गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही' में ऐसा करुण व्यंग है कि ये पंक्तियाँ अमर हो गई हैं।

[७८]

उस बज़्म में मुझे नहीं बनती हया किए।
बैठा रहा अगरचे इशारे हुआ किए॥

हया किए नहीं बनती—लज्जा का निर्वाह नहीं कर सकता, यहाँ लज्जा आत्म-सम्मान की पर्याय है। अगरचे—यद्यपि, इशारे हुआ किए—प्रतिद्वंदियों ने मुझ पर फ़ब्तियाँ कसीं, व्यंग-बाण बरसाए, परन्तु मैं उस बज़्म-सभा में बैठा रहा। आत्म-सम्मान की रक्षा होती उठ जाने से पर माशूक़ की दर्शन-पिपासा शांत नहीं हुई थी। उठता कैसे !

दिल ही तो है सियासते-दरबाँ से डर गया।
मैं, और जाऊँ, दर से तेरे बिन सदा दिए॥

अन्यत्र कहा है : 'दिल ही तो है न संगो-ख़िश्त'—दिल कोई पत्थर-ईंट

तो नहीं है—वहाँ दर्द से भर आया था, यहाँ दरबान की सियासत (राजनीति) अर्थात् दरबान की शासन-व्यवस्था से डर गया। अन्यथा मैं और तेरे द्वार से बिना सदा–टेर लगाए चला जाता।

रखता फिरूँ हूँ ख़िर्क़ो-ओ-सज्जादा रेहने-मय।
मुद्दत हुई है दावते-आबो-हवा किए॥

बेचारे के पास कुल गृहस्थी थी एक ख़िर्क़ा—गुदड़ी और एक सज्जादा—मुसल्ला—नमाज़ पढ़ने का बिछावन। सो दोनों मय-शराब के बदले रेहन रख दीं। क्या करता? आबो-हवा–वसंत के हवा-पानी की दावत—आमंत्रण किए, मुद्दत—बहुत दिन हो गए थे अर्थात् एक वर्ष। उसकी दावत या इज्ज़त तो पीकर ही हो सकती है, चाहे जिस मूल्य पर मिले।

× × ×

मक़दूर हो तो ख़ाक से पूछूँ के ऐ लईम।
तूने वो गंजहाय गिराँमाया क्या किए॥

मक़दूर—साहस हो तो ख़ाक—पृथ्वी से पछूँ कि हे लईम—कन्जूस तुझ में जो वे गिराँमाया—बहुमूल्य, गंजहाय- ख़ज़ाने दबे हुए थे, उनका तूने क्या किया। रत्न–गर्भा होने के कारण ख़ज़ाने का भी अर्थ ले सकते हैं और महान विभूतियों को गर्भ (क़ब्र) में धारण करने का भी।

किस रोज़ तोहमतें न तराशा किए उदू?
किस दिन हमारे सर पे न आरे चला किए?

उदू—दुश्मनों ने किस दिन तोहमतों—लांछनों से हमें नहीं तराशा अर्थात् हमारे हृदय को नहीं चीरा? किस दिन लांछन रूपी आरे को हमारे सिर पर नहीं चलाया। तोहमत और आरे दोनों के तराशने में भाषा—सौंदर्य है।

सोहबत में ग़ैर की न पड़ी हो कहीं ये ख़ू।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तेजा किए॥

बिना इल्तेजा किए—माँगे बोसा—चुंबन देने लगा है तो ख़ुश होना चाहिए। पर हर हाल मे दुखी होने की आदत से लाचार है। यह संशय

करने लगा कि यह खू—आदत कहीं ग़ैर—प्रतिद्वंदी की सोहबत—पद्धति से तो उसे नहीं पड़ गई ? हाय-हाय, आदत पड़ने के लिए तो बहुत अभ्यास की आवश्यकता होती है।

जिद की है और बात मगर खू बुरी नहीं।
भूले से उसने सैकड़ों वादे वफ़ा किए॥

उसकी खू—आदत बुरी नहीं है। उसकी ज़िद—हठ की बात और है। हठ बुरी है। अन्यथा भूले से–जब–जब वह हठ भूल गया है, तब-तब उसने सैकड़ों वादे वफ़ा—पूरे किए हैं।

'ग़ालिब' तुम्हीं कहो के मिलेगा जवाब क्या।
माना के तुम कहा किए और वो सुना किए॥

क्या होता है तुम्हारे कहने और उनके सुनने से, जवाब मिलेगा वही टका-सा—'नहीं'।

[७९

कुल एक ही शेर कहा है, पर बहुत खूब है :—

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुज़री 'ग़ालिब'।
हम भी क्या याद करेंगे के ख़ुदा रखते थे॥

इस शक्ल से-इस ढङ्ग से, इस कष्ट से कि कभी कोई इच्छा पूरी नही हुई, जब हमारा सारा जीवन व्यतीत हुआ, तो हम भी क्या याद करेंगे–कहेंगे कि हमारा भी ईश्वर था; जो राजा-रङ्क सबकी सुधि लेने वाला कहा जाता है।

[८०]

देखना क़िस्मत के आप अपने पे रश्क आ जाय है।
मैं उसे देखूँ भला कब मुझ से देखा जाय है॥

मिर्ज़ा के कुछ प्रिय प्रसंग हैं। यह कि अपने आप से या अपने अवयवों से ईर्ष्या करना। यह कि सुख को भी दुख की छाया में देखना आदि। यहाँ कहते हैं कि मेरा भाग्य ऐसा है कि यदि मैं उसे देखूँ तो मुझे अपने आप से ईर्ष्या (रश्क) होने लगती है। प्रत्यक्ष है कि यह रश्क अपनी दृष्टि-शक्ति से है। अन्यत्र कहा भी है :—

क्यों जल गया न ताबे-रुख़े-यार देख कर।
जलता हूँ अपनी ताक़ते-दीदार देख कर॥

या

हम रश्क को अपने भी गवारा नहीं करते।
मरते हैं, मगर उनकी तमन्ना नहीं करते। आदि।

हाथ धो दिल से यही गर्मी गर अंदेशे में है।
आबगीना तुन्दिये-सहबा से पिघला जाय है॥

अन्देशे—फ़िक्र, चिन्ता प्रिय-मिलन की, यदि इतनी गर्मी—ज्वाला पैदा कर रही है तो दिल से हाथ धो लो। दिल उससे वैसे ही पिघल जायगा जैसे सहबा—अंगूरी शराब यदि वह तुन्द हो—तेज़ या तीखी हो तो आबगीना—पीने के बर्तन अर्थात् प्याले को पिघला देगी। दिल प्याले के समान है और गर्मी तेज़ शराब के।

ग़ैर को या रब! वो क्यों कर मनअ़ गुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उस को आती है, तो शरमा जाय है॥

हया और शर्म पर्यायवाची हैं। यहाँ उनका प्रयोग अलग-अलग प्रसंगों में हुआ है। ग़ैर—प्रतिद्वंदी, गुस्ताख़ी करता है—अशिष्टता करता है, अनुचित प्रस्ताव करता है। स्वाभाविक है कि यह सुन उसे हया—लज्जा लगने लगती है। उसे चाहिए कि ग़ैर को डाँट-डपटे, कुछ खरी-खरी सुनाए। परन्तु जैसे ही वह सुनाने को उतारू होता है कि शर्म उसका मुँह बन्द कर देती है। यह शर्म पर शर्म का दौर है। मुँह से 'अनुचित प्रस्ताव' की चर्चा नहीं निकलती।

शौक़ को यह लत के हरदम नाला खींचे जाय है।
दिल की वो हालत के दम लेने से घबरा जाय है॥

प्रेम की यह लत—बुरी आदत कि लगातार नाला आह-ऊह करने के लिये बाध्य करता है और दिल की वह हालत है कि आह-ऊह करते करते ज़रा दम लेता हूँ—थोड़ी साँस भी लेना चाहता हूँ तो घबरा जाता है कि एक क्षण भी रोना—चीख़ना बन्द क्यों कर दिया। दोनों प्राण के ग्राहक हो रहे हैं।

दूर चश्मे-बद ! तेरी बज़्मे-तरब से, वाह ! वा !
नग़्मा हो जाता है वाँ, गर नाला मेरा जाय है॥

वाह ! वाह ! जिस सभा में मेरा नाला—रुदन पहुँचते ही नग़्मा—गान हो जाता है, ऐसी बज़्मे-तरब—उसके ऐसे सरस स्थल को (चश्मे-बद दूर)—जो कुदृष्टि से देखे उसकी आँखों में राई-नून।

गरचे है तर्ज़े-तग़ाफ़ुल पर्दादारे-राज़े-इश्क़।
पर हम ऐसे खोये जाते हैं के वो पा जाय है॥

हम चाहते हैं कि हमारा प्रेम उस पर प्रगट न हो। यदि वह जान गया तो हमें सताएगा। इसलिये हम तर्ज़े—तग़ाफ़ुल—प्रेम से अनभिज्ञ होने का स्वांग भरते हैं, क्योंकि ऐसा करना इश्क़—प्रेम के राज़—रहस्य को छिपाना, उस पर पर्दा डालना है। गरचे—यद्यपि, हम यह सब करते हैं परन्तु उसके सामने पहुँच कर ऐसे खोए जाते हैं—ऐसे भूले—भूले-से हो जाते हैं कि वो पा जाय है—तुरन्त पहचान लेता है कि आ गया मेरा शिकार।

× × ×

हो के आशिक़ वो परीरुख़-और नाज़ुक बन गया।
रंग खुलता जाय है जितना के उड़ता जाय है॥

वह परीरुख़—अप्सरोमुखी आशिक़ होकर और नाज़ुक-कमनीय हो गई, विरह-व्यथा से घुलकर पुष्प—तन्वी हो गई। और ज्यों-ज्यों उसका रंग उड़ता या, वह और खुलता गया, अर्थात् पीला पड़ने से चम्पकवर्ण होता गया।

नक़्श को उसके मुसव्विर पर भी क्या-क्या नाज़ है।
खींचता है जिस क़दर, उतना ही खिंचता जाय है॥

नक़्श—उसका नख-शिख, मुसव्विर—चित्रकार से भी क्या-क्या नाज़—कितनी अठखेलियाँ कर रहा है। जिस क़दर—जितनी तन्मयता से वह चित्र खींचना चाहता है, उतना ही उसका नख-शिख खिंचता जाय है—चित्रकार से उसी प्रकार दूर होता जाता है, जैसे कि अपने प्रेमी से; क्योंकि चित्रकार की तन्मयता को देखकर वह समझता है कि चित्रकार उस पर मर मिटा।

चित्रकार के असफल प्रयत्नों पर बिहारी ने भी खूब कहा है :—

'लिखन बैठि वा की सिबिहि, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

साया मेरा, मुझ से, मिस्ले-दूद भागे है 'असद'।
पास मुझ आतिश-बजाँ के किस से ठहरा जाय है॥

मिस्ले-दूद—धुआँ की तरह मेरी छाया (साया) भी मुझ से दूर भागती है। मैं आतिश—आग, बजाँ-की जान हूँ अर्थात् जल रहा हूँ। जैसे आग से धुआँ भागता है, वैसे ही मेरे पास मेरी छाया भी नहीं ठहर सकती।

× × ×

[८१]

कुल एक ही शैर कहा है :—

उग रहा है दरो-दीवार पे सब्ज़ा 'ग़ालिब'।
हम बियाबाँ में हैं और घर में बहार आई है॥

सब्ज़ा—हरियाली छा जाना वसंत ऋतु का द्योतक है। पर घर के दरो-दीवार—दर्वाज़ों-दीवालों पर घास उग आना घर की बर्बादी का लक्षण है। बर्बादी को ही आबादी मान कर कहते हैं कि हम तो बियाबाँ—वीराने में हैं

और घर की दरो-दीवार में सब्ज़ा उग आने के कारण घर में बसंत छा गया है।

यह शैर बहुत-सी समस्याएँ उपस्थित करता है। यदि घर वीरान हो गया है तो हम बाहर वीरानी क्यों ढूँढ़ें; घर ही जा रहें। क्या हम सचमुच पागल हो गए कि घर के बसंत को त्याग बाहर भटक रहे हैं? आदि।

[८२]

सादगी पर उस की मर जाने की हसरत दिल में है।
बस नहीं चलता के फिर ख़ंजर कफ़े-क़ातिल में है॥

मेरी हसरत—इच्छा है कि केवल उसकी 'सादगी' पर ही जान दे दूँ। उस सादगी की अन्यत्र प्रशंसा की है :—

इस सादगी पे कौन न मर जाय या ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

परन्तु, मेरा बस नहीं चलता। वह मुझे सादगी पर मरने का अवसर न देकर आज फिर खंजर हाथ में लिये हुए है और ख़ंजर से मुझे मारना चाहता है। खंजर कफ़े-क़ातिल—क़त्ल करने वाले (माशूक़) के हाथ में है।

देखना तक़रीर की लज्ज़त के जो उसने कहा।
मैंने यह जाना के गोया यह भी मेरे दिल में है॥

बोलने वाला बोले और सुनने वाले को तुरन्त यह भान हो कि यह बात तो उसके मन में भी थी और मुँह से निकलना ही चाहती थी, तो ऐसी बात बड़ी मीठी लगती है। कहते हैं कि उसकी तक़रीर—बोली की लज्ज़त—मिठास देखो कि एक नहीं जो-जो भी बात वह कहता है, ऐसा जान पड़ता है कि गोया—जैसे वह मेरे भी दिल में है और निकलना ही चाहती थी।

गरचे है किस-किस बुराई से, वले, बाईं हमा।
ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है के उस महफ़िल में है॥

गरचे—यद्यपि बड़ी-बड़ी बुराइयों से भरा हुआ है, वले—लेकिन, बाईं—हमा—फिर भी मेरा ज़िक्र—चर्चा मुझसे बेहतर—अच्छा है के उस महफ़िल—उस की सभा में चल तो रहा है। मेरी ख़ुद की तो वहाँ पहुँच ही असंभव है।

× × ×

रंजे-रह क्यों कीजिए, वामाँदगी को इश्क़ है।
उठ नहीं सकता हमारा जो क़दम मंज़िल में है॥

रंजे-रह—यात्रा का कष्ट, क्यों कीजिए—क्यों सहने का साहस कीजिए, जबकि वामाँदगी—शैथिल्य को हमसे प्रेम हो गया है। इतने शिथिल हो गए हैं कि मंज़िल—गंतव्य की ओर क़दम—पैर उठाते हैं तो वह उठने से ही इंकार करता है।

जल्वाज़ारे-आतिशे-दोज़ख़ हमारा दिल सही।
फ़ित्नए-शोरे-क़यामत किस की आबो-गिल में है?

अच्छा, तुम कहते हो तो सही—मान लिया कि हमारा दिल दोज़ख़—नर्क की आतिश—आग का जल्वाज़ार है—प्रदर्शन-स्थल है। पर यह तो बतलाओ कि क़यामत—प्रलय की हलचल (शोर) का फ़ित्ना—बवंडर किसके आबो-गिल—मिट्टी पानी में है—तुम्हारी। तात्पर्य यह कि तुम ऐसे पंचभूत के बने हो कि तुम्हारी सुन्दरता ने प्रलय उपस्थित कर दिया। और मान्यता यह है कि प्रलय उपस्थित होने पर ही नर्क की आग भड़काई जायगी। इसलिए पहले तुम हुए—प्रलय। तब कहीं हम हुए-नर्क की आग।

है दिले-शोरीदए-'ग़ालिब' तिलस्मे-पेचोताब।
रहम कर अपनी तमन्ना पर, के किस मुश्किल में है॥

शोरीदा—पागल 'ग़ालिब' का दिल एक तिलस्म हो रहा है। उस तिलस्म के पेचोताब—फन्दों में तुम्हारी तमन्ना—तुम्हें पाने की इच्छा फँसी हुई है। यह 'तुम्हारी तमन्ना' फँस कर बड़ी मुश्किल में पड़ी हुई है। ग़ालिब पर नहीं तो उस तमन्ना पर जो तुम्हारी है, रहम कर—दया कर और तिलस्म तोड़ कर उसे फन्दे से निकाल अर्थात् तुरंत दर्शन दे।

[८३]

दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई।
दोनों को इक अदा में रज़ामन्द कर गई॥

दिल और जिगर दोनों तेरी निगाह— तेरी चितवन (के तीर) से घायल होने को लालायित थे। ऐसा ही हुआ भी। तीर दिल को चीरता हुआ जिगर तक उतर गया, अर्थात् कलेजे में धँस गया। एक ही अदा—कटाक्ष में दोनों रज़ामन्द—राज़ी हो गए—दोनों की इच्छा पूरी हो गई।

शक़ हो गया है सीना-खुशा-लज्ज़ते-फ़िराक़।
तकलीफ़ पर्दादारिए-ज़ख्मे-जिगर गई॥

सीना—वक्ष, शक़ हो गया है—फट गया है। 'शक'—संदेह है; शक़—फटना। क्यों फट गया है? ज़ख्मे जिगर—कलेजे का घाव बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ा कि उसने सीने को फाड़ दिया। यह बहुत अच्छा हुआ। इस घाव की पर्दादारी—इस घाव को छाती के भीतर छिपाए रखने में मुझे बड़ी तकलीफ़ होती थी। छाती फाड़ कर घाव के प्रकट हो जाने से 'मुँह-बन्द' घाव की पीड़ा तो कम हुई ही; फ़िराक़—विरह की जो लज्ज़त— मिठास है अब उसका खुशा—खुल्लमखुल्ला आनन्द ले रहा हूँ—यह खुशी भी क्या कम है?

वो बादये शबाना की सरमस्तियाँ कहाँ।
उठिए, बस, अब, के लज्ज़ते-ख्वाबे-सेहर गई॥

वे शबाना—रातें, बादये—शराब भरी अब कहाँ? उन रातों की सरमस्तियाँ—मस्तानगी अब कहाँ कि रात-रात भर शराब पीते थे, मस्त रहते थे और सेहर—जब सबेरा होने लगता था (और ठंडी हवा थपकियाँ देती थीं) तब सो जाते थे और ख्वाब—स्वप्न का आनन्द (लज्ज़त) लेते थे। वे सब बातें हवा हो गईं; बस अब उठिए—जागिए, होश में आइए।

इशारा यह है कि जब वैसा होता था, तब जवानी के दिन थे। वे बीत गए। बुढ़ापा आया। अब चेत जाइए और कुछ रामभजन कीजिए।

उड़ती फिरे है ख़ाक मेरी कूये-यार में।
बारे, अब ऐ हवा! हवसे बालो-पर गई॥

इतनी सीधी बात है जितनी मिर्ज़ा अक्सर नहीं कहते थे पर तर्ज़े—बयानी ने जान डाल दी है।

मैं ख़ाक—मिट्टी या धूल हो गया (मर कर)। ऐ हवा, बारे-तेरी कृपा से मेरी ख़ाक यार के कूचे में उड़ती फिरती है अन्यथा मरने पर भी मुझे बाल और पर की हवस—इच्छा होती कि पंख होते तो उड़कर उसकी गली में पहुँचता।

देखो तो दिल-फ़रेबिए-अन्दाज़े-नक़्शे-पा।
मौजे-ख़िरामे-यार भी क्या गुल कुतर गई॥

गुल कुतरना—ग़प हांक देना या छुँछूदर छोड़ देना या आग लगाकर जमालो का दूर खड़ा रहना है।

यार--प्रियतम की ख़िराम—हंस-गति की मौज—लहर तो देखो। जैसे लहर पानी में अठखेलियाँ करती हुई जाती है, वैसे ही प्रियतम के नक़्शे पा—चरण-चिन्ह इस अंदाज़—इस सुन्दरता से धरती पर शोभित हो रहे हैं कि प्रेमियों के दिलों में फ़रेब पैदा हो रहे हैं। वे चकित हैं कि ये पैर के चिन्ह हैं कि फूल खिले हैं। इन्हें पूजें कि चूमें कि क्या करें। इधर यह भीड़ परेशान है; और परेशानी पैदा करने वाले चरण आग लगाकर न जाने कहाँ नौ-दो ग्यारह हो गए।

हर बुलहवस ने हुस्न-परस्ती शआ़र की।
अब आबरूए-शेवए-अहले-नज़र गई॥

हर बुलहवस--कामुक ने आज-कल हुस्न-परस्ती—सौंदर्योपासना का शआ़र—दावा करना शुरू कर दिया है। परिणाम यह हुआ कि जो शेवा—पेशे या धर्म से अहले—नज़र—सच्चे उपासक थे उनकी आबरू—इज्ज़त भी गई—समाप्त हो गई। लोग उन्हें भी कामुक-मात्र समझने लगे।

नज़्ज़ारे ने भी काम किया वाँ नक़ाब का।
मस्ती से हर निगह तेरे रुख़ पर बिखर गई॥

मेरी दृष्टि (नज्ज़ारे) जब तुझ पर पड़ी तो वह स्वयं नक़ाब—घूँघट हो-हो गई! हर निगाह—हर बार जब मैंने दृष्टि डाली तो तेरे सौन्दर्य की ऐसी मस्ती मुझ पर छा गई कि क्या देखूँ, क्या न देखूँ। नाक देखूँ, आँख देखूँ, माथा देखूँ, ओंठ देखूँ? कहने का मतलब मेरी दृष्टि बिखर गई—विभिन्न सौंदर्य बिन्दुओं पर फैल गई और मैं 'तुझे' न देख पाया। जैसे सूतों के तार-तार से घूँघट बनता है, वैसे ही बिखरी निगाहों के तार-तार से एक घूँघट बन गया।

× × ×

मारा ज़माने ने 'असदुल्लाह ख़ाँ' तुम्हें।
वो वलवले कहाँ? वो जवानी किधर गई॥

ज़माने—समय, युग के उतार-चढ़ाव ने तुम्हें समाप्त कर दिया। कहाँ अब वह जोश (वलवले) कहाँ वह जवानी? मिर्ज़ा यों भी समाज द्वारा सताए हुए थे और सन्तावन के ग़दर ने तो ग़ज़ब ही ढा दिया। कहना यह है कि यदि अच्छा वक्त होता तो कदाचित इतनी जल्दी उत्साह ठंडा न पड़ता, इतनी जल्दी बुढ़ापा न आता।

[८४]

तस्कीं को हम न रोएँ जो ज़ौक़े-नज़र मिले।
हूराने-ख़ुल्द में तेरी सूरत मगर मिले॥

किसी संग्रह में पाठ 'सूरत मगर' है, किसी में 'सूरत अगर।' टीकाकारों ने अर्थ भी भिन्न-भिन्न किए हैं। कोई कहते हैं ख़ुल्द—बैकुण्ठ की हूरों—अप्सराओं में तेरी सूरत—तुझ सी सुन्दरी, मगर या अगर का अर्थ-शायद मिल जाय तो हम तस्कीन—दिल की तसल्ली या हृदय की शान्ति के लिए न रोएँ, यह सोचकर कि चलो दिल को चैन नहीं मिला तो नज़र—दृष्टि को तो ज़ौक़—सुख प्राप्त हो गया। कोई कहते हैं—मगर बैकुण्ठ में भी तुझ सी सुन्दरी

दिखे तो ! वहाँ भी नहीं है। इसलिए वहाँ पहुँचकर भी हम हृदय की शान्ति और आंखों की अतृप्ति दोनों के लिए रोते हैं।

अपनी गली में मुझको न कर दफ़्न बाद क़त्ल।
मेरे पते से ख़ल्क को क्यों तेरा घर मिले?

बाद—क़त्ल—मेरी हत्या करने के बाद अपनी गली में मुझको न दफ़ना, मेरी समाधि न बना; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि कोई किसी से पूछे कि तेरा घर कहाँ है तो उत्तर मिले उसी गली में है जहाँ 'ग़ालिब' की समाधि है। ख़ल्क़–दुनिया जान जायगी कि तू मेरा माशूक़ था। इस तरह तू बदनाम हो जायगी कि तूने मेरी जान ली; और मैं मरने के बाद भी तेरी बदनामी नहीं चाहूँगा। इसके अतिरिक्त मैं मरने पर भी नहीं चाहूँगा कि तेरे घर अन्य व्यक्ति आए और सो भी मेरी सहायता से अर्थात् मेरी क़ब्र के पते से! मैं ईर्ष्या से क़ब्र में करवटें लेने लगूँगा।

साक़ीगरी की शर्म करो आज, वर्ना हम।
हरदम पिया ही करते हैं मय, जिस क़दर मिले॥

हम तो पुराने पियक्कड़ हैं। जिस क़दर—जितनी कम-ज़्यादा मिल जाय, हम मय - शराब हरदम पीते ही रहते हैं। आज तुम साक़ी हो। साक़ी होने की शर्म करो—लाज रखो, डटकर पिला दो। वर्ना—अन्यथा हम पीते तो रहते ही हैं।

तुझसे तो कुछ कलाम नहीं लेकिन ऐ नदीम।
मेरा सलाम कहियो अगर नामाबर मिले॥

मिर्ज़ा स्वयं इस शैर की टीका करते हैं—'कवि को एक पत्र-वाहक की तलाश थी, पर खटका यह लगा हुआ था कि कहीं पत्र-वाहक ही आशिक़ न हो जाय। कवि का एक मित्र एक व्यक्ति को लाया और कहा कि यह आदमी बड़ा शिष्ट और विश्वासपात्र है। मैं दायित्व लेता हूँ कि यह ऐसा व्यवहार न करेगा, जिसका आपको खटका है। अस्तु, उसके हाथ पत्र भेजा गया। कवि का संदेह सच निकला। पत्रवाहक माशूक़ को देख उस पर फ़िदा हो गया। कैसा

पत्र ? कहां-का उत्तर ? पागल बन, कपड़े फाड़ वह जङ्गल को चल दिया। अब इस घटना के बाद आशिक़ (कवि) उस मित्र (नदीम) से कहता है कि घट-घट की जानने वाला तो ईश्वर है। किसी की भीतरी इच्छा की किसी को क्या ख़बर ? हे मित्र तुझ से हमें कुछ कलाम—कहना-सुनना नहीं। परन्तु यदि वह पत्रवाहक कहीं तुझे मिल जाय, तो उसको मेरा सलाम कहियो कि क्यों साहब ! क्या-क्या दावे आशिक़ न होने के कर गए थे और अन्त में क्या कर बैठे ?'

तुझ को भी हम दिखाएँ के मजनू ने क्या किया।
फ़ुर्सत कशाकशे-ग़मे-पिनहा से गर मिले ॥

हम क्या करें ? पिनहा—गुप्त या अंदरूनी, ग़म—पीड़ा अर्थात् अंतर्व्यथा की कशाकश—खींचतान से ही हमें फ़ुर्सत—विराम नहीं मिलता। गर मिले—यदि मिल जाय तो हम भी दिखला दें कि मजनू ने क्या किया और हम क्या कर सकते हैं, अर्थात् उनसे भी अधिक पागलपन कर सकते हैं। गुप्त पीड़ा से आशय यह भी है कि उसे व्यक्त कर हम माशूक़ को बदनाम नहीं करना चाहते।

× × ×

ऐ साक़िनाने-कूचये-दिलदार देखना।
तुम को कहीं जो 'ग़ालिबे' आशुफ़्ता-सर मिले ॥

हे दिलदार—माशूक़ की गली के साक़िनो—रहने वालो देखना, वहाँ-कहीं आशुफ्तासर—सिरफिरा 'ग़ालिब' तो नहीं है। हो, तो उस पागल पर दया रखना।

[८५]

कोई दिन गर ज़िंदगानी और है।
अपने जी में हमने ठानी और है ॥

मिर्ज़ा स्वयं एक शिष्य को लिखते हैं—'इस शैर में कोई इश्काल (विशेष अर्थ) नहीं है। जो शब्द हैं, वही अर्थ है। कवि अपना इरादा क्यों बताए

कि मैं क्या करूँगा, परन्तु यह कहता है कि मैं कुछ करूँगा। ख़ुदा जाने शहर या शहर के बाहर धूनी लगा, फ़क़ीर होकर बैठ जाय या देश छोड़ परदेश को चला जाय।' पाठक स्वयं सोचे, यही ख़ूबी है।

आतिशे-दोज़ख़ में यह गर्मी कहाँ।
सोज़े-ग़महाये-निहानी और है॥

दोज़ख़—नर्क की आतिश—आग में यह गर्मी—यह जलाने की शक्ति कहाँ है, जो निहानी—अदृश्य, ग़महाय—पीड़ाओं की सोज़—आग में है। नर्क की आग जलाती भर है, राख नहीं कर देती। इश्क़ की अँदरूनी आग तो ख़ाक कर देती है।

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें।
पर कुछ अब की सरगरानी और है॥

बारहा—अनेक बार उनका क्रोध (रंजिश) देखा है पर अब की बार क्रोध (सरगरानी) कुछ और ही प्रकार का है, अर्थात् पहिले मनाने से मान जाते थे पर इस बार शायद कितना भी मनाएँ, न मानेंगे। प्राण देने की नौबत आएगी।

दे के ख़त मुँह देखता है नामाबर।
कुछ तो पैग़ामे-ज़बानी और है॥

नामाबर—पत्रवाहक ने माशूक़ का ख़त या मेरे पत्र का उत्तर मुझे दे दिया है। इसके बाद भी वह मेरा मुँह इस तरह देख रहा है जैसे उसे कुछ कहना हो, पर कहने में संकोच का अनुभव होता हो। इससे जान पड़ता है कि माशूक़ ने केवल लिखित उत्तर नहीं भेजा, कुछ पैग़ाम—संदेश, ज़बानी—मौखिक भी भेजा है। संकोच उसे इसलिये है कि या तो माशूक़ ने कहा हो कि ख़बरदार, आगे पत्र न भेजे या शायद कुछ गालियाँ ही दी हों।

× × ×

हो चुकीं 'ग़ालिब' बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥

'ग़ालिब' जितनी बलाएँ—पीड़ाएँ थीं सब तमाम—समाप्त हो चुकीं। एक नागहानी—अकाल, मर्ग—मृत्यु और बाक़ी रह गई है। यदि यह माना जाय कि मृत्यु तो अकाल होती ही नहीं, तो अर्थ यह होगा कि केवल मृत्यु शेष रह गई है।

[८६]

कोई उम्मीद बर नहीं आती।
कोई सूरत नज़र नहीं आती॥

कोई उम्मीद—आशा बर नहीं आती—पूरी नहीं होती। कोई सूरत—लक्षण आगे भी किसी आशा की पूर्ति के नहीं दीख पड़ते। जैसे अब तक निराश रहे, वैसे ही आगे भी रहना है। इसी को कबीर कहते हैं :

जा दिन ते जिउ जनमिया, कबहुँ न पाया सुक्ख।
डालै-डालै मैं फिरा, पातै-पातै दुक्ख॥

मौत का एक दिन मुअ़य्यन है।
नींद क्यों रात भर नहीं आती!

मौत—मृत्यु का एक दिन मुअ़य्यन है—निश्चित है। वह निश्चित दिन को ही आएगी। नींद के लिये तो कोई रात निश्चित नहीं है। वह रात-रात भर क्यों नहीं आती!

आगे आती थी हाले-दिल पे हँसी।
अब किसी बात पर नहीं आती॥

आगे—पहले अर्थात् प्रेम करने के प्रारंभिक दिनों में हाले-दिल—दिल की दशा पर हँसी आती थी कि क्या उसने एक झंझट मोल ले लिया है। परंतु अब मैं प्रेम की उस स्थिति पर पहुँच गया हूँ कि किसी बात पर—शरीर की दशा पर, मन की दशा पर, मस्तिष्क की दशा पर, किसी पर भी हँसी नहीं आती। विश्वास हो गया है कि इसी झंझट-मुसीबत के लिये पैदा हुआ था।

जानता हूँ सवाबे-ताअ़तो-ज़ुह्द ।
पर तबीयत इधर नहीं आती ॥

ताअ़त—पूजा और ज़ुह्द—सात्विकता में सवाब—पुण्य है, यह मैं जानता हूँ पर तबीयत—इच्छा, यहाँ अंतःप्रेरणा उस ओर नहीं होती और बिना अंतःप्रेरणा के पूजा और सात्विकता में क्या रक्खा है। जैसा कबीर कहते हैं :—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहिं ।
मनुआ तो चहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥

है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ ।
वर्ना क्या बात कर नहीं आती ?

चुप रहने के अनेक कारण हो सकते हैं। अन्यत्र एक कारण बतलाया है :—

जी में ही कुछ नहीं है हमारे, वगर्ना हम ।
सर जाए या रहे, न रहें पर कहे बग़ैर ॥

यहाँ कहते हैं कि हमें बात करनी तो आती है पर कुछ बात—परिस्थिति ऐसी आगई है कि हम चुप हैं। चाहे जिस परिस्थिति का अनुमान कर लीजिए। प्रेम प्रगट हो जायगा, शिकायत हो जायगी, प्रतिद्वंदी बैठा हुआ है, आदि-आदि।

क्यों न चीखूँ, के याद करते हैं ।
मेरी आवाज़ गर नहीं आती ॥

क्यों न चीखूँ—क्यों न रोऊँ-चिल्लाऊँ कि मेरे रोने-चिल्लाने की आवाज़ यदि वे नहीं सुन पाते तो याद करते हैं—पूछ-जाँच करते हैं कि आज वह पागल कहाँ गया ! अर्थात् मेरे रोने-चिल्लाने की भी कुछ इज्ज़त है इसलिये यह कार्य मेरे लिये अनिवार्य है।

दाग़े-दिल गर नज़र नहीं आता ।
बू भी, ऐ चारागर ! नहीं आती ?

विरह की आग लगी है। 'उर अंतर धुँधवाय, जरै ज्यों काँच की भठी।'

मित्रों या सगे-संबंधियों ने तड़पते देखा तो दौड़ कर चारागर—डाक्टर को बुला लाए। डाक्टर ने स्टेथेस्कोप से देखभाल कर कहा कि कहीं कुछ नहीं है। तब प्रेमी कहता है कि दाग़े-दिल—दिल की जलन का दाग़ तो भीतर है पर डाक्टर सा० क्या जलने की बू—गंध भी आपकी नाक तक नहीं पहुँचती ? आँख से गए, तो क्या नाक से भी गए। स्मरण रहे कि जलने की गंध या दुर्गंध सहज ही और दूर तक सूँघने में आ जाती है। क्या ख़बर ली है चारागर की !

हम वहाँ हैं जहाँ से हम को भी।
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती॥

यह आत्मविस्मृति का भाव मिर्ज़ा को बहुत प्रिय है और इसे उन्होंने बार-बार और बदल-बदल कर प्रगट किया है। वहाँ पहुँच गए हैं, जहाँ बिरले पहुँचते हैं, जहाँ हम 'हम' नहीं रह जाता; तब हमारी ख़बर क्या आए ? इस स्थिति को कबीर समझाते हैं :—

'ऊँचा तरुवर, गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवित मरि जाय॥'

मरते हैं आरज़ू में मरने की।
मौत आती है पर नहीं आती॥

मरने की आरज़ू—इच्छा में मरते हैं—प्राण दिए देते हैं। मरने के लिये बहुत व्याकुल हैं। ऐसा जान भी पड़ता है कि मौत आती है—अब आई, तब आई पर यथार्थ में नहीं आती।

काबे किस मुँह से जाओगे 'ग़ालिब'।
शर्म तुम को मगर नहीं आती॥

मगर—शायद।

बादशाह हज को जाने वाले थे। मिर्ज़ा साथ जाने को उत्सुक थे। अन्यत्र शैर कहा है :—

'ग़ालिब' गर इस सफ़र में मुझे साथ ले चलें।
हज का सवाब नज़्र करूँगा हुजूर की॥

संभव है उसी समय यह भाव उदय हुआ हो। ग़ालिब! तुम क्या मुँह लेकर काबे (मक्के—मदीने) को जाओगे। शायद वहाँ जाने का इरादा करते हुए तुम्हें शर्म भी नहीं आती। सारा जीवन तो आशिक़ी, शराब, जुए आदि में व्यतीत किया और सौ चूहे खा कर अब बिल्ली चली तपस्या करने को!

[८७]

दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है?
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है?

इस दर्द—प्रेम की पीड़ा की दवा क्या है, यह भी तो बतला।

हम हैं मुश्ताक़ और वो बेज़ार।
या इलाही! ये माजरा क्या है?

हम मुश्ताक़—चाहने वाले, इच्छा करने वाले। वे बेज़ार—(हमसे) परेशान। हे भगवन्—यह कैसी भयानक परिस्थिति (माजरा) है!

मैं भी मुँह में ज़बान रखता हूँ।
काश पूछो के मुद्आ क्या है॥

मुझे भी बोलना आता है। काश—भगवान करे, तुम इतना पूछो तो के मुद्आ क्या है—क्या चाहते हो।

जब के तुझ बिन नहीं कोई मौजूद।
फिर ये हंगामा, ऐ खुदा! क्या है॥

हंगामा—यह तमाम भीड़-भाड़, शोर-गुल, हल्लागुल्ला, जिनकी चर्चा आगे के छन्दों में हुई है—क्या है, यदि ईश्वर! एक तेरे सिवा और कोई नहीं।

थे परी-चेहरा लोग कैसे हैं ?
ग़मज़ओ-अश्वओ-अदा क्या है ?

हे भगवान, यदि तेरे सिवाय और कुछ नहीं है तो ये लोग जो परी-चेहरा, अप्सराओं के समान सुन्दर हैं, कैसे हैं अर्थात् तू या तुझसे कुछ भिन्न। ये क्यों मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं ? क्यों नहीं मुझे तुझ में ही तल्लीन रहने देते। केवल परी-चेहरा होते तब भी ग़नीमत थी। और भी घायल करने वाले इनके ग़मज़ओ-अश्वओ-अदा अर्थात् हाव-भाव, नाज़—नखरे चटक-मटक ये सब क्या हैं ?

शिकने-जुल्फे-अंबरी क्यों हैं ?
निगहे चश्मे-सुर्मसा क्या है ?

अंबरी—अंबर की खुशबू (इत्र) देनेवाली ज़ुल्फ़—लट या लटों में ये शिकन—सिकुड़न या पेंच क्यों है और चश्मे सुर्मसा—उन आँखों की जिनमें स्वाभाविक रूप से सुर्मा लगा रहता है निगह—कटाक्ष क्या है ?

सब्ज़ाओ-गुल कहाँ से आए हैं ?
अब्र क्या चीज़ है, हवा क्या है ?

परी-चेहरा लोग ही ध्यान बँटाते हों ऐसी बात नहीं है। और भी चीजे़ हैं। सब्ज़ाओ-गुल—हरियाली और फूल कहाँ से आए हैं। अब्र—मेघ और हवा क्या है ?

हमको उनसे वफ़ा की है उम्मीद।
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है॥

वफ़ा—ईमानदारी या सद्व्यवहार। उर्दू में प्रेमिका प्रेम का प्रतिदान नहीं देती। उसी प्रेमिका से हम वफ़ा की उम्मीद करते हैं।

हाँ, भला कर, तेरा भला होगा।
और दरवेश की सदा क्या है।

दरवेश—फ़कीर की सदा-आवाज़ सिवाय इसके क्या है कि जो भला करेगा उसका भला होगा।

जान तुम पर निसार करता हूँ।
मैं नहीं जानता दुआ क्या है?

निसार—न्योछावर, दुआ—आशीष। तुमने कभी आशीष नही दिया।

मैंने माना के कुछ नहीं 'ग़ालिब'
मुफ्त हाथ आए तो बुरा क्या है?

बेदाम का ग़ुलाम क्या खराब है!

× × ×

[८८]

बेऐतदालियों से सुबुक सब में हम हुए।
जितने ज़ियादः हो गए, उतने ही कम हुए॥

ऐतदाल है सीमा के भीतर रहना; सोचने-समझने में, आहार-व्यवहार में, आदि। पर हम बेऐतदाल थे; जीवन में सीमाएँ नहीं मानते थे। इसलिये नही मानते थे कि हम अपने को विशेष प्रतिभा-सम्पन्न समझते थे, दुनिया से ऊँचा समझते थे। परन्तु ठीक इसी अतिक्रमण के कारण सब में—साधारण लोगों में हम सुबुक हुए, हम हल्के-फुल्के विचारों के माने गए। जितने हम ज़्यादा होते गए—साधारण सीमाओं को लांघते गए उतने ही दुनिया की नज़र में हम कम होते गए—घटते गए। हमारी प्रतिभा का साधारण लोग मूल्यांकन नहीं कर सके, हमें बकवादी या वहशी कहते रहे।

पिनहा था दाम सख़्त क़रीब आशियान के।
उड़ने न पाए थे के गिरफ़्तार हम हुए॥

आशियाँ—घोंसले के, सख़्त क़रीब—बहुत ही पास, दाम—जाल, पिनहा था—छिपाकर फैला दिया गया था। अभी हमने पहली उड़ान भरी ही थी कि गिरफ़्तार हो गए—जाल में फँस गए। मिर्ज़ा बाल्यकाल ही से आफ़तों और मुसीबतों से घिरे रहे। उसी का यह अलंकारिक वर्णन है।

हस्ती हमारी अपनी फ़ना पर दलील है।
याँ तक मिटे के आप हम अपनी क़सम हुए॥

हस्ती हमारी—हमारा जीवन दलील है—प्रमाणित होता है, अपनी फ़ना पर—हमारी मृत्यु द्वारा जो अभी आई तो नहीं है पर हमें इतना मिटा चुकी है कि हम अपनी क़सम हो गए हैं अर्थात् केवल क़सम खाने के लिये कह सकते हैं कि जीते हैं, यथार्थ में मृत हैं।

× × ×

तेरी वफ़ा से क्या हो तलाफ़ी, के दैर में।
तेरे सिवा भी हम पे बहुत से सितम हुए॥

यदि तू इरादा कर ले कि हम से वफ़ा—सद्व्यवहार करेगा तो भी क्या तलाफ़ी—क्षतिपूर्ति हो सकती है। दैर—दुनिया में तेरे अतिरिक्त और भी बहुत से लोग हैं जिन्होंने हम पर सितम—अत्याचार किए हैं। चाहता है कि इतनी ही कृपा नहीं कि तू सद्व्यवहार करे, इससे भी अधिक कृपा कर कि दूसरों द्वारा दिए गए दुख भी दूर हो जायँ। यह भी उद्देश्य हो सकता है कि दूसरों द्वारा दिए गए दुख इतने भरपूर हैं कि तू भी दुख ही दिए जा, कोई अंतर न पड़ेगा। अन्यत्र जफ़ाएँ भी बड़ी न्यामत मानी गई हैं :—

अब जफ़ा से भी हैं महरूम हम, अल्ला-अल्ला।
इस क़दर दुश्मने-अरबाबे-वफ़ा हो जाना॥

× × ×

अहले-हवस की फ़त्ह है तर्के-नबर्दे-इश्क़।
जो पाँव उठ गए, वही उनके अलम हुए॥

इश्क़—प्रेम के नबर्द—मैदान को तर्क—छोड़कर भाग जाना अहले—हवस—कामुक प्रेमियों की फ़तह—जीत है और जो भागने में उनके पैर उठते हैं, वे ही उनके अलम—फ़ौजी झंडे हैं।

छोड़ी 'असद' न हमने गदाई में दिल्लगी।
सायल हुए तो आशिक़े-अहले-करम हुए॥

गदाई—फ़क़ीरी में भी हमने दिल्लगी—दिल लगाने की आदत न छोड़ी। सायल—भिक्षुक हुए तो जो अहले-करम—दाता थे, कुछ दे देते थे उन्हीं पर आशिक़ होना शुरू कर दिया।

[८९]

कुल तीन शैर कहे हैं, जिस में पहला बहुत फ़ारसीमय है।

मुझे उस से क्या तवक्क़ो बज़मानए-जवानी।
कभी कूदकी में जिसने न सुनी मेरी कहानी॥

बज़मानए-जवानी—यौवनावस्था जब वह प्राप्त कर चुका है तब मुझे उस से क्या तवक्क़ो—आशा हो सकती है कि मेरी कहानी सुन लेगा, जिस ने कभी कूदकी—बाल्यावस्था या कमसिनी में ही सुनना स्वीकृत नहीं किया, जब भली-बुरी कोई भी कहानी सुनने का शौक़ रहता है। अर्थात् जैसे मेरा मिज़ाज लड़कपन से आशिक़ाना था, वैसे ही उसका भी कमसिनी से ही माशूक़ाना था।

युँही दुख किसी को देना नहीं ख़ूब, वर्ना कहता।
के मेरे उदू को या रब! मिले मेरी ज़िन्दगानी॥

युँही—व्यर्थ किसी को दुख देना ख़ूब—अच्छी बात नहीं है, वर्ना—अन्यथा मैं कहता कि या रब—हे भगवान मेरी ज़िन्दगानी—आयु मेरे उदू—प्रतिद्वन्दी को मिल जाय। मेरी आयु कितनी लंबी है वह मैं बिरही ही जानता हूँ, जिसे एक-एक क्षण सौ-सौ वर्ष के समान है। इतनी लंबी आयु किसी को दे देना तो बड़े पुण्य का काम है। पर उसमें इतनी विकराल ज्वाल है कि मैं दुश्मन को भी नहीं देना चाहता। यही वह पीड़ा है जिस के बारे में संसार कहता आया है कि दोस्त तो दोस्त, दुश्मन तक को न हो।

[९०]

महाकवि की यह ग़ज़ल बहुत प्रसिद्ध है। इस ज़मीन पर बाद में कई शायरों ने ग़ज़ले कही हैं—

हुस्ने-मह गरचे बहंगामे-कमाल अच्छा है।
उससे मेरा महे-खुरशीदे-जमाल अच्छा है॥

मह-चन्द्रमा का हुस्न—सौन्दर्य गरचे—यद्यपि बहंगामे कमाल—जब वह अपनी पूर्ण कलाओं से उदित होता है, तब अच्छा प्रतीत होता है, तथापि उससे मेरे मह-चन्द्रमा का सौंदर्य अच्छा है क्योंकि वह चन्द्रमा होते हुए खुर्शीदे-जमाल—सूर्य के समान चमकने वाला भी है।

यहाँ महाकवि ने केवल नवीनता के लिए चंद्र-सूर्य को एक कर दिया है। मुँह सूर्य के समान होगा तो देखेंगे कैसे? जहाँ छवि को चौंधिया देने वाली कहा जाता है वहाँ बिजली की चमक से तुलना की जाती है, सूर्य से नहीं यथा—

'इससे ज़ियादा और क्या ख़ूबिये–नक़्शे पा कहूँ
बर्क़-सी इक चमक गई आज सरे-नियाज़ में'

'असग़र' गोंडवी

उसके नक़्शे पा चरण-चिन्ह की ख़ूबी इससे अधिक क्या कहूँ कि जब मेरा सरे-नियाज़—श्रद्धालु माथा उसकी पूजा के लिए झुका तो मस्तिष्क में एक बर्क़—बिजली सी चमक गई।

जब चरण-चिन्ह ऐसे हैं तो चरण कैसे होंगे, मुख की तो बात ही छोड़ दीजिए। या तो यह अत्यधिक सूफ़ियाना (दार्शनिक) विचार है या केवल अतिशयोक्ति है

चौंधियाने को तो बिहारी ने क्या ख़ूब निबाहा है—

नेक हँसौंही बानि तज, लख्यौ परत मुख नीठि
चौंका-चमकनि-चौंधि से, परत चौंधि-सी दीठि ॥

हँसने की आदत छोड़। भला कौन अपनी प्रियतमा से ऐसा कहेगा? उस पर कारण यह कि हँसने से तेरा मुख फीका पड़ जाता है। साफ़ पिटने की बातें हैं, पर क्या निबाहा है—जब तू हँसती है तब तेरे दाँत दिखने लगते हैं, जो बिजली के समान चमक जाते हैं और इसीलिए मेरी आँखें चौंधिया जाती हैं और चौंधियाई दृष्टि के कारण तेरा मुख साफ़ नहीं देख सकता।

यह तो अलग बहस है, चंद्रमा को तो हमारे कवियों ने मुख-छवि से अनेक प्रकार मात दिलाई है: गोस्वामीजी—

जन्म सिन्धु, पुनि बन्धु विष, दिन मलीन, सकलंक।
सिय-मुख उपमा पाउ किमि, चन्द बापुरो रंक॥

जन्म सिन्धु और बन्धु विष का भाव तो मिर्ज़ा को अप्राप्य था पर दिन मलीन और सकलंक तो कह सकते थे। तब सूर्य-चन्द्र की भिड़ंत नहीं होती। सूर्य के प्रकाश में जब चन्द्र रहता है, तब बिलकुल फीका हो जाता है।

विद्यापति ठाकुर ने चन्द्र को चन्द्र—मुख से ही फीका कराया है—

तोहर बदन सम चाँद होअथ नहिं, जैयो जतन बिह केला।
कै बेरि काट बनाओल नव कम, तैयो तुलित नहिं मेला॥

तुम्हारे मुख के समान चन्द्र नहीं हो सकता। विधाता चाहे जितना यत्न कर ले। सच तो यह है कि बार-बार वह धीरे-धीरे चन्द्र की रचना करता है और पूर्णचन्द्र हो जाने पर जब देखता है कि तुम्हारे मुख से फीका ही रह गया तो उसे मेट देता है और फिर-फिर तुम्हारी टक्कर का बनाने का प्रयत्न करता है।

मिर्ज़ा कभी-कभी असंतुलित लिख जाते थे और लोग झल्ला पड़ते थे, जिसकी चर्चा पहले भी आ चुकी है। और शायद अपने फ़ारसी शैर में मिर्ज़ा ने दिन-मलीन और सकलंक की उपमा भी दी है। अन्य उर्दू कवियों ने भी दी है। स्थानाभाव के कारण उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

बोसा देते नहीं और दिल पे है हर लहज़ा निगाह।
जी में कहते हैं के मुफ़्त आये तो माल अच्छा है।

हर लहज़ा—हर क्षण। निगाह—दृष्टि। हास्य-रस है। तुम कुछ न दो और मुफ़्त दिल तुम्हारा हो जाय।

और बाज़ार से ले आये अगर टूट गया।
जामे-जम से मेरा ये जामे-सिफ़ाल अच्छा है॥

पहले कहा जा चुका है कि जम—बादशाह जमशेद के पास एक साग़िर-प्याला था जिसमें वे भूत, भविष्यत्, वर्तमान देख लेते थे। बड़े पुण्य—प्रताप से मिला होगा। अगर टूट जाता तो दूसरा मिलता या बनाया जा सकता, इस में सन्देह है। उससे अच्छा हमारा सिफ़ाल—मिट्टी का जाम—प्याला अच्छा

है। इधर टूटा, उधर दूसरा ख़रीद लिया। आशय हमारे संत कवियों के समान है कि फ़क़ीरी में जो सुख है वह अमीरी में नहीं है।

बेतलब दें तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है।
वो गदा, जिसमें न हो, ख़ूये-सवाल अच्छा है॥

बेतलब—बे माँगे; सिवा—अधिक; गदा—फ़क़ीर; ख़ूये-सवाल—माँगने की आदत, भिखमंगापन। क्या दें ? शायद शराब, शायद अपनी कृपा ! अपने मन से दें तो अधिक सुख मिले। इसलिये वह फ़क़ीर अच्छा है जिसमें माँगने की आदत न हो।

उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक़।
वो समझते हैं के बीमार का हाल अच्छा है॥

रौनक़ चमक। बहुत ख़ूब शैर है और बहुत साफ़ बयान है, पर महाकवि बिहारी ने इस भाव में और अधिक कमनीयता भर दी है—

जौ वा के तन की दसा, देखन चाहतु आपु।
तौ बलि, नेक विलोकिये, चलि औचक चुपचापु॥'

यदि उसकी असली हालत देखना चाहते हो तो बिना ख़बर दिए चुपचाप छिप कर देखो।

देखिये पाते हैं, उश्शाक़ बुतों से क्या फ़ैज।
इक बिरहमन ने कहा है के ये साल अच्छा है॥

उश्शाक़ आशिक़ का बहुवचन, बुत-मूर्ति भी, प्रेमिका भी या मात्र सुन्दरी भी, फ़ैज-सुख। हास्य-रस है। एक ब्राह्मण, जो ज्योतिषी भी है, ने यह कहा है कि यह साल प्रेमियों के लिये अच्छा है। आगे देखें कि प्रेमियों को क्या सुख मिलता है।

हम-सुख़न तेशे ने फ़रहाद को शीरीं से किया।
जिस तरह का के किसी में हो कमाल अच्छा है॥

लैला—मजनू की तरह शीरीं—फ़रहाद भी उदाहरणीय प्रेमी हैं, दोनों

दुखान्त। शीरीं राजकुमारी थी, फ़रहाद मज़दूर। शीरीं के पिता ने कहा कि अच्छा, फ़रहाद फ़लां जगह से फ़लां जगह तक एक नहर बना दे तो शीरीं उसे ब्याह दूँगा। वह कुदाली लेकर भिड़ पड़ा और ऐसा गुणी तथा परिश्रमी था कि नहर बना ली। इसी समय दुष्टों ने शीरीं से कह दिया कि फ़रहाद तो मर गया। उसने तुरन्त दम तोड़ दी। जब फ़रहाद को पता लगा कि शीरीं गई तो उसने भी कुदाल से सर फोड़ कर साथ दिया।

तेशे-कुदाली या फावड़े ने मज़दूर फ़रहाद को राजकुमारी शीरीं से हम-सुख़न—बातचीत करने का अवसर दिया। इससे प्रगट है चाहे मज़दूरी का ही गुण क्यों न हो, छोटे से छोटे गुण में यदि विशेष दक्षता प्राप्त कर ली जाय तो मनुष्य सम्मानीय हो जाय।

क़तरा दरिया में जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वो जिसका के मआ़ल अच्छा है॥

क़तरा-बिन्दु; दरिया-समुद्र; मआ़ल-अन्त।

बिन्दु को तो समाप्त होना ही है। सूख जायगा तो नष्ट हो जायगा। किसी तरह बह कर समुद्र में मिल जाय तो समुद्र का अंश बना रहेगा। मनुष्य को भी चाहिए कि वह नष्ट न हो कर परमात्मा का अंश बनने का प्रयत्न करे।

× × ×

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है॥

जन्नत—स्वर्ग, हक़ीक़त—वास्तविकता। स्वर्ग कहीं है या नहीं, यह वास्तविकता हम जानते हैं। ये ख़याल अर्थात् स्वर्ग की कल्पना जी के बहलाने का एक साधन-मात्र है, पर कल्पना है अच्छी। मिर्ज़ा ने धर्मान्धता पर जगह-जगह व्यंग किया है। उन्हीं में से एक यह भी है। एक जगह कहा है—

वाइज़ न तुम पियो न किसी को पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की॥

[६१]

न हुई गर मेरे मरने से तसल्ली, न सही।
इम्तेहाँ और भी बाक़ी हो, तो यह भी न सही॥

आशिक़ अधिक-से-अधिक क्या कर सकता है? अपने प्राण की आहुति दे सकता है। वह मैंने किया। मैं मर गया। फिर भी तुम्हें तसल्ली न हुई—तुम्हें संतोष नहीं हुआ कि मैं तुम्हारा सच्चा प्रेमी था और प्रेम के निर्वाह के लिये मैंने प्राण न्यौछावर कर दिए। न सही—नहीं हुआ संतोष; अच्छा माना कि नहीं हुआ संतोष। इम्तेहाँ—परीक्षा, मेरे प्रेम की, और भी बाक़ी हो—और भी रह गई हो, तो यह भी—मृत्यु की परीक्षा भी, न सही—अंतिम परीक्षा न मानो, और परीक्षा ले लो।

यह आपत्ति हो सकती है कि मृत्यु के बाद परीक्षा क्या और व्यक्ति जब मृत हो गया तो उसे परीक्षा का पता क्या? काव्य में मृत्यु के बाद अस्तित्व मान्य है। 'आई गवनवाँ की सारी, उमरि अब ही मोरी बारी' में कबीरदास जी ने मृत्यु के बाद अपनी स्थिति की कल्पना की है। मिर्ज़ा ने अनेक बार यह कल्पना की है, जैसे :—

यह लाश बेक़फ़न असदें ख़स्ता-जाँ की है।
हक़ मग़फ़रत करे, अजब आज़ाद मर्द था॥

मरने के बाद के, स्व० 'नसीम' रामपुरी के कुछ बहुत प्यारे शैरों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। उन से यह भी ज्ञात होगा कि मरने के बाद अच्छा-ख़राब क्या व्यवहार किया जा सकता है :—

'कहते हैं आ के मेरी क़ब्र पे किस नाज़ से वो।
तुझ को ले आऊँ कहाँ से, मेरे मरने वाले॥
यूँ मिटा दो के निशाँ तक न मिले फिर इस का।
कहते जाते हैं, मेरी क़ब्र बनाने वाले॥

हार फूलों का मेरी क़ब्र पे ख़ुद टूट पड़ा।
देखते रह गए, मुँह फेर के जाने वाले॥'

ख़ार-ख़ारे-अलमे-हसरते-दीदार तो है।
शौक़े-गुलचीने-गुलिस्ताने-तसल्ली, न सही॥

यह तसल्ली—संतोष कि गुलिस्ताँ—फुलवारी में गुलचीं—माली या फूल तोड़ने वाले का शौक़ पूरा कर लेते, नहीं हुआ तो न सही। दीदार—दर्शन की हसरत—इच्छा के अलम—दुःख के ख़ार-ख़ारे—काँटे तो हैं। यही क्या कम हैं! फूल और काँटों का क्या सुन्दर मेल है! उस्ताद 'जिगर' मुरादाबादी ने कहा है :—

'गुल्शन-परस्त हूँ, मुझे गुल ही नहीं अज़ीज़।
काँटों से भी निबाह किए जा रहा हूँ मैं॥'

एक गुल्शन-परस्त और है :—

'इहै आस अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
अइहैं फेरि बसंत-ऋतु, इन डारिन वै फूल॥'

मय-परस्ताँ! ख़ुमे-मय मुँह से लगाए ही बने।
एक दिन गर न हुआ, बज़्म में साक़ी, न सही॥

मय-परस्ताँ—हे शराब के पुजारियो, मय का ख़ुम—घड़ा मुँह से लगा कर पीने में ही कुशल है। एक दिन बज़्म—सभा में साक़ी, जो प्यालियाँ भर-भर के देता था, न हुआ तो न सही। घड़े से ही लग जाओ और डट कर प्यास बुझा लो। साक़ी के न होने से प्यासे लौट गए तो शराब के पुजारी क्या कहलाए! हास्य है। ऐसी मान्यताएँ अधिक प्रबल हैं कि साक़ी ही सर्वस्व है; शराब तो साक़ी के दरस-परस का बहाना-मात्र है।

नक़्से क़ैस—के है चश्मो-चिराग़े-सेहरा।
गर नहीं शमअ़ सियहख़ानये लैली, न सही॥

क़ैस—मजनू की नफ़स—प्रत्येक साँस क्या है—सेहरा—जंगल या वीराने की चश्म और चिराग़ है—आँख और दीपक है। यदि वह अर्थात् मजनू की साँस या आत्मा लैली के सियहख़ाने—शयन भवन की शमअ़—दीपिका नहीं है, तो न सही। इतने बड़े जंगल या वीराने की ज्योति तो है।

एक हंगामे पे मौक़ूफ़ है घर की रौनक़।

नोहए-ग़म ही सही, नग़मए शादी न सही॥

घर की रौनक़—ख़ूबसूरती एक हंगामे—चहल—पहल पर मौक़ूफ़—निर्भर है। चहल—पहल रहे तो घर आबाद, न रहे तो बर्बाद। ग़म—दुख का नोहा—शोक-गीत ही सही। इस से भी तो चहल-पहल बनी रहती है। कोई मर जाता है तो अनेक लोग समवेदना के लिये आते-जाते हैं। कोई रोता-पीटता है, तो मनाने-समझाने को आते-जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि शादी—विवाह या खुशी के नग़मे—गीत गाए जा रहे हों तभी घर में चहल-पहल हो। तात्पर्य यह कि ज्ञानी के लिये सुख-दुख बराबर हैं।

न सिताइश की तमन्ना, न सिलअ़ की परवा।

गर नहीं हैं मेरे अशआ़र में मानी, न सही॥

न सताइश—प्रशंसा की तमन्ना—चाह है, न सिलअ़—पुरस्कार की परवाह है। मेरे अशआ़र—शैरों में मानी—अर्थ नहीं है, तो न रहने दो।

मिर्ज़ा के शैरों को क्लिष्ट या अर्थविहीन कहा जाता था। यहाँ तक कि एक कवि-सम्मेलन में उन पर व्यंग किया गया था। 'मगर इन का कहा ये आप समझें, या खुदा समझे।' ऐसे ही व्यंगों का उपरोक्त शैर उत्तर है। अन्यत्र "गोयम मुश्किल वगर्ना गोयम मुश्किल' रुबाई भी देखिए। परंतु यथार्थ बात यह है कि मिर्ज़ा 'मास्टर' थे; उनके लिये कठिन-सरल सब पानी था; जैसा कि इस टीका की ग़ज़लों से प्रमाणित होगा।

इशरते-सोहबते—ख़ूबाँ ही ग़नीमत समझो।

न हुई 'ग़ालिब' अगर उम्र-तबीई, न सही॥

प्रेमी विरह—ज्वाल से अकाल में ही काल-कवलित हो जाता है। उसे उम्र-तबीई—पूरी आयु नहीं मिलती। उसे इस का दुख नहीं होना चाहिए। यही ग़नीमत—बहुत समझना चाहिए कि पूरी आयु के बदले थोड़े दिनों तक उसे ख़ूबाँ—सुन्दरियों की सोहबत—संगति का इशरत—सुख तो मिल गया।

[६२]

हरेक बात पे कहते हो तुम के 'तू क्या है?'
तुम्हीं कहो के ये अंदाज़े-गुफ्तगू क्या है॥

मेरे मुँह से इधर कोई बात, चाहे वह अच्छी हो या ख़राब, निकली नहीं कि उधर तुम कहने लगते हो—'तू क्या है?'—'तू अपने को समझता क्या है?' तुम्हीं बताओ कि यह अंदाज़े-गुफ़्तगू—वार्तालाप का ढंग जो तुमने अपनाया है क्या है—क्या कोई अच्छा ढंग है! माना कि मैं कुछ भी नहीं; पर यह अशिष्ट व्यवहार क्या तुम्हें शोभा देता है?

अन्यत्र माशूक़ के एक और अंदाज़े—गुफ़्तगू की शिकायत की है :—

बेनियाज़ी हद से गुज़री, बंदापरवर, कब तलक।
हम कहेंगे हाले-दिल और आप फ़र्माएँगे—'क्या?'

न शोला में ये करिश्मा, न बर्क़ में ये अदा।
कोई बताओ के वो शोख़, तुन्दख़ू क्या है?

वह शोख़ है, चंचल है। बर्क़—बिजली भी चंचल होती है। मैं कहूँ वह बिजली है। पर बिजली में उसकी अदाएँ—ये भाव-भंगिमाएँ कहाँ हैं! वह तुन्दख़ू—तेज़ मिज़ाज वाला है, गर्म मिज़ाज वाला है। इसलिये यदि मैं कहूँ वह शोला—आग है, तो आग में यह करिश्मा—चमत्कार कहाँ है, जो मेरे माशूक़ में है। तब कोई बताओ कि उसकी उपमा मैं किससे दूँ!

× × ×

× × ×

जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा।
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है?

जिस्म—शरीर जल गया। दिल शरीर के भीतर ही तो था। वह भी जल गया होगा। अब राख कुरेद कर—खोद कर क्या ढूँढ रहे हो? दिल ऐसा ही प्यारा था, तो जिस्म को नहीं जलाना था। अब आपको किसकी जुस्तजू या तलाश है?

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल।
जब आँख ही से न टपका, तो फिर लहू क्या है॥

रगों—नसों में जो लहू दौड़ता फिरता है उसके हम क़ायल नहीं—उसे हम लहू नहीं मानते। सबकी नसों में दौड़ता-फिरता है। लहू जो पानी (आँसू) बनकर आँख से टपके, वही यथार्थ में रक्त है। इशारा यह है कि लहू को पानी करना हम प्रेमी ही जानते हैं।

वो चीज़ जिसके लिये हमको हो बहिश्त अज़ीज़।
सिवाय बादए-गुलफ़ामे-मश्क़े-बू, क्या है॥

हमें बहिश्त—बैकुण्ठ, अज़ीज़—प्यारा है। किसलिये? केवल एक चीज़ के लिए कि वहाँ गुलफ़ाम—गुलाब के रंग की और मश्क़—अंबर के बू—सुगंध की शराब (बादा) मिलेगी। केवल एक इसी चीज़ के लिये बैकुण्ठ प्यारा है, अन्य किसी वस्तु के लिए नहीं।

पिऊँ शराब अगर खुम भी देख लूँ दो-चार
ये शीशाओ, क़दहो, कूज़ओ, सुबू क्या है॥

न सही शराब का समुद्र, नदी या झरना; दो-चार ख़ुम—मटके शराब से भरे हुए भी देखूँ तो फिर पियूँ। ये शीशा, क़दह, कूज़ा और सुबू, जो शराब पीने के छोटे-छोटे बर्तन हैं, दिखा कर मुझे भला क्या पीने का लालच दे सकोगे ? ये मुझ से पियक्कड़ के लिये क्या हैं, कुछ भी नहीं।

रही न ताक़ते-गुफ़्तार और अगर हो भी।
तो किस उमीद पे कहिए के आरज़ू क्या है॥

गुफ़्तार—वार्तालाप की ताक़त—शक्ति ही नहीं रह गई और यदि थोड़ी बहुत हो भी तो किस उमीद—आशा से कहें कि हमारी आरज़ू—इच्छा क्या है। ज़िंदगी भर इच्छा पूरी नहीं की, अब क्या करोगे।

हुआ है शह का मुसाहिब, फिरे है इतराया।
वगर्ना शह्र में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है॥

कहते हैं एक दिन मिर्ज़ा घूमने निकले। रास्ते में बादशाह के उस्ताद ज़ौक़ बड़े ठाठ-बाट से पालकी पर जाते हुए दिखे। कुछ लाग-डाँट तो थी ही। तत्काल पहला मिसरा पढ़कर उन पर कटाक्ष किया कि बादशाह का मुसाहिब—दर्बारी हो गया है, इसलिये इतराता फिर रहा है। उन्होंने बादशाह से शिकायत कर दी। बादशाह ने मिर्ज़ा से कैफ़ियत माँगी तो दूसरा शैर कहकर पहिले को अपने आप पर ही लागू कर लिया कि शहर में 'ग़ालिब' की आबरू—इज़्ज़त ही क्या है, वह तो बादशाह का दर्बारी हो गया है, इसलिये इतराता फिरता है।

[६३]

मैं उन्हें छेड़ूँ और कुछ न कहें।
चल निकलते जो मय पिए होते॥

मैं उनसे छेड़ख़ानी करूँ और वे चुपचाप रह जायँ, यह तभी सम्भव है जब वे शराब पिए हुए न हों। यदि पिए होते तो चल निकलते—एक की चार सुनाते।

क़हर हो या बला हो जो कुछ हो।
काश के तुम मेरे लिए होते॥

काश के—यदि ऐसा होता कि तुम एकमात्र मेरे लिए ही होते—मुझसे ही सम्पर्क-सम्बन्ध रखते, तो मुझे कोई आपत्ति न होती कि तुम क़हर हो—वज्र हो या बला—विपत्ति हो या चाहे जो कुछ हो। पर तुम तो अपने फन्दे चारों तरफ फैलाए रखते हो।

मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था।
दिल भी या रब ! कई दिए होते॥

ग़म—दुख तो मेरे भाग्य में इतना पहाड़-सा दे दिया और दिल टुटरूँ—टूँ, एक। वह बेचारा कहाँ तक सहे। दिल भी कई दिए होते तो दुख का अनुपात ठीक बैठता। महाकवि 'मीर' का शैर है :—

'काश के दिल दो तो होते इश्क़ में।
एक रखते एक खोते इश्क़ में॥'

आ ही जाता वो राह पर 'ग़ालिब'।
कोई दिन और भी जिये होते॥

राह में आ जाता—तुम्हारा मनचाहा करने लगता यदि तुम थोड़े दिन और जीते। तुमने तो जान देने में बड़ी उतावली कर दी।

[९४]

ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के।
हम रहें यों तिश्नालब पैग़ाम के॥

ग़ैर—प्रतिद्वंदी तुम्हारी महफ़िल में बैठ कर जाम—प्याले के बोसे—चुम्बन लें अर्थात् आनन्द से शराब पिएँ और हम इतने गए-गुज़रे हो गए कि तिश्नालब—प्यासे बैठे रहें; पैग़ाम—संदेश तक के लिए कि अमुक दिन आ

जाना; हमारे यहाँ काकटेल पार्टी है। उनके तो ओंठ आनन्द मना रहे हैं और हमारे कान तक तरस रहे हैं, निमंत्रण के लिये।

× × ×

खत लिखेंगे गरचे मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नाम के॥

इसकी कोई परवाह नहीं कि जो पत्र लिखेंगे उनमें कुछ लाभ की या स्वार्थ की बात भी होगी या नहीं, अर्थात् उनमें कुछ प्रेम-निवेदन भी होगा या नहीं। हमको तो मात्र तुम्हारे नाम से इतना प्रेम हो गया है कि उसी को बार-बार लिखकर सब कुछ मिल जाता है। पत्र में जो तुम्हारा नाम लिखते हैं, वही हमारे लिये सब कुछ है। केवल इसीलिये पत्र पर पत्र लिखते रहेंगे।

हिन्दी-कविता में नाम की महिमा अपार है। कबीरदास जी की ही कुछ साखियाँ लीजिए—

नाम पियू को छोड़ि कै, करै आन को जाप।
वेश्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप॥
सपने में बरराय कै, धोखे निकरै नाम।
वाके पग की पानही, मेरे तन को चाम॥
लूट सकै तो लूट ले, राम नाम की लूट।
फिर पाछे पछतायगा, प्रान जायँगे छूट॥

और नाम के महात्म्य की पराकाष्ठा यह है :—

'उल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भे ब्रह्म समाना॥

× × ×

दिल को आँखों ने फँसाया, क्या मगर।
ये भी हल्क़े हैं तुम्हारे दाम के॥

आँखों ने देखा, तभी तो मन बंधन में पड़ा। जैसा बिहारी कहते हैं— 'लगा-लगी लोचन करैं, मन नाहक बँधि जाय।' तो क्या मगर—शायद ये

आँखें मेरी होते हुए भी यथार्थ में तुम्हारे दाम—जाल के हल्क़े—फन्दे हैं ? "शायद' के अर्थ में 'मगर' का उपयोग मिर्ज़ा ने कई बार किया है।

× × ×

इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया।
वर्ना हम भी आदमी थे काम के॥

इस प्रेम के रोग ने हमको बिलकुल निकम्मा—बेकाम का कर दिया, वर्ना—अन्यथा हम भी आदमी काम के थे, उपयोगी थे।

[६५]

वसंत की शोभा पर कवियों ने क्या-क्या कुछ नहीं लिखा है परन्तु "कहते हैं के ग़ालिब का है कुछ तर्ज़े-बयाँ और।'

फिर इस अंदाज़ से बहार आई।
के हुए मेहरो-मह तमाशाई॥

ऐसे ठाठ से बसंत आया है कि मेहरो-मह—सूर्यचंद्र उसके तमाशाई—दर्शक बन गए हैं।

देखो ऐ साक़िनाने-ख़ित्तये-ख़ाक।
इसको कहते हैं आलम-आराई॥

ऐ ख़ित्तये-ख़ाक—संसार के, साक़िनान—वासियो, रहने वालो देखो ! इसको कहते हैं आलम-आराई—प्रकृति का सुसज्जित हो जाना, अपने आपको अलंकृत कर लेना। इशारा यह है कि तुम भी तो अपना-अपना शृंगार करते हो; भला बन पाते हो इतने सुन्दर ? यदि नहीं, तो देखो और प्रकृति से सुन्दर बनना सीखो, जैसा शकुन्तला के बारे में मैथिलीशरण जी गुप्त कहते हैं :—

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था।
शीतल और सुगंध पवन से मन्द विचरना सीखा था।

आश्रम के उन्नत विटपों से पर-हित करना सीखा था।
होम-शिखा से सद्भावों को जग में भरना सीखा था॥

के ज़मीं हो गई है सर-तासर।
रूकशे सितअ़् चर्ख़े-मीनाई॥

कि ज़मीं—पृथ्वी, सर-तासर—सिर से पैर तक ऐसी हो गई है जैसे वह सितअ़्—समतल या समस्त चर्ख़—आकाश को, जो मीनाई है, जड़ाऊ और रंगीन कटोरे के समान है (उमर ख़य्याम ने उसे उल्टा हुआ कटोरा कहा है) रूकश—मुँह चिढ़ाने वाली हो। आकाश नित नए रंग धारण करने वाला कहा गया है पर वसंत में हमारी पृथ्वी ने जो रंग धारण किये हैं, उनके सामने उसके सब रंग मात हैं; जैसे वसंत के फूलों के सामने आकाश के जड़ाऊ फूल या तारक-कुसुम भी मात हैं।

सब्ज़े को जब कहीं जगह न मिली।
बन गया रूये-आब पर काई॥

स्वाभाविक वस्तु के लिये कारण-विशेष उपस्थित कर देना बड़ा भारी काव्य-सौंदर्य है। हाथी के दो दाँत स्वाभाविक रूप से बाहर निकले रहते हैं। कवि ने कारण-विशेष बतला दिया :—

'बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़।
या ते हाथी हहरि कै रह्यौ दंत द्वय काढ़॥'

इसी तरह मिर्ज़ा कहते हैं कि रूये-आब पानी के ऊपर (मुखाकृति पर) जो यह काई जम गई है, वह काई नहीं है। वसंत अपने साथ इतना सब्ज़ा, इतनी हरियाली लाया कि सब ज़मीन भर गई, फिर भी हरियाली बच रही, तो बिचारी ने पानी का आश्रय ढूँढ़ काई का रूप ले लिया।

सब्ज़ओ-गुल को देखने के लिये।
चश्मे-नरगिस को दी है बीनाई॥

नरगिस एक पीला फूल है। आँख की उपमा नरगिस से दी जाती है। नरगिस में स्वयं एक विशेषता है। वह स्वयं आँख वाला फूल है। बाक़ी सब

फूल सूरदास हैं। मिर्ज़ा कहते हैं चश्मे-नरगिस—नरगिस की आँख को बीनाई—देखने की शक्ति ईश्वर ने इसलिये दी कि वह सब्ज़ओ-गुल—हरियाली और फूल को देख ले। देखकर क्या करे? गवाह रहे। कैसा गवाह रहे—चश्मे-दीद ख़ुद अपनी आँखों से देखा है, ऐसा गवाह; जो जब शीत या ताप से हरियाली और फूल झुलस या सूख जायँ, दुनियाँ तड़पने लगे तो कह सके—'अइहैं फेरि बसंत ऋतु इन डारिन वे फूल।' मैंने देखा है, ख़ुद; इन्हीं आँखों से।

है हवा में शराब की तासीर।
बादानोशी है बादा - पैमाई॥

वासंती हवा में शराब की तासीर—गुण अर्थात् मादकता है। इसलिये इस ऋतु में बादानोशी—शराब पीना, बादा पैमाई है—व्यर्थ है, फ़िज़ूल है। बादा-पैमाई का एक अर्थ है हवा को नापना। कभी किसी बुज़ुर्ग ने यह रोग पाल लिया था पर भला कहीं हवा भी नपी है? इसलिये बादा-पैमाई व्यर्थ की झंझट है। दूसरा अर्थ है हवाख़ोरी या वायुसेवन। अर्थात् वसंत ऋतु में वायुसेवन के लिये निकल जाना ही मद्यपान के तुल्य है।

× × ×

[६६]

कब वो सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वो भी—ज़बानी मेरी॥

इतने सरल शब्दों में इतना सुन्दर भाव व्यक्त कर देने के लिये मिर्ज़ा की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। मेरी कहानी यदि कोई दूसरा भी उसे सुनाना चाहेगा तो वह नहीं सुनेगा; मेरे मुँह से सुनने की बात तो दूर रही।

प्रेमी या भक्त को अपने आराध्य को अपना हाल सुनाने-सुनवाने की बड़ी आकांक्षा रहती है। गोस्वामी जी ने जानकी जी द्वारा भी अपना हाल सुनवाया है—'कबहुँक अब अवसर पाय। मेरीऊ सुधि द्यायबी कछु करुण कथा सुनाय।'

ओर रामचन्द्रजी से भी कहा है—'विनय-पत्रिका दीन की बापु आपुही बाँचो।' यह उत्सुकता या विह्वलता क्यों? प्रेमी या भक्त को विश्वास है कि यदि वह अपनी दशा ठीक प्रगट कर या करा सके, तो प्रिय या आराध्य उससे अवश्य प्रसन्न हो जायगा।

× × ×

क्या बयाँ करके मेरा रोएँगे यार।
मगर आशुफ़्ता-बयानी मेरी॥

मरने पर मरने वाले के गुण बखान कर, यार—मित्र रोते हैं;—बड़ा प्रेमी था, विद्वान था, आदि। मेरे किस गुण का बयान करेंगे? मुझमें तो कोई गुण था नहीं। मगर यहाँ फिर शायद के अर्थ में आया है। शायद मुझ में एक गुण या अवगुण था—आशुफ़्ता—बेचैनी से भरे, बयान—शैर कहने का, उसकी ही याद करके;—मेरे 'प्रेम लपेटे अटपटे' वचनों की याद करके रोएँ तो रोएँ।

× × ×

कर दिया ज़ौफ़ ने आजिज़ 'ग़ालिब'।
नंगे-पीरी है जवानी मेरी॥

ज़ौफ़—कमज़ोरी ने मुझे आजिज़—परेशान कर दिया है। मेरी जवानी की कमज़ोरी इतनी अधिक है कि पीरी—बुढ़ापे की कमज़ोरी भी उसके सामने नंग—लज्जित हो जाय।

[९७]

जिस ज़ख़्म की हो सकती हो तदबीर रफ़ू की।
लिख दीजियो, या रब! उसे क़िस्मत में उदू की॥

जिस ज़ख़्म—घाव का रफ़ू—सियन, मरहम-पट्टी आदि से इलाज (तदबीर) हो सकता हो, हे भगवान ऐसे घाव को उदू—प्रतिद्वन्दी के भाग्य (क़िस्मत) में लिख देना। मैं मामूली नहीं, वह 'लागी' चाहता हूँ कि—

लागी, लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी तब ही जानिए जब आर पार हो जाय ॥ कबीर ॥

अच्छा है सर-अंगुश्त हिनाई का तसव्वर।
दिल में नज़र आती तो है एक बूँद लहू की ॥

दूसरे मिसरे के 'तो' शब्द से इस शैर का अर्थ खुलता है। हिनाई—मेंहदी लगी, अंगुश्त—अँगुली के सर—सिरे या पोर का तसव्वर—ध्यान अच्छा है—बड़ी बात है। मैं इतना खून रो चुका हूँ कि अब दिल में एक बूँद भी शेष नहीं। मेंहदी लगी अँगुली का लाल पोर जब ध्यान में आता है 'तो' केवल वह दिल में एक बूँद रक्त का आभास दे जाता है।

क्यों डरते हो उश्शाक़ की बेहौसलगी से।
याँ तो कोई सुनता नहीं फ़रियाद किसू की ॥

उश्शाक़—आशिक लोग, आज कल के यदि बेहौसला—बेहिम्मत क़िस्म के हैं तो तुम डरते क्यों हो? यही न कि वे तुम्हारे अत्याचारों की शिकायत हाकिम या ईश्वर से कर देंगे और तुम्हें दंड मिलेगा। मत डरो। यहाँ—इस संसार में कोई किसी (किसू) की फरियाद—प्रार्थना या शिकायत नहीं सुनता। जैसे आज-कल के प्रेमी हैं, वैसे हाकिम हैं और वैसा ही ईश्वर भी है। 'तुम आनंद करहु मनभाए।'

दश्ना ने कभी मुँह न लगाया हो जिगर को।
ख़ंजर ने कभी बात न पूछी हो गुलू की ॥

उस अभागे प्रेमी की दशा क्या कहिए जिसके जिगर को कभी दश्ना—छुरी ने मुँह न लगाया हो—घायल न किया हो और जिसके गले (गुलू) को कभी ख़ंजर—कटार ने न काटा हो—बात न पूछी हो। आगे कहते हैं कि ऐसे अभागे प्रेमी हमी हैं।

सद हैफ़ वो नाकाम—के इक उम्र से 'ग़ालिब'।
हसरत में रहे एक बुते-अ़रबदे—जू की ॥

सदहैफ़—हा हन्त कि इक उम्र-आजीवन नाकाम—असफल 'ग़ालिब' यह

चाहते रहे, हसरत करते रहे कि एक अ़रबदे-जू—युद्ध-निपुण, बुत-प्रेमिका मिल जाय, जो छुरी-कटार से उनके टुकड़े कर दे—मगर मिली नहीं।

[६८]

चाहिए अच्छों को, जितना चाहिए।
ये अगर चाहें, तो फिर क्या चाहिए॥

जितना चाहिए—जितना तुम्हारे जी में आवे उतना अच्छों को—हसीनों को चाहो और बदले में वे भी अगर तुम्हें चाहने लगें तो फिर क्या चाहिए—फिर कहना ही क्या है।

× × ×

चाहने को तेरे क्या समझा था दिल।
बारे, अब उससे भी पूछा चाहिए॥

तुमसे प्रेम क्या समझ कर किया था दिल ने—खेल ? बारे—एक बार उससे भी अब पूछना चाहिए कि क्यों हज़रत ! यह खेल कैसा रहा ? भर पाया या अभी कुछ और ?

× × ×

दोस्ती का परदा है बेगानगी।
मुँह छिपाना हम से छोड़ा चाहिए॥

जो बेगाना—ग़ैर है उससे इसलिये पर्दा किया जाता है कि दोस्त नहीं है। हम तो कोई ग़ैर नहीं। हमसे क्या मुँह छिपाना ? दूसरा अर्थ यह है हम तुम्हारे सामने आते हैं तो तुम तुरन्त परदा कर लेते हो। इससे तो सब लोग जान जाते हैं कि तुम हमें अपना आशिक़ मानते हो। बेगाना मानते तो पर्दा न करते। सच बात यह है कि हममें तुममें दोस्ती तो है—तुम माशूक़ हो हम आशिक़ हैं। इस पर इस तरह परदा डालो कि ऊपरी तौर से हमें बेगाना—ग़ैर मानो और हम से मुँह छिपाना छोड़ दो !

दुश्मनी ने मेरी खोया ग़ैर को।
किस क़दर दुश्मन है ? देखा, चाहिए ॥

ग़ैर—प्रतिद्वन्दी मेरी दुश्मनी के कारण अपने आप खो गया। रात-दिन मुझ से बैर भँजाने की चिन्ता करने लगा। जिस माशूक़ के कारण दुश्मनी है, उस तक को भूल गया, इतना खो गया। देखो तो वह कितना तगड़ा दुश्मन है!

× × ×

मुनहसर मरने पे हो हो जिसकी उमीद।
नाउमीदी उसकी देखा चाहिए।

जिसकी एक मात्र आशा मर जाने पर ही मुनहसर—निर्भर हो और न मरे तो उसकी नाउमीदी—निराशा का क्या वर्णन किया जाय।

ग़ाफ़िल इन मह-तलअ़तों के वास्ते।
चाहने वाला भी अच्छा चाहिए ॥

ग़ाफिल—मूर्ख इन मह-तलअ़तों—मयंकमुखियों के लिये चाहने वाला भी अच्छी सूरत—शक़्ल का होना चाहिए। आगे के शैर में खुद पर व्यंग किया है।

चाहते हैं ख़ूबरूयों को 'असद'
आपकी सूरत तो देखा चाहिए ॥

'असद' ख़ूबरूयों—सुन्दरियों—को चाहते हैं। ज़रा उनकी शक़्ल तो देखना। यह मुँह और मसूर की दाल ? यह तो मज़ाक़ है। मिर्ज़ा का व्यक्तित्व बहुत भव्य था, कविता-पाठ भी बहुत मनोमुग्धकारी था।

[६६]

नुक्ताचीं हैं, ग़मे-दिल उनको सुनाए न बने।
क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने ?

भाव यह है कि वे बड़े नुक्ताचीं हैं, बात-बात में नुक़्स निकालते हैं। उदाहरण के लिए यदि मैं उनसे निवेदन करूँ कि प्रेम की पीड़ा से व्याकुल हूँ, तो वे ऐसी जिरह करेंगे, ऐसी बाल की खाल निकालेंगे कि मुझे मान जाना पड़ेगा कि मैं प्रेम की पीड़ा से व्याकुल नहीं हूँ। भला ऐसे से कोई क्या बात करे और करे भी तो क्या बात बने, जब बात बनाने ही नहीं देते।

मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जज़्बए-दिल।
उस पे बन जाय कुछ ऐसी कि बिन आए न बने॥

हे मेरे जज़्बए-दिल, हृदय के भाव तब तारीफ़ है जब तुम उस पर ऐसा गहरा असर करो कि उससे आते ही बने।

खेल समझा है कहीं छोड़ न दे, भूल न जाए।
काश यूँ भी हो के बिन मेरे सताए न बने॥

काश, यदि ऐसा हो जाय कि बिना मुझे सताए उसे चैन ही न आए, तो कैसा अच्छा हो जाय। खेल समझ मुझे छोड़ दिया तो मर जाऊँगा।

ग़ैर फिरता है लिये यूँ तेरे ख़त को के अगर।
कोई पूछे के ये क्या है तो छिपाए न बने॥

ग़ैर यानी रक़ीब यानी प्रतिद्वंदी। मेरा प्रतिद्वंदी लाख तुझे प्रिय क्यों न हो, तू यह थोड़ी चाहेगा कि तू उसके द्वारा बदनाम हो जाय। तूने ख़त लिख दिया, अच्छा किया। उसे तो ख़त ज़रा छिपाकर रखना चाहिए।

इस नज़ाकत का बुरा हो वो भले हैं तो क्या।
हाथ आवें तो उन्हें हाथ लगाए न बने॥

हमारे कठोर हाथ के लगने से कहीं टूट-फूट न जायँ—हद है नज़ाकत की!

कह सके कौन कि ये जल्वागिरी किसकी है।
पर्दा छोड़ा है वो उसने के उठाए न बने॥

जल्वा, सौंदर्य और जल्वागिरी सौंदर्य का प्रदर्शन है। ये चाँद, तारे, सूरज, पहाड़, समुद्र या पूरा ब्रह्माण्ड किस के सौंदर्य का प्रदर्शन है, यह कौन बतलाए?

उसने माया का ऐसा पर्दा छोड़ा है कि उसका सब कुछ दिखते हुए भी, वह नहीं दिखता। वह पर्दा उठाये नहीं उठता या हटाए नहीं हटता।

मौत की राह न देखूँ के बिन आए न रहे।
तुमको चाहूँ कि न आओ तो बुलाए न बने॥

मौत की राह देखना न देखना बराबर है। वह तो आएगी ही। एक आप ऐसे हैं कि हिम्मत कर जाएँ कि न आओ, न बुलाएँ, तब भी बिना बुलाए नहीं रहा जाता—चाहे फिर आएँ या न आएँ।

बोझ वो सर से गिरा है के उठाए न उठे।
काम वो आन पड़ा है के बनाए न बने॥

इशारा ज़िन्दगी के बोझ से है जो अब उठाया नहीं जाता और इसलिए कोई काम ही नहीं सधता।

इश्क़ पर जोर नहीं, है ये वो आतिश 'ग़ालिब'।
के लगाए न लगे और बुझाए न बने॥

इश्क़ वह आतिश अर्थात् आग है जो किसी की आज्ञा के आधीन नहीं है कि जब चाहो लगालो, जब चाहो बुझा दो।

[१००]

वो आ के ख़्वाब में तस्कीने-इज़्तेराब तो दे॥
वले मुझे तपिशे-दिल मजाले-ख्वाब तो दे॥

वह—प्रियतमा ख़्वाब—स्वप्न में आकर इज़्तेराब—बेचैनी को तस्कीन तो दे—हलका तो करे, वले—परन्तु दिल की तपिश—आग मुझे स्वप्न देखने का मजाल—साहस तो दे। विरहाग्नि जब सोने ही नहीं देती तो स्वप्न कहाँ से देखूँ!

करे है क़त्ल लगावट में तेरा रो देना।
तेरी तरह कोई तेग़े-निगह को आब तो दे॥

आब देना अर्थात् पानी चढ़ाना अर्थात् धार को तेज़ करना।

लगावट—प्रेम में तेरा रो देना मुझ को क़त्ल करता है—मार डालता है। तेरी आँखों के आँसू तलवार की तरह चमकते हैं और वार करते हैं। और कोई निगह—चितवन की तेग़—तलवार पर इस तरह पानी नहीं चढ़ा सकता। तात्पर्य यह है कि तेरे प्रेम करने पर भी मैं तड़पता ही रहता हूँ; मेरा भाग्य ही ऐसा है, तेरा प्रेम ही ऐसा है।

दिखा के जुम्बिशे-लब ही तमाम कर हम को।
न दे जो बोसा तो मुँह से कहीं जवाब तो दे॥

बोसा—चुम्बन नहीं देता, न दे। मुँह से इंकार तो कर दे। इंकार करेगा तो लब—ओंठों में जुम्बिश—फड़कन आएगी। ओठों की फड़कन से ही हमारा काम तमाम हो जायगा, उस सुन्दरता से ही प्राणान्त हो जाएगा। कम-से कम ओंठ तो हिला दे।

पिला दे ओक से साक़ी, जो हम से नफ़रत है।
पियाला गर नहीं देता, न दे,—शराब तो दे॥

ऐ साकी यदि हम से नफ़रत—घृणा है और इसलिये तू हमें प्याला भर-भर के नहीं देना चाहता, तो न दे। ला, हमें हमारी ओक—चुल्लू से ही पिला दे। प्याले से इंकार कर, शराब से तो न कर।

'असद' ख़ुशी से मेरे हाथ-पाँव फूल गए।
कहा जो उसने-ज़रा मेरे पाँव दाब तो दे॥

हाथ-पाँव फूल जाना अर्थात् बेकाम हो जाना। फिर वही भाव है कि उसने तो पाँव दबाने की आज्ञा देकर बड़ी कृपा की पर मैं ही कुछ ऐसा घबरा गया कि कृपा का लाभ, जिस तरह चाहिए, न उठा सका अर्थात् थथर-मथर करने लगा।

[१०१]

फ़रियाद की कोई लय नहीं है।
नाला पाबन्दे-नय नहीं है॥

फ़रियाद—प्रार्थना या विनय करने के लिये कोई लय—धुन या राग की आवश्यकता नहीं है और न नाला—रुदन किसी नय—बाँसुरी का पाबन्द है—अपेक्षा करने वाला है। तात्पर्य यह है कि हृदय से प्रार्थना की जाय या आंतरिक पीड़ा से रोया जाय, इतना ही काफ़ी है।

क्यों बोते हैं बाग़बाँ तूम्बे।
गर बाग़ गदाए-मय नहीं है॥

तूम्बे के कई उपयोग हैं। मदारी उससे बाजा बनाता है। साधू पानी रखता है। सींग और तूम्बों में शराब भी रखी जाती थी; आदिम जातियाँ अब भी रखती हैं। कहते हैं कि यदि बाग़ मय—शराब का गदा—भिखारी नहीं है तो बाग़बाँ—माली तूम्बे-लौकी के बीज क्यों बोते हैं? बग़ीचा फ़क़ीरों के समान तूम्बे लेकर वसंत ऋतु के सौंदर्य की भीख माँगता है, जिसमें शराब की सी मस्ती है।

हर चीज़, हरेक शै में तू है।
पर तुझ-सी तो कोई शै नहीं है॥

दार्शनिक भाव है कि तू तो हर चीज़, हर वस्तु में है पर कोई चीज़, कोई वस्तु तुझ-सी अर्थात् तू नहीं है।

हाँ, खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती।
हरचन्द कहें के 'है'—'नहीं है'॥

हस्ती—जीवन का फ़रेब—धोखा न खा जाना। हरचन्द—बार-बार कहें—दुनिया वाले विश्वास दिलायें कि 'है'—जीवन की स्थिति है, तुम मत मानना;

क्योंकि 'नहीं है'—जीवन की स्थिति नहीं है। जो प्रतिक्षण लय की ओर जा रहा है उसकी स्थिति क्या !

× × ×

क्यों रद्दे-क़दह करे है ज़ाहिद।
मय है, ये मगस की क़ै नहीं है॥

ज़ाहिद—मूर्ख क्यों क़दह—प्याले को रद्द—अस्वीकृत करता है। अरे ! इस प्याले में मय—शराब है—वह शहद नहीं है जिसकी लालच तुझे यहाँ और स्वर्ग में भी है परन्तु यथार्थ में जो मगस—मधुमक्खी की क़ै—कय, उल्टी, उछाट है। मधुमक्खियाँ फूलों का मधु चूसती हैं, पेट में एकत्र करती हैं। छत्ते पर लौटकर जितनी शरीर को आवश्यक है, पेट में रखती हैं, बाक़ी मुँह के रास्ते उगल कर अपने घरों में जमा कर देती हैं। जब पतझड़ के दिन आते हैं, फूलों का खिलना समाप्त हो जाता है या जब हवा-पानी, बर्फ़-तूफ़ान के कारण वे बाहर नहीं जा सकतीं, तब उसी जमा की हुई मधु से अपना जीवन-यापन करती हैं।

हस्ती है न कुछ अदम है 'ग़ालिब'।
आख़िर तू क्या है 'ऐ नहीं है॥'

न हस्ती—जीवन, इहलोक कुछ है, न अदम—परलोक ही कुछ है;—तो 'नहीं है', 'नहीं है', 'नहीं है' बार-बार चिल्लाने वाले ऐ 'नहीं है' के बच्चे ! आखिर तू है क्या है ! बड़ी शोख़ी है इस शैर में।

[१०२]

हम रश्क़ को अपने भी गवारा नहीं करते।
मरते हैं, वले उनकी तमन्ना नहीं करते॥

मिर्ज़ा का यह बहुत प्रिय भाव है कि उनका प्रेम इतना कोमल (सेन्सीटिव) है कि उसने उनके व्यक्तित्व के दो भाग कर दिए हैं। एक भाग प्रेम करता है

और दूसरा भाग प्रेम करने वाले भाग से ईर्ष्या करता है। यह तो अनेक कवि कहते आए हैं कि प्रेमी या भक्त प्रेमिका या उपास्य में समा गया है। दो नहीं रहे। पर एक ही व्यक्तित्व में अपने से ही प्रेम तथा ईर्ष्या करने वाले दोनों छिपे हैं, यह मिर्ज़ा ही की सूझ है।

हम, अपने रश्क़—अपनी ईर्ष्या को स्वयं गवारा—सहन नहीं कर सकते। ईर्ष्या हम से भी अधिक बलवती हो गई है। इसलिये जान निकल रही है तथापि उनकी—उनके दर्श-पर्श की तमन्ना—इच्छा नहीं करते। यदि इच्छा करने से वे आ पहुँचे और हमने उन्हें देख लिया तो हमारा ईर्ष्यालु भाग जल-भुन कर ख़ाक हो जायगा।

अन्यत्र कहा है :—

देखना क़िस्मत के आप अपने पे रश्क आ जाय है।
मैं उसे देखूँ भला, कब मुझसे देखा जाय है॥

दरपरदः उन्हें ग़ैर से है रब्ते-निहानी।
ज़ाहिर का ये परदा है के परदा नहीं करते॥

दरपरदा—परदे ही परदे में, भीतर ही भीतर उन्हें ग़ैर—प्रतिद्वंदी से रब्ते-निहानी—गुप्त प्रेम है। उस गुप्त प्रेम को छिपाने के लिये ज़ाहिर—ऊपरी एक यह पर्दा या चाल चल रहे हैं कि उससे जब वह आता है तब पर्दा नहीं करते। जिससे सब लोग समझें कि उससे प्रेम नहीं करते, क्योंकि आशिक़ से हमेशा पर्दा किया जाता है। जैसा कि अन्यत्र कहा है :—

दोस्ती का परदा है बेगानगी।
मुँह छिपाना हम से छोड़ा चाहिये॥

ये बायसे-नौमीदिए-अरबाबे-हवस है।
'ग़ालिब' को बुरा कहते हो; अच्छा नहीं करते॥

ग़ालिब है तुम्हारा सच्चा प्रेमी। उसी को यदि तुम बुरा—झूठा प्रेमी कह दोगे तो हवस—केवल वासनातृप्ति की भावना से प्रेम करने वाले अरबाब—महाशयों का क्या होगा! तुम्हारा ऐसा कहना उनके लिए नाउम्मीदी—

निराशा का बायस—कारण हो जायगा। वे सोचेंगे कि जब तुम 'ग़ालिब' ही को बुरा कहते हो, तब उनकी तो ज़रा भी गुज़र नहीं हो सकती। तुरन्त भाग खड़े होंगे। इसलिये 'ग़ालिब' को बुरा कहकर तुम कोई अच्छा काम नहीं करते। अपनी ही पूजा-पती में कमी करवा रहे हो।

[१०३]

क्यों न हो, चश्मे-बुताँ महवे-तग़ाफुल? क्यों न हो?
यानी इस बीमार को नज्ज़ारे से परहेज़ है॥

माशूक़ की आँखों की उपमा नरगिस से दी जाती है, जो पीला और झुका हुआ अर्थात् बीमार-सा होता है। अन्यत्र कहा है—

कम नहीं नाज़िशे-हमनामए-चश्मे-ख़ूबाँ।
तेरा बीमार बुरा क्या है गर अच्छा न हुआ॥

यहाँ कहते हैं कि चश्मे-बुताँ—सुन्दरियों की आँखें तग़ाफुल—ग़फ़लत या विस्मृति में महव—भिदी हुई, अर्थात् बीमारों के समान नीचे झुकी हुई क्यों न हों! ये बीमार हैं इसलिये इन्हें परहेज़ करना भी आवश्यक है। और वह परहेज़ है नज़्ज़ारा—अर्थात् आँख उठाकर या मिलाकर न देखना। इसी परहेज़ का निर्वाह बीमार आँखें किए जा रही हैं।

मरते-मरते देखने की आरज़ू रह जायगी।
वाये नाकामी के उस काफ़िर का ख़ंजर तेज़ है॥

वाये नाकामी—इस इच्छा की अपूर्ति पर अफ़सोस कि उसके ख़ंजर के तेज़ होने के कारण वार करते ही मेरी जान निकल जायगी और उसे देखने की इच्छा (आरज़ू) मरते-मरते भी बनी रहेगी। ख़ंजर कुन्द होता, धीरे धीरे गला कटता, धीरे-धीरे दम निकलता, तो मरते मरते अच्छी तरह देख तो लेते।

आरिज़े-गुल देख रूये यार याद आया 'असद'।
जोशिशे-फ़स्ले-बहारी इश्तियाक़-अंगेज़ है॥

गुल—फूल का आरिज़—मुख देखकर यार—माशूक़ के रू—चेहरे की याद आ गई। इससे स्पष्ट है कि फ़स्ले बहारी—वसंत की ऋतु का जोश—की उमंग इश्तियाक़-अंगेज़—मिलनोन्माद को बढ़ानेवाली है। अर्थात् वसन्त में जैसे-जैसे अधिक फूल खिलते जावेंगे, वैसे-वैसे मुझे माशूक़ का चेहरा अधिक याद आने लगेगा और उससे मिलने का पागलपन बढ़ते जावेगा और मैं दामन आदि फाड़ने लगूँगा।

[१०४]

दिया है दिल अगर उसको, बशर है, क्या कहिए।
हुआ रक़ीब तो हो, नामाबर है, क्या कहिए॥

नामाबर—पत्रवाहक पत्र तो इनका लेकर गया पर माशूक़ को देखते ही दिल दे बैठा और इस तरह इन्हीं का रक़ीब—प्रतिद्वंदी हो गया। तब कहते हैं कि उसे क्या कहिए—क्या दोष दें। पत्रवाहक हुआ तो क्या; आख़िर वह भी तो बशर—मनुष्य ही है। उस माशूक़ को देखकर भला कोई भी मनुष्य दिल दिए बिना रह सकता है। अन्यत्र इसी परिस्थिति में नामाबर को सलाम कहलवाया है—

तुझसे तो कुछ कलाम नहीं लेकिन ऐ नदीम।
मेरा सलाम कहियो, अगर नामाबर मिले॥

ये ज़िद के आज न आए : और आए बिन न रहे।
क़ज़ा से शिकवा हमें किस क़दर है क्या कहिए॥

क़ज़ा—मृत्यु को यह ज़िद है कि आज न आएगी; जबकि हम आज ही मरना चाहते हैं, क्योंकि विरह-व्यथा असह्य हो उठी है। इधर तो यह ज़िद और उधर मृत्यु का यह भी दावा है कि आए बिना नहीं रहूँगी; आऊँगी एक दिन ज़रूर। ऐसी बेहूदी चीज़ से जो आए बिना न रहे और बुलाने पर आए न; हमें किस क़दर—कितनी अधिक शिकवा-शिकायत है वह क्या कहें। न कहना ही अच्छा है।

रहे है यों गहो-बेगह के कूए दोस्त को अब।
अगर न कहिए के दुश्मन का घर है, क्या कहिए॥

गहो-बेगह—वक़्त बेवक़्त, जब देखो तब प्रतिद्वंदी कूए-दोस्त—माशूक़ की गली में पड़ा रहता है। तो अब उस गली को दुश्मन का घर न कहें, तो क्या कहें।

ज़हे करिश्मा के यों दे रखा है हमको फ़रेब।
के बिन कहे ही उन्हें सब ख़बर है, क्या कहिए॥

ज़हे—तारीफ़ है करिश्मा—चमत्कार की। माशूक़ का चमत्कार क्या? उसके हाव-भाव, जिन्होंने हमको यह फ़रेब—धोखा, पट्टी दे रखी है कि माशूक़ हमारे बिना कहे ही सब-कुछ जानता है। क्या कहने हैं!

समझ के करते हैं बाज़ार में वो पुरसिशे-हाल।
के यह कहे के 'सरे-रहगुज़र है, क्या कहिए॥'

समझ के—सोच समझकर, चालाकी से वे बाज़ार में मेरी हालत की पुरसिश—पूछताछ करते हैं कि मैं यह कहूँ कि 'यह चलता हुआ रास्ता (सरे-रहगुज़र) है, यहाँ भला मैं क्या बतलाऊँ।' आगे कभी शिकायत करूँगा कि कभी मेरा हाल नहीं पूछते तो कह देंगे 'वाह उस दिन बाज़ार में नहीं पूछा था; तुम्हीं ने तो नहीं बतलाया।'

× × ×

हसद सज़ाए-कमाले-सुख़न है, क्या कीजे?
सितम बहाए-मताए-हुनर है, क्या कहिए?

कमाले-सुख़न—अच्छी कविता लिखने की सज़ा है हसद—ईर्ष्या। क्या करें? बहाए-मताए-हुनर—किसी कला में विशेष अधिकार प्राप्त करने का मूल्य है सितम—अत्याचार। क्या कहें? दुनिया ऐसी हो गई है।

कहा है किसने के 'ग़ालिब' बुरा नहीं लेकिन।
सिवाय इसके कि आशुफ़्तासर है, क्या कहिए॥

बुरा तो है पर इसके सिवाय कि आशुफ्तासर—पागल है और क्या कहें? पागल को बुरा कहो तो क्या, भला कहो तो क्या?

[१०५]

कभी नेकी भी उसके जी में गर आ जाय है मुझसे।
जफ़ाएँ करके अपनी याद शर्मा जाए है मुझसे ॥

यदि कभी मेरे साथ नेकी—सद्व्यवहार करने की उसकी इच्छा हो जाती है तो जफ़ाएँ—दुर्व्यवहार, जो वह मुझ पर कर चुका है, उसकी याद करके वह लज्जित हो जाता है और सद्व्यवहार नहीं करता। कारण, दुर्व्यवहार इतना हो चुका है कि अब, अन्त समय, थोड़ा-बहुत सद्व्यवहार करके जो क्षति हो चुकी है, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। अन्यत्र भी कहा है :—

जौर से बाज़ आए, पर बाज़ आएँ क्या।
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलाएँ क्या ॥

खुदाया जज़्बए-दिल की मगर तासीर उल्टी है।
के जितना खींचता हूँ, और खिंचता जाय है मुझसे ॥

हे ईश्वर, मगर—शायद मेरे दिल के जज़्बे—जोश की तासीर—प्रक्रिया उल्टी है। जितना ही हार्दिक प्रयत्न मैं उसे अपनी ओर खींचने, आकर्षित करने का करता हूँ, उतना ही वह खिंचता जाता है—मुझ पर झुँझलता है, मुझ से दूर होता जाता है।

वो बदख़ू और मेरी दास्ताने-इश्क़ तूलानी।
इबारत मुख़्तसिर; क़ासिद भी घबरा जाय है मुझसे ॥

वह—माशूक़ बदख़ू—ख़राब स्वभाव का है; मेरी कहानी बिलकुल सुनना ही नहीं चाहता। इधर इश्क़—प्रेम की दास्तान—कथा, तूलानी—बड़ी लम्बी चौड़ी है। मुख़्तसिर—संक्षेप में इबारत—बात या हाल यह है कि स्वयं क़ासिद—संदेह-वाहक ही मुझसे—मेरी कहानी की लम्बाई से घबरा जाता है, तो फिर माशूक़ उसे भला क्या सुनेगा।

उधर यह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है।
न पूछा जाय है उससे, न बोला जाय है मुझसे ॥

उधर माशूक़ को यह बदगुमानी है—विश्वास ही नहीं है कि मैं उसका प्रेमी हूँ, इसलिए वह कभी मेरा हाल ही नहीं पूछता और इधर मैं इतना नातवाँ—दुर्बल हूँ कि मुझमें बोलने तक की शक्ति नहीं रह गई। तब फिर सफ़ाई हो तो कैसे हो!

सँभलने दे मुझे ऐ नाउमीदी, क्या क़यामत है।
के दामाने-ख़याले-यार छूटा जाय है मुझसे॥

हे नाउमीदी—निराशा! एक दम मत बढ़ जा। ज़रा ठहर, मुझे सँभलने का मौक़ा दे। क्या क़यामत है—यह ऐसा कैसा प्रलय हुआ चाहता है कि यार—प्रिय की स्मृति (ख़याल) का दामन—अंचल ही मेरे हाथ से छूटा जा रहा है।

× × ×

क़यामत है के होवे मुद्दई का हम-सफ़र; 'ग़ालिब।'
वो काफ़िर जो ख़ुदा को भी न सौंप जाय है मुझसे॥

'ग़ालिब'—यहाँ यह अर्थ है कि ग़ालिब कहते हैं। यह नहीं कि ग़ालिब हम-सफ़र—सहयात्री हैं। ऐ ग़ालिब! देखो, देखो! हम कहते हैं कि क़यामत हो गई—प्रलय उपस्थित हो गया। वह—माशूक़ जो हमसे ख़ुदा को भी नहीं सौंपा जाता, मुद्दई—प्रतिद्वंदी के साथ सफ़र कर रहा है या जा रहा है।

विदा के समय कहा जाता है—'ख़ुदा हाफ़िज़' अर्थात् हम तुम्हें ईश्वर की रक्षा में सौंपते हैं। ग़ालिब अपने माशूक़ की विदा के समय भी 'ख़ुदा हाफ़िज़' नहीं कहते थे क्योंकि ईश्वर के सुपुर्द करने में भी उन्हें ईर्षा होती थी; फिर प्रतिद्वंदी के साथ यात्रा करते देख तो सचमुच उनके लिये प्रलय ही उपस्थित हो गया होगा।

एक ख़ूबी और है। माशूक़ को ख़ुदा के सुपुर्द इसलिये नहीं करते थे कि वह काफ़िर था अर्थात् इस्लाम धर्म का मानने वाला नहीं था। तो फिर एक दीनदार, ईश्वर पर उसकी रक्षा का बेगार क्यों लादे! यह बात और है कि माशूक़ का दर्ज़ा तो स्वयं ईश्वर का है। तब फिर ईश्वर के ऊपर ईश्वर की रक्षा का क्या मतलब! बड़ा मज़ेदार शैर है।

[१०६]

लाग़िर इतना हूँ के गर तू बज़्म में जा दे मुझे।
मेरा ज़िम्मा देख कर गर कोई बतला दे मुझे॥

इतना लाग़िर—दुर्बल हो गया हूँ कि यदि तू अपनी बज़्म—महफ़िल में मुझे जा—स्थान दे तो यह मेरा ज़िम्मा है कि कोई मुझे देखकर बतला नहीं सकेगा कि यह फ़लाँ बैठा है। कारण दुर्बलता ने हुलिया ऐसा बदल दिया है कि अब मैं किसी की पहचान में ही नहीं आता। यही अर्थ अच्छा है। मिर्ज़ा अतिशयोक्ति से बच गये हैं, जब कि शाह ज़फ़र ने कहा है :—

'नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में।
कोने-कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी, मैं न था॥'

या महाकवि बिहारी ने कहा है :—

'करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़त नीचु।
दीने हू चसमा चखन, चाहै लहै न मीचु॥'

क्या तअ़ज्जुब है के उसको देखकर आ जाए रह्म।
वाँ तलक कोई किसी हीले से पहुँचा दे मुझे॥

तअ़ज्जुब—आश्चर्य क्या कि मुझे देखकर उसे रहम—दया आ जाय। प्रश्न यह है कि कोई—मेरा मित्र वाँ तलक—उसके पास तक मुझे किसी हीले—बहाने से पहुँचा भर दे।

मुँह न दिखलावे, न दिखला, पर ब-अन्दाज़े-अ़ताब।
खोल कर पर्दा ज़रा आँखें ही दिखला दे मुझे॥

मुझसे नाराज़ हो जाने के कारण तू मुझे अपनी मुखच्छवि नहीं दिखलाना चाहता, तो न दिखला। अ़ताब—क्रोध के अन्दाज़—भाव से भरी हुई जो तेरी आँखें हैं वे ही तनिक घूँघट खोलकर दिखला दे। वह भी तो एक देखने लायक छटा है। इस बहाने मुँह भी देखना चाहता है। क्या आँख दिखला रहे हो का

अर्थ होता है कि क्या क्रोध प्रगट कर रहे हो। अतएव जब क्रोधित हो तो गुरेरती आँखें दिखला कर क्रोध का पूरा लक्षण तो प्रगट करो।

याँ तलक मेरी गिरफ़्तारी से वो ख़ुश है के मैं।
ज़ुल्फ़ गर बन जाऊँ तो शाने से उलझा दे मुझे॥

मेरी गिरफ़्तारी से—मेरे बन्दी हो जाने से वह बहुत ख़ुश है। बन्दी होने के लिए कोई बंधन या ज़ंजीर चाहिए न। ज़ुल्फ़ या केशराशि ही वह बन्धन या ज़ंजीर मानी गई है। तो यदि मैं मान लूँ कि मैं उसकी ज़ुल्फ़ों में बँधा पड़ा हूँ अर्थात् केशराशि हो गया हूँ तो वह इतना ख़ुश है कि शाने—कंघी से मुझे उलझा देगा, अस्त-व्यस्त कर देगा। ऐसा करने से उसे स्वयं कष्ट या परिश्रम होगा, इसकी कोई चिन्ता नहीं करेगा।

[१०७]

बाज़ीचये-अतफ़ाल है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे॥

मेरी दृष्टि में यह दुनिया क्या चीज़ है? केवल अतफ़ाल अर्थात् बच्चों का बाज़ीचा—खेल है और यह खेल, यह तमाशा शबो-रोज़, रात-दिन होता रहता है और मैं देखता रहता हूँ। लीला या खेल तो हिन्दी वाले भी मानते हैं परन्तु भगवान की लीला। मिर्ज़ा हिन्दू-दर्शन से प्रभावित हुए थे और वही लीला वाली बात अपने ढंग से कह दी है।

महाकवि 'मोमिन' का एक शैर है—

तुम मेरे पास होते हो गोया। जब कोई दूसरा नहीं होता।

इस से मिर्ज़ा इतने प्रभावित हुए कि इस एक शैर के बदले 'मोमिन' को अपना पूरा दीवान, संग्रह दे डालने की इच्छा प्रगट की।

शैर में इतनी गहरी तन्मयता की ओर लक्ष्य है कि 'जब कोई दूसरा नहीं होता' अर्थात् जब मैं अपने आपको भी दूसरा मानकर, तुम में पूर्णरूप से खो जाता हूँ, मिल जाता हूँ, तब मुझे तुम्हारा आभास मिलता है। अद्वैतवाद।

इसी भाव को कबीरदास जी ने इस तरह व्यक्त किया है—

जब मैं था तब गुरु नहीं। अब गुरु है मैं नाँहिं।
प्रेम गली अति साँकरी। या में दो न समाहिं॥

इसी पूर्ण तन्मयता पर मिर्ज़ा मुग्ध हो गए।

इक खेल है औरंगे-सुलेमाँ मेरे नज़दीक़।
इक बात है ऐजाजे़-मसीहा मेरे आगे॥

बादशाह सुलेमान (सालोमन) का तख़्त, (औरंग) जो हवा में उडता था, रहा आए। मेरे लिये वह एक खेल-मात्र है। मसीहा, ईसा मसीह का ऐजाज़, चमत्कार—अंधे को आँख दे देना, हाथ फेरकर कुष्ट रोग अच्छा कर देना आदि भी बहुत बड़ा करतब रहा हो, मेरे लिये तो वह भी एक बात है, एक साधारण बात है।

उड़ते हुए तख़्त के सिवा सुलेमान चमत्कारी थे; वे पशु-पक्षियों की भाषा समझ लेते थे और अप्सराओं पर भी उनका क़ाबू था, यथा—

सहल परियों का नहीं ताबए-फ़र्मा होना।
हर बशर का ज़रा मुश्किल है सुलेमाँ होना॥

परन्तु महापुरुषों ने चमत्कार को कोई विशिष्ठ स्थान नहीं दिया। स्वयं पैग़म्बर साहब ने कहा था—'मुझसे चमत्कार की बात मत करो, मैं चमत्कार के परे हूँ।' महाकवि ने भी चमत्कार की मर्यादा नहीं मानी।

होता है निहाँ गर्द में सहरा मेरे होते।
घिसता है जबीं ख़ाक में दरिया मेरे आगे॥

सहरा (जंगल) मेरे होते, मेरी उपस्थिति-मात्र से, गर्द में, धूल में निहाँ होता है, छिप जाता है, ढँक जाता है। इतना बड़ा तूफ़ान, प्रेम का तूफ़ान मैं अपने साथ लिये फिरता हूँ। और दरिया नदी या समुद्र जबीं—अपना माथा ख़ाक में, धूल में घिसने लगता है अर्थात् मेरे आँसुओं के सामने उसे अपनी लघुता या हीनता का ज्ञान प्राप्त होता है। (तब दूसरे का चमत्कार क्या मानूँ!)

मत पूछ के क्या हाल है मेरा तेरे पीछे।
तू देख के क्या रंग है तेरा मेरे आगे॥

प्रेमी को देख प्रेमिका शर्मा गई है, उसी शर्मो-लिहाज़ की तरफ़ इशारा है। कि मेरे सामने तेरा क्या रंग है यह देख; तेरे पीछे मेरा क्या हाल है, यह मत पूछ।

अन्य कवि ने कहा है—'किस शान के मेहमाँ मेरे घर आए हुए हैं। सिमटे हुए, झेपे हुए, शर्माए हुए हैं॥'

फिर देखिए अंदाज़े-गुलअफ़्सानिए-गुफ़्तार।
रख दे कोई पैमाना-ओ-सहबा मेरे आगे॥

पहले कोई सहबा, अंगूरी शराब का पैमाना, प्याला मेरे आगे रख दे। फिर देखे कि मेरी गुफ़्तार, बातचीत करने के अंदाज़, ढंग में गुलअफ़्साना, फूल झड़ने का आनन्द आता है या नहीं।

ईमाँ मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ़्र।
काबा मेरे पीछे है, कलीसा मेरे आगे॥

ईमाँ—धर्म। कुफ़्र—अधर्म या इस्लाम के सिवाय अन्य धर्म। काबा—मक्का, मुसलमानों का तीर्थस्थान। कलीसा—गिरजाघर। महाकवि के लिए सब धर्म बराबर हैं। ईमाँ रोकता है, इसलिये काबा पीछे रह जाता है। कुफ़्र खींचता है। इसलिये कलीसा आगे हो जाता है।

जुज़ नाम—नहीं सूरते-आलम मुझे मंज़ूर।
जुज़ वह्म,—नहीं हस्तिये-इसिया मेरे आगे॥

जुज़ नाम अर्थात् सिवाय नाम के मुझको आलम की सूरत, सृष्टि का अस्तित्व मंज़ूर नहीं है, मान्य नहीं है। संसार मिथ्या है, एक नाम-मात्र है। उसी प्रकार इसिया, इन विभिन्न वस्तुओं या पदार्थों की हस्ती अर्थात् स्थायित्व जुज़ वह्म, धोखे के सिवाय मेरे लिये और कुछ नहीं है।

सच कहते हो .खुदबीं वो .खुदारा हूँ, न क्यों हूँ ?
बैठा है बुते आइना-सीमा मेरे आगे ॥

इसमें एक मीठी चुटकी है। अगर कोई आईना सामने रखे, लगातार अपने आप को देखता रहे तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि उसे अपने रूप का बड़ा घमंड है, अर्थात् खुदबीं और खुदारा है। मैं भी वैसा ही घमंड पाले हुए हूँ, क्यों न पालूँ ? तू मेरे सामने बैठा है। तेरा सीमा, माथा आइने के समान चमक रहा है। मैं लगातार अपने को उसमें देख रहा हूँ।

नफ़रत का गुमाँ गुज़रे है, मैं रश्क से गुज़रा।
क्यों कर कहूँ लो नाम न उनका मेरे आगे ॥

मुझ में रश्क है, ईर्ष्या है। मैं इतना ईर्ष्यालु हूँ कि कोई इनका नाम भी ले लेता है तो मैं जल-भुँज जाता हूँ। मेरे सिवाय किसी को उनका नाम लेने का भी अधिकार नहीं होना चाहिए। पर मुझे अब इतनी अधिक ईर्ष्या (रश्क) त्याग देनी पड़ेगी। जब कोई नाम लेता है और मैं चिहुँक पड़ता हूँ तो गुमाँ, संदेह किया जा सकता है कि मैं उनके नाम से नफ़रत, घृणा करता हूँ। यह संदेह करना मेरे लिये बहुत बड़ा अन्याय हो जायगा। इसलिये अब नहीं कहूँगा कि मेरे आगे उनका नाम न लो।

आशिक़ हूँ पे माशूक़-फ़रेबी है मेरा काम।
मजनूँ को बुरा कहती है लैला मेरे आगे ॥

मैं प्रेमी तो हूँ पर माशूक़-फ़रेबी, प्रेमिका को धोखा देना मैंने अपना धन्धा बना लिया है। और इस हद तक धोखा दे लेता हूँ कि मेरी तुलना में लैला मजनूँ को ही बुरा कहने लग जाती है।

.खुश होते हैं पर वस्ल में यों मर नहीं जाते।
आई शबे-हिजराँ की तमन्ना मेरे आगे ॥

संयोग (वस्ल) में खुश होना स्वाभाविक है। पर ऐसी भी ख़ुशी किस काम की कि दम ही निकल जाय। मैं संयोग में ही मर गया। क्या खुशी के मारे मर गया ? नहीं संयोग में एक क्षण यह ख़याल आया कि वियोग भी

होगा। ख़याल आते ही शबे-हिजरां—वियोग-रात्रि की तमन्ना—इच्छा, अभिलाषा तुरन्त आ पहुँची। और वियोग-रात्रि की अभिलाषा क्या थी ! मृत्यु।

है मौजज़न एक क़ुलज़मे-ख़ूँ, काश यही हो।
आता है अभी देखिए क्या-क्या मेरे आगे॥

ख़ूँ, रक्त का एक क़ुलज़म, सरोवर मौजज़न है, हिलोरें मार रहा है—इतना और ऐसा तो मैं रोया हूँ। काश, भगवान करे यही मेरे रोने का अन्त हो। पर ऐसा होगा नहीं। अभी आगे न जाने क्या क्या देखना है।

गो हाथ को जुम्बिश नहीं आँखों में तो दम है।
रहने दो अभी साग़िरो-मीना मेरे आगे॥

नाड़ी बन्द हो रही है। दम छूट रहा है। घर वालों ने, मित्रों ने समझा अब मिर्ज़ा चले। तैयारी करो कफ़न की। ये आसपास फैला हुआ गटर-पटर सामान हटाओ यहाँ से। हटाते-हटाते जब शराब की सुराही और प्याले की नौबत आई तब मिर्ज़ा में न जाने कहाँ से यह कहने की ताक़त आ गई—मेरे प्यारो, अभी ठहरो। इतनी जल्दी काहे की है ? मेरे हाथ में जुम्बिश, हिलने-डुलने की ताक़त नहीं रह गई, इतना ही न ! सुराही से प्याले में नहीं ढाल सकता, प्याला मुँह के पास तक नहीं ला सकता इतना ही न ! पर भाई अभी आँखें नहीं मुँद पाईं। अभी वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं। साग़िरो-मीना, सुराही और गिलास अभी मत हटाओ। नहीं पी सकता, न सही, जब तक देख सकता हूँ, देख तो लेने दो। लाजवाब शैर है।

हम-पेशओ, हम-मशरिबो, हमराज़ है मेरा।
'ग़ालिब' को बुरा क्यों कहो, अच्छा, मेरे आगे॥

हम-पेशा, जो मेरा रोज़गार वह 'ग़ालिब' का, मशरिब, धर्म भी वही, हमराज़, मेरे हृदय की भी सब गुप्त बातें जानता है। 'अच्छा' अन्त में पढ़िये। बुरा क्यों कहो मेरे आगे, अच्छा ! अर्थात् मत कहो बुरा, कम से कम मेरे मुँह पर। भला !

[१०८]

कहूँ जो हाल तो कहते हो मुद्दआ़ कहिए!
तुम्हीं कहो के जो तुम यूँ कहो, तो क्या कहिए?

जब मैं अपनी व्यथा का वर्णन करने लगता हूँ तो तुम टोक देते हो कि बकबक मत करो, सीधे मुद्दआ़—मतलब की बात कहो कि आख़िर चाहते क्या हो! जब स्वयं 'तुम' (जिससे हमारा कोई अभिप्राय—उद्देश्य छिपा नहीं है) ऐसा कहने लगो तो फिर तुम्हीं बताओ कि हम क्या उत्तर दें। अभिप्राय तो है संयोग या मिलन, जो तुम जानते हो परन्तु मैं कह नहीं सकता; क्योंकि वह धृष्टता होगी और धृष्टता से तुम मुझ पर नाराज़ हो जाओगे। अतएव मुझे व्यथा का वर्णन करने दो, जो प्रेमी का अधिकार है और अंतिम उद्देश्य तुम स्वयं समझ जाओ।

न कहियो ताने से फिर तुम के 'हम सितमगर हैं'।
मुझे तो ख़ू है के जो कुछ कहो 'बजा' कहिए॥

मुझे तुम्हारा इतना भय या आतंक है कि मेरी ख़ू—आदत यह हो गई कि तुम जो कुछ अच्छा-ख़राब कहो मैं तुरन्त बोल उठता हूँ 'बजा है'—बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, बिलकुल यही बात है। अब कभी तानेसे—व्यंग के रूप में आपने कहा—'हम सितमगर हैं'—हम अत्याचारी हैं; क्यों? तो मैं आदत से लाचार यही कहूँगा—बिलकुल यही बात है। और आप नाराज़ हो जायँगे। इसलिए बेहतर है कि आप फिर कभी व्यंग से भी अपने लिए कोई उल्टी-सीधी बात न कहें।

वो नेश्तर सही, पर दिल में जब उतर जाए।
निगहे-नाज़ को फिर क्यों न आशाना कहिए॥

निगहे-नाज़—नयनों का कटाक्ष है तो वास्तव में नश्तर—छुरी का घाव। पर जब वह दिल में उतर गया—मार करते हुए भी उसने हृदय में स्थान बना ही लिया तो उसे नश्तर क्यों कहें। हृदय में तो स्थान आशना—मित्र का होता

है। इसलिए वह कटाक्ष शत्रु नहीं, मित्र है। 'काँटे-सी कटकत हिये उई कटीली भौंह' को कवि ने मित्रवत् बना लिया है।

× × ×

जो मुद्दई बने उस के न मुद्दई बनिए।
जो नासज़ा कहे, उस को न नासज़ा कहिए॥

विशुद्ध उपदेश है कि जो मुद्दई—शत्रु बने उसके तुम शत्रु न बनो और जो नासज़ा—बुरा कहे उसे तुम बुरा मत कहो।

× × ×

सफ़ीना जब के किनारे पे आ लगा 'ग़ालिब'।
खुदा से क्या सितमो-जौरे-नाखुदा कहिए॥

सफ़ीना—नाव जब किनारे लग गई तब भगवान (खुदा) से क्या कहें कि नाखुदा—नाविक ने हम पर क्या-क्या जौरो-सितम—अन्याय-अत्याचार किए हैं। तात्पर्य यह है कि जब मौत के घाट आ लगे तब दुनिया में अपने ऊपर किए गए अत्याचारों की याद या चर्चा करना व्यर्थ अपने आप को कष्ट देना है।

[१०६]

रोने से और इश्क़ में बेबाक हो गए।
धोए गए हम ऐसे के बस पाक हो गए॥

यह शैर व्यंगात्मक है। पाक का अर्थ यहाँ साफ़ या पवित्र नहीं है, वरन् निर्द्वन्द है। रोकर हमने प्रेम की विह्वलता नहीं बतलाई, प्रेमी की उछृङ्खलता प्रगट की। रोने से हम बेबाक—निर्भय हो गए। यह डर नहीं रहा कि प्रेम छिपाकर रखना चाहिए। हम ऐसे धोए गए—ऐसे बेशर्म हो गए कि पाक—स्वतंत्र या निर्द्वन्द हो गए। बिना लाज-शर्म के चीख़ने-चिल्लाने लगे।

सर्फ़े-बहाए-मय हुए आलात-मयकशी।
थे ये ही दो हिसाब, सो यूँ पाक हो गए॥

कुल दो ही हिसाब थे। एक तो शराब कहाँ से मिले, उसकी क़ीमत कहाँ से चुकाएँ; दूसरे शराब पीने के सामान (आलात-मयकशी) को कहाँ-कहाँ ढोए फिरें। हमने सामान अर्थात् सुराही, गिलास आदि को सर्फ़—ख़र्च कर दिया बहाए-मय—शराब ख़रीदने में। इस तरह दोनों हिसाब पाक—साफ़ हो गए। शराब भी हज़म और शराब पीने का सामान भी हज़म।

× × ×

कहता है कौन नालए-बुलबुल को बेअसर।
पर्दे में गुल के लाख जिगर चाक हो गए॥

बुलबुल, जो फूल का प्रेमी है उसके नाला—रुदन को कौन कहता है कि बेअसर—प्रभावहीन है। गुल—फूल के लाख जिगर—कलेजे, पर्दे में भीतर ही भीतर चाक हो गए—टुकड़े टुकड़े हो गए। फूलों का अनेक पँखुड़ियों में खिलना, बुलबुल का रुदन सुन कर उनके कलेजों का टुकड़े टुकड़े होना दर्शाया गया है।

× × ×

करने गए थे उससे तग़ाफ़ुल का हम गिला।
की एक ही निगाह के बस ख़ाक हो गए॥

हम उससे तग़ाफ़ुल—लापरवाही का—उलाहना देने गए थे कि तू हमारी तरफ़ कभी देखता तक नहीं। उसने कुल एक बार निगाह की—आँख उठाकर देखा और वही हमारे लिये शंकर का तृतीय नेत्र हो गया कि हम तुरन्त ख़ाक हो गए।

इस रंग से उठाई कल उसने 'असद' की लाश।
दुश्मन भी जिसको देख के ग़मनाक हो गए॥

कल उसने इस रंग—इस ढंग से 'असद' की लाश उठाई कि दुश्मन भी मारे ईर्ष्या के ग़मनाक हो गए—तड़प गए। या इतनी अवहेलना से लाश उठाई कि दुश्मन यह सोचकर दुखी हुए कि जान देने पर भी माशूक़ अपनी आदत नहीं छोड़ता। आज जो 'असद' पर बीत रही है, कल उन पर भी बीतेगी।

[११०]

इब्ने-मरियम हुआ करे, कोई।
मेरे दुख की दवा करे, कोई॥

यहाँ 'कोई' से इशारा प्रियतम की तरफ है। कोई अर्थात् वह इब्ने-मरियम-मरियम का पुत्र ईसा मसीह ही अपने को क्यों न लगाए। हम तो उसे सब रोगों को दूर करने वाला मसीहा तब मानेंगे जब वह हमारे दुख (प्रेम के रोग) की भी कोई दवा कर दे, अर्थात् दर्शन दे दे और कृपा-भाव रक्खे।

शरओ़-आईन पर मदार सही।
ऐसे क़ातिल का क्या करे कोई॥

हमने मान लिया कि दुनिया शरअ़ (शास्त्र की आज्ञाओं) तथा आईन (क़ानूनी आज्ञाओं) पर मदार—टिकी हुई है। पर ऐसे क़ातिल, जान लेने वाले को शास्त्र या क़ानून क्या दंड दे जो अस्त्र-शस्त्र का बिना प्रयोग किये, केवल नयन-बाणों से या अन्य कटाक्षों से ही प्राण हर लेता है।

चाल जैसे कड़ी कमान का तीर।
दिल में ऐसे के जा करे कोई॥

ढीला धनुष नहीं, जिसका छूटा हुआ तीर मंद गति से चलता है; खूब कसे हुए धनुष से छूटे तीव्रगामी तीर की तरह उसकी गति है। जो इतनी तेज़ी से निकल जाय, उसके दिल में अगर कोई जा, स्थान प्राप्त कर ले तो हम मानें। यहाँ केवल यह नया भाव लाने के लिए कि तीव्रगामी व्यक्ति के हृदय में स्थान बना लेना कठिन है, मिर्ज़ा ने एक मान्यता का खंडन किया है। उर्दू में भी प्रेयसी 'खि़रामा' चलने वाली अर्थात् धीरे-धीरे चलने वाली मानी गई है हिन्दी में तो है ही—'वह मन्द चलै क्यों न मेरी भटू, पग लाखन की अँखियाँ अटकीं।'

बात पर वाँ ज़बान कटती है।
वो कहें और सुना करे कोई॥

बक रहा हूँ जुनूँ में क्या-क्या कुछ।
कुछ न समझे, ख़ुदा करे कोई॥

जुनूँ में—प्रेमोन्माद में। कोई अर्थात् वह या सुनने वाले।

न सुनो गर बुरा कहे कोई।
न कहो गर बुरा करे कोई॥
रोक लो गर ग़लत चले कोई।
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई॥

बख़्श दो—क्षमा कर दो, ख़ता—अपराध।

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द।
किसकी हाजत रवा करे कोई॥

हाजत-मन्द—इच्छा-लोलुप। जब सब संसार ही इच्छा-लोलुप है तो कौन किसकी इच्छा की पूर्ति करे! जैसा कबीरदासजी कहते हैं।

'ऐसा कोई ना मिला, जिससे रहिये लागि।
सब जग जलता देखियाँ, अपनी-अपनी आगि॥'
क्या किया ख़िज़्र ने सिकन्दर से।
अब किसे रहनुमा करे, कोई॥

ख़िज़्र एक पौराणिक पुरुष के समान हैं, जो अमर माने गए हैं। सिकन्दर बादशाह से उनकी भेंट हुई। बादशाह ने अमृतकुंड तक पहुँचना चाहा। ख़िज़्र रास्ता दिखलाते ले गए और कुंड के आस-पास जो पुरातन पुरुष अमृत पीकर असीमित बुढ़ापे का दुख भोग रहे थे, उनकी हालत दिखलाई। सिकंदर को असीमित आयु, अमरता से ग्लानि हो गई। अमृत नहीं पिया। ख़िज़्र को चाहिए था कि सिकंदर को अमृत पी लेने देते, उसके अवगुण न दिखलाते। जब ख़िज़्र के समान साधु ने भी सिकंदर के साथ ऐसा व्यवहार किया तो अब भला कौन किसे अपना रहनुमा—पथप्रदर्शक बनाए।

जब तवक़्क़ो ही उठ गई 'ग़ालिब'।
क्या किसी का गिला करे कोई ॥

तवक़्क़ो—आशा, तृष्णा ही जब समाप्त हो गई तब भला कोई किसी की गिला—शिकायत क्यों करे और क्या करे ?

[१११]

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, के हर ख़्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले ॥

मौलाना 'हाली' टीका करते हैं : ख़्वाहिश पर दम निकलना—उस के पूरे होने के लिए जल्दी करना; इसीलिए कहते हैं—क्यों दम निकला जाता है या क्यों मरे जाते हो ? यानी क्यों जल्दी करते हो ? पहली पंक्ति में ये शब्द कि 'दिल में बाक़ी हैं' सांकेतिक माने जायँ। अर्थात् हमारे दिल में हज़ारों ऐसी ख़्वाहिशें—लालसाएँ बाक़ी हैं कि जिन में से हर लालसा के लिए हमारा दम निकलता है—हम मरे जाते हैं। हमारे अरमान—हमारी लालसाएँ बहुत पूरी हो चुकी हैं, परंतु फिर भी बाक़ी हैं।

डरे क्यों मेरा क़ातिल, क्या रहेगा उस की गरदन पर।
वो ख़ूँ जो चश्मेतर से उम्र भर यूँ दम-ब-दम निकले ॥

मेरा क़ातिल—मुझे मारने वाला यदि डरे कि मेरी हत्या उसकी गरदन पर—उसके माथे रह जायगी, तो व्यर्थ है। जो ख़ून—रक्त चश्मेतर—मेरी गीली आँखों से उम्र भर दम-ब-दम—हर साँस में निकलता या बहता रहा है वह उसकी ही गरदन पर क्यों कर ठहरेगा ! बहना उसकी आदत; बह जायगा। यह भी संकेत है कि बहते-बहते रक्त मुझ में रह ही कहाँ गया, जो उसके माथे का टीका बने।

निकलना ख़ुल्द से आदम का सुनते आए हैं, लेकिन।
बहुत बे-आबरू हो कर तेरे कूचे से हम निकले ॥

आदम पहले ख़ुल्द—बैकुण्ठ में रहते थे। किसी अपराध के कारण वहाँ से निकाल दिए गए और पृथ्वी पर आदि पुरुष हुए। महाकवि 'अकबर' इलाहाबादी का शैर है।

'आदम छुटे बहिश्त से गेहूँ के वास्ते।
मस्जिद से हम निकल गए बिस्कुट की चाट में॥'

कहते हैं कि आदम का बैकुण्ठ से निकलना तो सुनते आए हैं पर हम तेरे कूचे—तेरी गली से बहुत बे-आबरू—बेइज्ज़त होकर निकले। ज़ोर 'बहुत' पर है। आदम इतने बेइज्ज़त हो कर नहीं निकले थे, जितने हम। निकलने के कारण अपनी बराबरी आदम से कर ली और उसकी गली की बराबरी बैकुण्ठ से तो करते ही आए हैं। अन्यत्र देखिए।

कम नहीं जल्वागरी में तेरे कूचे से बहिश्त।
यही नक़्शा है, वले इस क़द्र आबाद नहीं॥

× × ×

हुई जिन से तवक्क़ुअ़ ख़स्तगी की दाद पाने की।
वो हम से भी ज़ियादह कुश्तए-तेग़े-सितम निकले॥

जिन से हमने यह तवक्क़ुअ़—आशा की कि हमारी ख़स्तगी—दैन्यता की दाद—प्रशंसा करेंगे उन्हें हमने अपने से भी अधिक सितम—अत्याचार की तेग़—तलवार का कुश्ता—घायल पाया। इसी को संत कबीर कहते हैं :—

'सुखिया ढूँढ़त मैं फिरूँ, सुखिया मिलै न कोय।
जा के आगे दुख कहूँ, पहले ऊठै रोय॥'

मोहब्बत में नहीं है फ़र्क़, जीने और मरने का।
उसी को देख कर जीते हैं, जिस काफ़िर पे दम निकले॥

काफ़िर का अर्थ माशूक़ या प्रियतमा। उसी प्रियतमा पर जान निकल रही है। उसी को देखने से जान ठहरी हुई है। तनिक आँखों की ओट करो कि दम टूटा। तब फिर प्रेम में जीने और मरने का भेद कहाँ रहा! बहुत ख़ूब है।

ख़ुदा के वास्ते पर्दा न काबे का उठा, वाइज़।
कहीं ऐसा न हो याँ भी वही काफ़िर सनम निकले॥

वाइज़—हे धर्मोपदेशक, ख़ुदा के वास्ते—ईश्वर के नाम पर काबे—मक्का के पवित्र स्थल का पर्दा न उठा—रहस्य न खोल। कहीं ऐसा न हो कि यहाँ—काबे में भी वही काफ़िर सनम—विधर्मी प्रेयसि या मूर्ति निकले—दीख पड़े। काबे में पहले मूर्ति या मूर्तियाँ थीं, जैसा कि अन्यत्र कहा है :—

गो वाँ नहीं पे वाँ के निकाले हुए तो हैं।
काबे से इन बुतों को भी निस्बत है दूर की॥

कहाँ मयख़ाने का दर्वाज़ा 'ग़ालिब', और कहाँ वाइज़।
पर इतना जानते हैं—कल वो जाता था, के हम निकले॥

वाइज़—धर्मोपदेशक को शराबख़ाने के दर्वाज़े से भला क्या काम ? पर इतनी बात अवश्य है कि कल हम मयख़ाने के दर्वाज़े से निकल रहे थे और वह दाख़िल हो रहा था। बड़ा क़रारा व्यंग है कि वाइज़ भी लुके-छिपे पी ही लेता है। सब शराबी निकल गए तब उसने सोचा कि अब एकान्त में छानी जाय। उसे क्या पता कि 'ग़ालिब' सब से पहले दाख़िल होते हैं और सब के बाद में निकलते हैं। इसलिए मुठभेड़ हो गई और कलई खुल गई।

[११२]

आईना क्यों न दूँ के तमाशा कहें जिसे।
ऐसा कहाँ से लाऊँ के तुझ-सा कहें जिसे॥

तुझ-सा कहें जिसे—जिसे तेरे जोड़ की सुन्दरी कहें और जिसे देख तू भी माने कि हाँ, मेरे टक्कर की है; ऐसी मैं कहाँ से पैदा करूँ। कोई हो भी, तब तो ! इसलिए बेहतर यह है कि आईना दूँ—दर्पण तेरे सामने रख दूँ कि तू ही अपना प्रतिबिंब देखकर हैरान हो जाय और इस हैरानी को देखकर लोग कहें कि वाह ! क्या अच्छा तमाशा है !!

हसरत ने ला रखा तेरी बज़्मे ख़याल में।
गुलदस्तए-निगाह, सवेदा कहें जिसे ॥

दिल में एक काला दाग़ होता है, जिसे सवेदा कहते हैं। मिर्ज़ा कहते हैं यह सवेदा नहीं है। हसरत—अपूर्ण अभिलाषाओं ने तेरे कटाक्षों (निगाह) का गुलदस्ता—रंगीन गुच्छा ला कर रख दिया है। कहां ? उस स्थल में जहां तेरी याद (ख़याल) की सभा लगी रहती है—अर्थात् दिल में।

× × ×

ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है के सब अच्छा कहें जिसे ॥

वाइज़—उपदेशक यदि बुरा कहे तो बुरा न मान क्योंकि दुनियां में सभी लोग किसी एक को अच्छा नहीं कहते। कुछ ऐसे होते ही हैं जो बुराइयां खोज निकालते हैं। उन्हीं में वाइज़ भी है।

[११३]

शबनम ब-गुलेलाला न ख़ालीज़ा अदा है।
दाग़े-दिले-बेदर्द नज़रगाहे-हया है ॥

ब-गुलेलाला—फूल पर जो शबनम—ओस दिख रही है वह अदा—मतलब से ख़ालीज़—ख़ाली नहीं है। मतलब उस में यह है कि बेदर्द दिल—जिस दिल में इश्क़ का दर्द नहीं है उस पर दाग़—चोट का चिन्ह भी हो तो वह हया—शर्म का नज़रगाह—प्रदर्शन है। फूल बुलबुल के प्रेम का प्रतिदान नहीं देता। इस लज्जा से उसे पसीना आ गया है और वही ओस है। अर्थात् ओस फूल की लज्जा का प्रदर्शन है।

× × ×

नाकर्दा गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद।
या रब ! अगर इन करदा गुनाहों की सज़ा है ॥

या रब !—हे ईश्वर ! यदि इन गुनाहों—पापों की जो करदा—हमने किए हैं सज़ा अनिवार्य है, मिलनी ही है तो उन गुनाहों की हसरत—इच्छा की भी, जो नाकर्दा—हम न कर सके, ('शक्तिमान न होने के कारण'—मौलाना हाली) हमें कुछ दाद—प्रशंसा मिले।

टीकाकारों तथा उर्दू कवियों व साहित्यिकों ने इस शैर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यहाँ तक कहा है कि यह शैर अपने आप में एक दीवान—काव्य-संग्रह है।

इसकी ख़ूबी परखने के पहले, मिर्ज़ा ने इसी मज़मून का एक शैर अन्यत्र कहा है, उसे यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा—

'आता है दाग़े-हसरते-दिल का शुमार याद।
मुझ से मेरे गुनह का हिसाब ऐ ख़ुदा ! न माँग॥'

इस एक उर्दू शैर का भाव प्रगट करने के लिए मिर्ज़ा ने फ़ारसी में एक लम्बी कविता लिखी है, जिसका संक्षेप यह है।

'शराब दुख हल्का करती है, इसलिए मैंने पी। यदि यह पाप है तो मुझ ग़रीब से उसका हिसाब क्या माँगता है; जमशेद, बहराम, परवेज़ आदि बादशाहों से माँग जिन्होंने सुरा के साथ उपवन, संगीत, सुन्दरी आदि के भी आनन्द उठाए। (तात्पर्य यह कि इन अपूर्त पापों के अभाव में मेरा शराब पीना तो पूरा पाप भी नहीं हो पाया।)

'वसंत आए, जबकि मेरे पास एक बूँद शराब नहीं। चाँदनी रातें और सुनहरे दिन आए, जबकि मेरे पास भोजन तक नहीं। उपवन में गुलाब खिलते थे, मेरे घर मन्हूसी छाई रहती थी। शराब मिलती, तो प्याला फूट जाता था। मेरे कपड़ों को मत देख जिनमें शराब की बू आती है, मेरी अंजर-पंजर ठठरी को देख।

'कहाँ तक कहूँ ! तेरे खाते में जितने पाप लिखे हैं, मेरे खाते में उतनी ही अपूर्त अभिलाषाएँ लिखी हैं। तब, भगवान ! मेरे साथ न्याय हो, तो कैसे हो !'

'मैं पतित हूँ, तुम पतित-पावन हो। तुम्हारा काम ही जब पतित को पावन करना है, तो मुझे भी पवित्र कर दो। मैं पापी हूँ, पर तुम्हारा ही जन हूँ; रक्षा

करो। मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि हे पाप-विनाशक ! तुम मेरे पापों का विनाश कर सकोगे, इस में मुझे संदेह है। मैं पापी किस मुँह से तुम्हारे सामने आऊँ, कैसे उद्धार की भीख माँगूँ !' इस तरह के भाव हिन्दी-कविता में भी आए हैं।

'मैं पापी हूँ, इसलिए कि तुमने पाप बनाए। मैं पापी तो हूँ, पर जितने तुमने पाप बनाए थे, उतने मैं नहीं कर सका। कारण जितने पाप बनाने की शक्ति तुम में है, उतने पाप करने की शक्ति, सामर्थ्य और साधन तुम ने मुझे नहीं दिए। तब जो पाप मैंने किए; वे तुम ने बनाए। न तुम बनाते न मैं करता। मेरा कोई अपराध नहीं। अपराध तुम्हारा है कि पाप तो तुमने इतने बहुत से बना दिए; क्यों न बनाओ ! सर्वशक्तिमान हो; और मुझे न जाने कितने पापों के करने की शक्ति और सामर्थ्य तक नहीं दी। आज मेरे पापों का हिसाब करने बैठे हो ! पहले अपने बनाए पापों का हिसाब दो। जितने तुमने बनाए थे, उसके आधे भी मैंने नहीं किए। इसलिए मेरा कोई अपराध है तो यह नहीं कि मैंने पाप किए वरन् यह कि मैंने वे सब पाप क्यों नहीं किए जिनकी रचना अपनी महती कृपा से, तुमने इस संसार में या मेरे जीवन में की थी।'

पाठक इस तर्क या दर्शन पर विचार करें और अपने निष्कर्षों के आधार पर मिर्ज़ा के शैर का मूल्यांकन करें।

× × ×

[११४]

मंज़ूर थी ये शक्ल तजल्ली को नूर की।
क़िस्मत खुली तेरे क़दो-रुख़ से ज़हूर की॥

ये—शक्ल यह आकृति अर्थात् प्रियतमा की आकृति, नूर—ईश्वर के सौंदर्य को तजल्ली—प्रकाशवान करने के लिए मंज़ूर—स्वीकृत थी, पसन्द थी। इस प्रकार तेरे क़दो-रुख़—नखशिख से ज़हूर की—साकार या प्रगट होने की जो इच्छा थी उसकी क़िस्मत खुली—उसके भाग्य खुल गये। सारांश, तेरे रूप में ईश्वर ने अपने आप को प्रगट कर दिया।

इक खूँचका कफ़न में करोड़ों बनाव हैं।
पड़ती है आँख तेरे शहीदों पे हूर की॥

खूँचका—रक्तरंजित। रक्तरंजित वस्त्र देखकर भय, क्रोध, घृणा आदि का संचार होता है। तेरा प्रेमी घाव खाकर मरा है। इसलिए उसका कफ़न—शव वस्त्र रक्त से रँगा हुआ है। पर प्रेम पर न्यौछावर हो जाने के कारण इस रक्तरंजित कफ़न से भी करोड़ों बनाव-सौंदर्य प्रगट हो रहे हैं। यहाँ तक कि तेरे शहीदों पर, जो तुझ पर न्यौछावर हुए हैं उन पर, हूर-स्वर्ग की अप्सराओं की भी आँख पड़ती है—ललचाई दृष्टि पड़ती है। यदि यह मान लें कि शुभ कर्म करके मरने वाले लोगों को स्वर्ग में अप्सरायें मिलती हैं, तो यह शैर सभी प्रकार के शहीदों पर लागू होता है।

वाइज़ न तुम पियो न किसी को पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की॥

वाइज़—पंडित जी ! न हमने स्वयं तुमको कभी पीते देखा न यह देखा कि तुम कभी दूसरे को पिला रहे हो, पर लगातार शराबे-तहूर-स्वर्ग में जो मिलने वाली मदिरा है उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहते हो। जो पियो न पिला सको तुम्हारी उस इन्द्रलोकी मदिरा की क्या बात है—क्या तारीफ़ की जाय ? अर्थात् वह कोरी कल्पना ही है, यथार्थ नहीं। इसी प्रकार का एक और शैर कहा है—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के खुश रखने को "ग़ालिब" ये ख़याल अच्छा है।

जन्नत—बैकुंठ की हक़ीकत—यथार्थता को हम जानते हैं पर मन को प्रसन्न रखने के लिए यह ख़याल—कल्पना अच्छी है। यथार्थता यह है कि बैकुंठ निरी कल्पना ही है।

आमद बहार की है जो बुलबुल है नग़मा-संज।
उड़ती-सी इक ख़बर है, ज़बानी तयूर की॥

यह जो बुलबुल नग़मा-संज—गाने लगी है इससे जान पड़ता है कि बहार—वसंत-ऋतु की आमद—का आगमन है। यह उड़ती-सी ख़बर हमने तयूर—

पक्षी (बुलबुल) की ज़बानी—के मुँह से (गाने के रूप में) सुनी है, इसलिए कह नहीं सकते कि सच है या झूठ।

लड़ता है मुझसे हश्र में क़ातिल के क्यों उठा ?
गोया अभी सुनी नहीं आवाज़ सूर की॥

यह एक मान्यता है कि हश्र—प्रलय के दिन एक सूर—एक तुरही फूँकी जायगी, जिसे सुनते ही सब मुर्दे उठ पड़ेंगे और अपने पाप-पुण्य का हिसाब देने ईश्वर के पास चल पड़ेंगे। वह तुरही फूँक दी गई। मैं उठ पड़ा, तो मेरा क़ातिल—मुझको मारने वाला मेरा माशूक़ मुझसे लड़ रहा है कि क्यों उठ पड़ा ! गोया—मानों कि (वह इतना असावधान या 'अपने आप में ही मग्न है) उसने अभी तक तुरही की आवाज़ ही नहीं सुनी। माशूक़ की लड़ाई इस कारण भी हो सकती है कि तू तो मेरा मारा है; मैं उठाता तब उठता ईश्वर के बिगुलची के उठाने से क्यों उठ गया !

गो वाँ नहीं पे वाँ के निकाले हुए तो हैं।
काबअ़ से इन बुतों को भी निस्बत है दूर की॥

बुत का अर्थ मूर्ति भी है और सुन्दरी भी। प्रियतमा चुपचाप बैठी रहती है। लाख मनाने-समझाने से भी बोलती नहीं; इसलिए उसे बुत या मूर्ति कहते हैं या इसलिए भी कि वह मूर्ति के समान सुन्दर और सुडौल है। काबअ़—मक्के का जो पवित्र प्रार्थना-स्थल है, पहले वहाँ मूर्तियाँ थीं और उनकी पूजा की जाती थी। बाद में इस्लाम-धर्म ने मूर्ति-पूजा वर्जित की और मूर्तियों को हटाया। कवि अब भी बुतों (सुन्दरियों) की पूजा करता है और कहता कि आज वे काबे में नहीं हैं तो क्या हुआ, आखिर हैं तो काबे से ही निकाली हुई; उनका काबे से दूर का पुराना निस्बत—सम्बन्ध तो है। तब एक प्रकार से उनकी पूजा भी काबे की प्रार्थना हुई।

क्या फ़र्ज़ है कि सबको मिले एक सा जवाब।
आओ न हम भी सैर करें कोहे-तूर की॥

तूर नामक कोह—पर्वत पर हज़रत मूसा ने ईश्वर से प्रार्थना की थी कि मुझे दर्शन दो। उन्हें उत्तर मिला था कि तू मुझे देख नहीं सकेगा। फिर भी

जब मूसा नहीं माने, तो ईश्वर ने झलक ही दिखाई, जिससे मूसा चकाचौंध होकर बेहोश हो गए।

मिर्ज़ा कहते हैं कि क्या फ़र्ज़ है—क्या आवश्यक है कि सबको यही एक जवाब मिले कि तू मुझे देख नहीं सकता। चलो हम भी तूर पर्वत तक भ्रमण करके देखें कि हमें क्या जवाब मिलता है। 'आओ न' में 'स्पोर्टिंग चान्स' की जो भनक है वह मूसा से पवित्र होने की अहमन्यता को हटाकर, शैर में एक विचित्र शोख़ी पैदा कर देती है।

गर्मी सही कलाम में, लेकिन न इस क़दर।
की जिससे बात, उसने शिकायत ज़रूर की॥

कलाम—कथन या कविता में गर्मी—ओज, सही—ठीक है, अच्छी बात है; पर इस क़दर—इतना अधिक ओज अच्छा नहीं कि जिस किसी से भी बात की जाय वह अवश्य ही यह शिकायत करे कि फलाँ बहुत मुँह-तोड़ बात कहता है। प्रियतमा के लिए भी यह शैर लागू होता है, जैसा कि अन्यत्र कहा है।

'हरेक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है।
भला बताओ ये अंदाज़ गुफ़्तगू क्या है॥'

दूसरे मिर्ज़ा के कलाम पर बहुत टीका-टिप्पणी होती थी। एक यह कि बहुत क्लिष्ट है, दूसरे यह कि बहुत अक्खड़ है, जैसे इसी ग़ज़ल में—'क्या बात है तुम्हारी शराबे-तहूर की।' गोया यहाँ मिर्ज़ा ने अपनी गर्मिये—कलाम को दूषित कहा है।

"ग़ालिब" गर इस सफ़र में मुझे साथ ले चलें।
हज का सवाब नज़्र करूँगा हुज़ूर की॥

हुज़ूर—अर्थात् बादशाह बहादुर शाह 'ज़फ़र' मक्का हज करने जाने वाले थे। 'ग़ालिब' की भी लालसा हज करने की थी। साथ ले चलने की प्रार्थना करते हैं। एक ओर तो साथ ले चलने के लिए गिड़गिड़ाना। दूसरी ओर हज—तीर्थ यात्रा के सवाब-पुण्य को बादशाह की नज़र—भेंट कर देने का

बादा। पुण्य के लिये ही तीर्थ-व्रत किए जाते हैं। पुण्य ही जब भेंट कर दिया, तब भटकने से लाभ क्या। इस शोख़ बयानी ने, इस विरोधाभास ने शेर में जान डाल दी है।

[११५]

ग़म खाने में बोदा दिले-नाकाम बहुत है।
ये रंज, के कम है मये-गुलफ़ाम, बहुत है॥

मेरा नाकाम—असफल या बेकाम का दिल ग़म खाने में-दुःख सहने में बहुत बोदा-कमज़ोर है। उदाहरण के लिये इतना रंज-दुःख ही बहुत है कि इस समय या आज मेरे पास गुल-गुलाब के फ़ाम-रंग की मय—शराब कम है। यदि कम है तो कम ही पी लो, बहुत दुखी क्यों होते हो ? असल बात यह है कि शराब तो है कम और विरह का दुःख है बहुत, जो थोड़ी-सी पी कर हलका नहीं हो सकता। इसीलिए दुःख बहुत बढ़ गया है। यथार्थ में दिल बोदा नहीं है। उसे बोदा कहकर एक व्यंग किया गया है।

शराब दुख को मिटाने वाली चीज़ है, यह अन्यत्र कहा है !

अगले वक़्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो।
जो मय औ नग़्मों को अन्दोहरुबा कहते हैं॥

स्मरण रहे कि गुल का ठीक अर्थ गुलाब होता है। बुलबुल गुल अर्थात् गुलाब पर ही जान देती है, मोगरे या गेंदे पर नहीं। परन्तु सामूहिक रूप से उसका अर्थ सब फूलों के लिए भी लगा लिया जाता है। हम कमल का अर्थ सब फूलों के लिए नहीं लगाते। हाँ, हाथ, पैर, मुख सब की उपमा कमल से दे लेते हैं। जैसे हमने शराब का रंग रतनारा मान लिया है, वैसे उन्होंने गुलाबी।

कहते हुए साक़ी से हया आती है, वरना।
है यूँ के मुझे दुर्द-तहे-जाम बहुत है॥

है यूँ—यथार्थ बात यह है कि मुझे जाम-प्याले की तह—सतह में दुर्द—जो

तलछट या दो-चार बूँदे रह गई हैं, वे ही बहुत हैं। परन्तु साक़ी से यह भेद प्रगट करते मुझे हया—लाज लगती है। वरना—अन्यथा, कह देता। लाज इस लिए लगती है कि साक़ी मुझे कच्चा पियक्कड़ समझ लेगा और मेरी अवहेलना करने लगेगा। पहले शेर में असन्तोष और इसमें सन्तोष प्रगट किया है, यही ख़ूबी है।

नै तीर-कमाँ में है न सैयाद कमीं में।
गोशे में क़फ़स के मुझे आराम बहुत है॥

नै—न (शिकारी का) तीर, कमाँ—कमान में है (मारने के लिये) न सैयाद—फँसाने वाला, कमीं में—जाल फैलाए हुए फँसाने की घात में। अब क़फ़स—पिंजड़े के गोशे—एक कोने में मुझ को बहुत आराम मिल रहा है, बहुत सुरक्षित हूँ, बहुत आनन्द में हूँ। एक पिंजड़े के पक्षी से कहलाया यह है कि मनुष्य का अहंकार ही उसके शत्रु बनाता है। वह अहंकार समेट कर एक ओर बैठ जाय तो कोई शत्रु न रहे। मैं जब-तक यों उड़ता था, यों गाता था, यों चूँ-चूँ करता था, तब-तक शिकारी और सैयाद घात लगाए रहते थे। अब बन्दी होने पर मेरा दुश्मन कोई नहीं, क्योंकि उड़ने-गाने आदि का अहंकार समाप्त हो गया।

है क़हर गर अब भी न बने बात के उन को।
इंकार नहीं और मुझे इबराम बहुत है॥

अब भी बात न बने—मेरा काम न निकले तो क़हर—अंधेर है क्योंकि उन्हें इंकार—अस्वीकृत नहीं और मुझे इबराम—बड़ी ज़िद है कि काम पूरा हो ही जाय। मिलन का अवसर उपस्थित हुआ है।

ख़ूँ हो के जिगर आँख से टपका नहीं ऐ मर्ग।
रहने दे मुझे याँ के अभी काम बहुत है॥

ऐ मर्ग—हे मृत्यु, तू बहुत जल्दी आ पहुँची। अभी तो मेरा जिगर—कलेजा ख़ून बन कर आँख से आँसू के रूप में नहीं बहा। अभी तो मैं नया प्रेमी हूँ। अभी रोना, चीख़ना, पागल होना आदि, आदि बहुत से काम बाक़ी हैं। उनके

बाद कहीं जिगर ख़ून बन कर आँख से टपकेगा। तब मुझे ले जाना। अभी रहने दे, जीने दे।

होगा कोई ऐसा भी के 'ग़ालिब' को न जाने।
शायर तो वो अच्छा है पे बदनाम बहुत है॥

ऐसा भी कोई है जो 'ग़ालिब' को न जानता हो, अर्थात् उसे सभी जानते हैं, क्योंकि वह एक अच्छा शायर-कवि है। इसी समय ख़याल आ जाता है कि अपने मुँह से अपनी तारीफ़ हो गई। तो तुरन्त प्रतिवाद कर देते हैं कि अच्छा शायर होने भर से क्या, वह बदनाम कितना है, यह भी तो सोचो,—शराब पीने के लिये, मुँहफट बात करने के लिये, क्लिष्ट लिखने के लिये, आदि-आदि।

[११६]

यह ग़ज़ल मुसलसल, अर्थात् विचार के एक ही क्रम में बद्ध है। अन्य कई ग़ज़लों में भी मिर्ज़ा ने क़ितअबन्द, अर्थात एक ही विचार-क्रम में बद्ध शैर कहे हैं, पर यह पूरी ग़ज़ल मुसलसल है। कुछ सरल शैर दिए जाते हैं :

मुद्दत हुई है यार को मेहमाँ किए हुए।
जोशे-क़दह को बज़्मे-चिराग़ाँ किए हुए॥

यार—प्रिय को, मेहमाँ—अतिथि के रूप में मुद्दत—बहुत समय से नहीं बुलाया। इसलिए बहुत समय से मेरी बज़्म—मेरी सभा में जोशे-क़दह—आग्नेय मद्य के प्याले, चिराग़ाँ—दीपों के रूप में नहीं जल पाए हैं। तेज़ शराब के प्यालों को दीपों की उपमा दी है। यह भनक तो है ही कि अब प्रिय को बुलाना चाहिए और तेज़ शराब के दौर चलने चाहिए।

करता हूँ जमअ़ फिर जिगरे-लख़्त-लख़्त को।
अरसा हुआ है दावते मिज़्गाँ किए हुए॥

पिछली बार जब माशूक़ आया था, तब उसकी मिज़्गाँ—पलकों की नोक से जिगर—कलेजा, लख़्त-लख़्त—टुकड़े-टुकड़े हो गया था। उन टुकड़ों को मैं

जमा कर के फिर किसी-किसी प्रकार कलेजे का रूप दे रहा हूँ, जिससे फिर दावते—मिज़गाँ दूँ—फिर यार आए और पलकों की नोक से जिगर के टुकड़े-टुकड़े करे।

× × ×

माँगे है फिर किसी को लबे-बाम पर हवस।
ज़ुल्फ़े-सियाह रुख़ पे परेशाँ किए हुए॥

हवस—लालसा, यह माँगे है—यह चाहती है कि लबे-बाम—छत पर फिर कोई आकर खड़ा हो और इस ठाठ से कि रुख़—चेहरे पर, ज़ुल्फ़ें-सियाह-काली काली लटें, परेशाँ किए हुए—फैलाए हुए, उलझाए हुए। बहुत दिन हुए तब ऐसा दृश्य देखा था और उसके कारण बहुत दिनों तक परेशान रहा। अब फिर वही दृश्य देखने की हिम्मत हो गई है।

× × ×

फिर जी में है के दर पे किसी के पड़े रहें।
सर ज़ेरबारे-मिन्नते-दरबाँ किए हुए॥

फिर किसी के—माशूक़ के दर—द्वार पर इस तरह पड़े रहें कि हमारा सिर दरबान की कृपा से ज़ेरबार—झुका हुआ हो, कि उसने द्वार पर लोटने दिया।

जी ढूँढता है फिर वही फ़ुर्सत के रात-दिन।
बैठे रहें तसव्वरे-जानाँ किए हुए॥

जी वे ही फ़ुर्सत—अवकाश के रात-दिन चाहता है जब कि हम जानाँ—प्रिय की कल्पना (तसव्वर) किए बैठे रहें। फिर वही दशा हो जाय, यह चाहते हैं।

'ग़ालिब' हमें न छेड़ के फिर जोशे-अश्क से।
बैठे हैं हम तहैयये-तूफ़ाँ किए हुए॥

जोशे-अश्क—आँसुए की बाढ़ का तूफ़ान, तहैया-तैयार किए हम बैठे हैं। ज़रा भी छेड़ा कि इतना रोएँगे कि आँसुओं की बाढ़ का तूफ़ान आ जायगा।

[११७]

नवेद-अम्न है बेदादे-दोस्त जाँ के लिये।
रही न तर्जे-सितम कोई आस्माँ के लिये॥

दोस्त—माशूक़ का बेदाद—अत्याचार मेरी जाँ—ज़िन्दगी के लिये अम्न—चैन या शांति का नवेद—शुभ सन्देश है। आस्माँ—आकाश बड़े-बड़े सितम—अत्याचार करता है। परन्तु मेरे माशूक़ ने मुझ पर ऐसे-ऐसे अत्याचार किए हैं कि अब आकाश के पास भी अत्याचार करने की कोई तर्ज़—कोई नवीन शैली नहीं रह गई। इस प्रकार मेरे माशूक़ ने मुझे आकाश के अत्याचारों से सुरक्षित या परे कर दिया। इसलिए माशूक़ के अत्याचार मेरे लिए शांति के शुभसन्देश हैं।

बला से गर मज़्हे-यार तिश्नए-ख़ूँ है।
रखूँ कुछ अपनी भी मिज़्गाने ख़ूँ-फ़िशाँ के लिये॥

गर—यदि यार—माशूक़ की मज़्ह—पलक ख़ूँ—रक्त की तिश्ना—प्यासी है तो बला से—मेरी बला से, अर्थात् रही आए। मैं अपना सब रक्त उसे नहीं दे सकता, क्योंकि इधर मेरी मिज़्गाँ—पलकें भी तो हैं, जो ख़ूँ-फ़िशाँ—रक्त बरसाने वाली हैं—यह मेरी पलकों की आदत ही है। कुछ उनके लिए बचा रखूँगा, सब रक्त यार की पलक को नहीं दे दूँगा।

अन्यत्र आँखों से रक्त रोने के बारे में कहा है :—

रगों में दौड़ते-फिरते के हम नहीं क़ायल।
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है॥

वो ज़िन्दा हम हैं के हैं रू-शिनासे-ख़ल्क़, ऐ ख़िज़्र।
न तुम, के चोर बने उम्र-जाविदाँ के लिये॥

ख़िज़्र एक बुज़ुर्ग माने जाते हैं, जो अमर हैं और कहा जाता है कि दुनिया में भूले-भटकों को रास्ता दिखलाते हैं। यह मान्यता-मात्र ही है। यथार्थ में तो वे गुप्त ही या छिपे-छिपे ही रहते हैं, जिसे मिर्ज़ा ने व्यंगात्मक रूप से चोर

बन के रहना कहा है। ख़िज़्र महोदय, हम मर्त्य होकर भी ज़िन्दा हैं—जीवित हैं क्योंकि ख़ल्क़—संसार के रू-शिनास—मनुष्यों को जानने—पहचानने वाले, उनसे मिलने-जुलने वाले तो हैं। एक तुम हो कि उम्र-जाविदां—अमर जीवन के लिए चोर बने फिरते हो। तात्पर्य यह कि जब तुम संसारी प्राणियों से हिलमिल नहीं सकते, तो तुम्हारा अमर जीवन किस काम का। इस से तो हम मर्त्य ही अच्छे हैं।

रहा बला में भी मैं मुब्तलाए-आफ़ते-रश्क।
बलाए-जाँ है अदा तेरी इक जहाँ के लिये॥

बला—मुसीबत, पीड़ा या दुःख में मैं फँसा हुआ हूँ। पर दुःख के ऊपर दुःख यह है कि मैं रश्क़—ईर्ष्या की आफ़त—पीड़ा में मुब्तला—डूबा हुआ हूँ। विरह आदि की पीड़ा तो थी ही, ईर्ष्या की पीड़ा अलग या अतिरिक्त रूप से हो रही है। ईर्ष्या इस बात की है कि तेरी अदा—तेरे हाव-भाव इक जहाँ—एक संसार भर के लिए अर्थात् इस दुनिया भर के लिए बलाए-जाँ—जान की आफ़त, जीवन-घातक हैं। यही ईर्ष्या है कि सब संसार का हिस्सा उसमें क्यों है, वह केवल मेरा हिस्सा होना था। मिर्ज़ा की ईर्ष्या प्रसिद्ध है।

फ़लक न दूर रख उससे मुझे, के मैं ही नहीं।
दराज़-दस्तिये-क़ातिल के इम्तेहाँ के लिए॥

फ़लक—हे आकाश (भाग्य या विधाता)! मुझ को उस से दूर मत रख। यह सच है कि आज उसके द्वारा मेरे क़त्ल होने की शुभ-घड़ी आई है। यह भी सच है कि उसके दस्त—हाथ या बाहु कितने दराज़—लम्बे हैं, इसकी परीक्षा इस बात से ही हो सकती है कि वह कितने अधिक दूर की मार कर सकता है, कितने दूर खड़े प्राणी को अपनी तलवार या ख़ंजर से क़त्ल कर सकता है। पर मैं ही नहीं—इस बाहुओं की लम्बाई की परीक्षा के लिए मैं ही अकेला प्राणी नहीं हूँ। इस इम्तेहान—परीक्षा को और भी बहुतेरे आशिक़ हैं। उनके क़त्ल में यह परीक्षा ले लेना। मुझे दूर मत रख, नज़दीक का शिकार हो जाने दे।

मिसाल यह मेरी कोशिश की है के मुर्गे-असीर।
करे क़फ़स में फ़राहम ख़स-आशियाँ के लिये॥

मेरी कोशिश—मेरे प्रयत्न, उद्धार के लिए मेरा हाथ-पैर मारना कैसा है, किससे उसकी मिसाल—उपमा दी जाय या तुलना की जाय ? यह—वह तुलना यह है, ऐसी है जैसे एक असीर—क़ैद में पड़ा मुर्ग़—पक्षी अर्थात् पिंजड़े का पंछी, क़फ़स—पिंजड़े में, ख़स—तिनके, फ़राहम—इकट्ठे करे, आशियाँ के लिये-घोंसला बनाने के लिये। पिंजड़े से छूटने की आशा नहीं, उपाय नहीं और स्वप्न देखे घोंसला बनाने का, इसी पक्षी के समान एक दीन—दुखिया मैं भी हूँ !

गदा समझ के वो चुप था, मिरी जु शामताई।
उठा, और उठके क़दम मैंने पासबाँ के लिए॥

'मिरी जु शामताई'—'मेरी जो शामत आई' ऐसा है। पर उर्दू हिन्दी के समान नहीं लिखी जाती। उसमें 'मिरी जु शामताई' पढ़ना मान्य है। जैसे हमारे यहाँ 'रघुराई', 'रघुराऊ' 'रघुराया' लिखने की स्वतन्त्रता है, या थी, वैसे ही उर्दू में ह्रस्व-दीर्घ के उच्चारण की यथा-स्थान स्वतन्त्रता है। उदाहरण के लिए मिर्ज़ा की ही एक पंक्ति है—'सच कहता हूँ कि झूठ की आदत नहीं मुझे'—इसमें 'हूँ' दीर्घ है। और दूसरी पंक्ति है—'आज मैं तेग़ो-कफ़न बाँधे हुए जाता हुँ वाँ।'—इसमें 'हूँ' ह्रस्व है। ये तो अपने-अपने छन्द-शास्त्र के नियम हैं। इसलिए 'मिरी जु शामताई' पढ़ना चाहिए और 'मेरी जो शामत आई' समझना चाहिए।

अर्थ है। मुझे गदा—फ़क़ीर या भिखारी समझ कर वो अर्थात् पासबाँ—द्वारपाल (जो आगे की पंक्ति में संज्ञा के रूप में आया है) चुप था अर्थात् मुझसे कोई छेड़-छाड़ नहीं कर रहा था; मुझे उठा-भगा नहीं रहा था। मेरी ही जो शामत—मृत्यु आई तो मैं उठा और उठ के क़दम—चरण, पासबाँ—द्वारपाल के, लिए—पकड़ लिए या द्वारपाल के चरणों पर गिर पड़ा।

इस शैर के बारे में मिर्ज़ा के पट्ट-शिष्य और विख्यात कवि, स्व. मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' कहते हैं कि इतने थोड़े में इतना बहुत कह देना मिर्ज़ा का ही काम था। इतने कम शब्दों में पद्य तो पद्य, गद्य में ये भाव प्रगट नहीं किए जा सकते।

मौलाना आज़ुर्दा, जो 'ग़ालिब' के समकालीन थे और उनके काव्य की क्लिष्टता के कारण टीका-टिप्पणी किया करते थे, इस शैर पर मुग्ध थे।

पं० लब्भूराम 'जोश' मलिसयानी, जालंधर ('जोश' मलीहाबादी से विभिन्न), जो उर्दू के ख्याति-प्राप्त तथा वयोवृद्ध कवि हैं और जिन्होंने मिर्ज़ा के उर्दू-दीवान की शैर-ब-शैर टकसाली टीका की है, लिखते हैं कि तमाम उर्दू साहित्य में ऐसे ज़ोरदार शैर शायद दो-चार ही निकलेंगे।

अच्छा शैर क्या है?—अच्छा दोहा, जो एक बार पढ़ने या सुनने से आजन्म याद रहे, जो बार-बार पढ़ा जाय, पुलकित करे और फिर भी बार-बार पढ़ने की इच्छा बनी रहे, यथा :—

'अमी, हलाहल, मद भरे; श्वेत, श्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥'

मिर्ज़ा और उस्ताद 'ज़ौक़' में कुछ तनातनी बनी रहती थी। फिर भी 'ज़ौक़' का जब यह शैर सुना तब मुग्ध हो गए, कई बार पढ़वाया और कई बार स्वयं झूम-झूम कर पढ़ा :—

'अब तो घबरा के ये कहते हैं के मर जाएँगे।
मर के भी चैन न पाया, तो किधर जाएँगे॥"

उर्दू में थोड़ी-भी दिलचस्पी रखने वाले साहित्यिकों को मिर्ज़ा का यह शैर याद होगा :—

कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे-नीमकश को।
ये ख़लिश कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता?

'ये न थी हमारी क़िस्मत के विसाले-यार होता'—यह ग़ज़ल की ग़ज़ल बहुत खूब है और इस काफ़िए और रदीफ़ में अन्य शायरों ने भी ग़ज़लें कही हैं, पर टीकाकारों ने इसके किसी शैर को वह महत्व नहीं प्रदान किया, जो 'गदा समझ के वो चुप था' को किया है।

उर्दू में यह मान्यता है कि प्रत्येक प्रेमी भिखारी या पागल होता है। जैसे विरह-विह्वल गोपियाँ कृष्ण के दर्शन या उनकी बंशी की तान सुन लेने के लिए यमुना के घाटों और वृन्दावन की कुञ्जों में चक्कर लगाया करती थीं, वैसे आशिक़ भी माशूक़ के घर के चक्कर लगाया करता है—देख लेने के लिए या केवल आवाज़ सुन लेने के लिए, यथा :—

'देख लेते है, तपिश दिल की बुझा लेते हैं।
ज़ेरे-दीवार खड़े हैं, तेरा क्या लेते हैं ?'

दरस-लालसा से ज़ेरे-दीवार—दीवाल की छाया में खड़ा है। माशूक़ कहता है—'कौन खड़ा है; भाग जा यहाँ से' तो कहते हैं—'तुम्हारा कुछ लेते-देते तो नहीं, केवल देख लेते हैं और अपने दिल की तपिश—आग बुझा लेते हैं; तब यह डाँट-फटकार क्यों ?"

इनसे भी बिगड़े दिल महाशय ने जोगी का वेष लेकर द्वार पर पुकार की : 'मिल जाय कुछ भगवान के नाम पर !'

'जवाबे-साफ़ सुनकर, पागया सब-कुछ फ़क़ीर उनका।
सदा देने से मतलब था, फ़क़त आवाज़ सुन लेना॥'

वहाँ से साफ़ जवाब मिल गया—'साईं जी, यहाँ कुछ नहीं है, आगे बढ़ो !' अब और पाना क्या रह गया ? 'भिक्षांदेहि' की सदा—आवाज़ लगाने से केवल यही मतलब था कि आवाज़ सुन ले। सो सुन ली और उनके फ़क़ीर को सभी-कुछ तो मिल गया।

इन्हीं परम्पराओं के अनुसार मिर्ज़ा अपनी माशूक़ के घर के सामने सड़क के एक किनारे जा बैठे। द्वारपाल ने इन्हें देखा तो; पर इन की वेष-भूषा, रंग-ढंग से उसने समझा कि कोई भिखारी है, बैठा रहे; डाँट-फटकार कर क्या होगा ?

द्वारपाल की इस धारणा से मिर्ज़ा का स्थान बहुत सुरक्षित हो गया था। चाहे जब-तक बैठे रहते। और वह स्थान बड़ा 'स्ट्रेटेजिक,' बड़ी मोर्चाबन्दी का भी था। कौन जाने भगवान ऐसा करें कि वह छज्जे पर छा जाय, या झरोखे से ही उझके या चित्रसारी से उसका कलकण्ठ सुनाई पड़ जाए। ऐसे मोर्चे को सुदृढ़ बनाए रखने में ही बुद्धिमानी थी।

अब यदि द्वारपाल गदा न समझता, भाँप जाता कि हज़रत के रंग कुछ और ही हैं, तो वह क्या करता ? वह द्वारपाल उर्दू-काव्य का एक बहुत-ही अजीबो-ग़रीब आलंबन है। ख़ुद कुछ न कहकर, मिर्ज़ा तथा अन्य कवियों द्वारा ही उसका कुछ हुलिया पेश किया जाता है :—

'दे वो जिस क़दर ज़िल्लत, हम हँसी में टालेंगे।
बारे, आशना निकला, उनका पासबाँ, अपना ॥'

बारे यह ख़ूब रही, यह बड़ी अच्छी बात हुई कि उनका पासबाँ—द्वारपाल, अपना हमारा, आशना—मित्र या पुराना साथी निकला। अब वह चाहे, जिस क़दर—जितनी, ज़िल्लत—व्यथा दे, हम हँसी में टालेंगे—हम यह कह कर टाल देंगे कि तू तो मेरा पुराना लँगोटिया है, तुझे सब अधिकार है—चाहे गाली दे ले, चाहे मार ले, चाहे अर्धचन्द्र द्वारा निकाल बाहर कर। राहगीर भी यदि द्वारपाल का यह दुर्व्यवहार देखेंगे तो हम कह देंगे-भाई, अपना रास्ता लो, यह हमारा पुराना जिगरी है, हम में—इसमें ऐसा ही चलता है।

ऐसे द्वारपाल की क्या-क्या ख़ुशामदें होती हैं :—

'वाँ गया भी मैं, तो उनकी गालियों का क्या जवाब ?
याद थीं जितनी दोआएँ, सर्फ़-दरबाँ हो गईं ॥'

यहाँ 'उनकी' से तात्पर्य है माशूक़ या प्रेमिका। कहते हैं कि द्वार पार करके यदि मैं वाँ—माशूक़ के सम्मुख गया भी तो माशूक़ की गालियों का क्या जवाब दूँगा ? यह नियम है कि प्रेमिका गालियाँ देगी। यह भी नियम है कि प्रेमी गालियों का उत्तर दोआओं—आशीर्वादों से दे। परन्तु जितने भी आशीर्वाद मुझे याद थे, वे तो दरबाँ—द्वारपाल के लिए ही सर्फ़—खर्च हो गए, प्रयुक्त हो गए। अब भला जूठे आशीर्वाद मैं अपनी प्रेमिका को कैसे दूँगा। जैसे जूठी उपमाएँ तुलसी-दास जी सीता जी के लिये प्रयुक्त नहीं करना चाहते थे—'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेह कुमारी ॥' ऐसे हैं ये हज़रत द्वारपाल कि सब आशी-र्वादों की मंगाझोली ले ली तब भीतर पैठने दिया, जो न पैठने के बराबर है।

मिर्ज़ा 'दाग़' तो एक क़दम और आगे हैं :—

'ख़ुशामद इस क़दर की, होगया बदनाम आलम में।
ज़माना जानता है मुझको, ये आशिक़ है दरबाँ का ॥'

मैंने द्वारपाल की इतनी अधिक ख़ुशामद की कि दुनिया यह समझने लगी कि मैं द्वारपाल पर ही आशिक़ हूँ। माशूक़ बेचारा खुद विलीन हो गया।

कितना लुभायमान पद है इस द्वारपाल का भी कि एक बिगड़े दिल उसे ही मात्र लक्ष्य बना लेते हैं :—

ग़ैर को आने न दूँ, तुमको कहीं जाने न दूँ।
काश मिल जाए तुम्हारे दर की दरबानी मुझे ॥'

अब प्रश्न यह है कि कवि एक सुरक्षित और आशापूर्ण स्थान क्यों छोड़ता है ! वह कैसी विह्वलता है, कैसी व्याकुलता है, कैसी वेदना है ? कवि केवल 'उठने' की घटना का उल्लेख करता है। उस विरह की मर्मान्तक पीड़ा की कल्पना पाठक पर छोड़ देता है। एक इंगिति के भीतर न जाने कितनी कल्पनाओं का फैलाव है।

फिर शरण भी जाता है तो किसकी, जिसकी शरण में जाना स्वयं कहता है कि शामत है, मृत्यु की शरण में जाना है। जिसके हाथों पहले सब प्रकार की दुर्गति हो चुकी है। ऐसे के चरणों में लोट कर क्या मांगेगा—मेरी ख़बर कर दो, मुझे भीतर जाने दो, घर है या नहीं बतला दो, प्रतिद्वन्दी तो भीतर नहीं है आदि, आदि। और जानता है कि मिलेगा क्या—दुर्व्यवहार, मृत्युवत् कटु व्यवहार।

एक ओर विकलता की हद है, दूसरी ओर दीनता की, पर सब कुछ कह दिया है केवल उठने और पैरों पर गिर पड़ने से। यही इस शैर की ख़ूबी है।

मिर्ज़ा ने एक शैर कहा है :

'कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है।
हमने अपने दिल में ठानी और है ॥'

कुछ लोगों ने कहा कि यह मिर्ज़ा की प्रतिभा के अनुकूल नहीं है, बहुत सादा है। एक शिष्य ने मिर्ज़ा का ध्यान ऐसी टीकाओं की ओर आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि हमने क्या ठानी है—प्रेम करना छोड़ देंगे, और से प्रेम करने लगेंगे, आत्म-हत्या कर लेंगे, वैराग्य ले लेंगे, आदि-आदि माशूक़ या पारखी की कल्पना पर छोड़ दिया है। यही इसकी ख़ूबी है और इसे हम काव्य की एक ख़ूबी समझते हैं। जिस शैर की टीका की गई है, उसमें कल्पना की कितनी गुंजाइश है, पाठक स्वयं निश्चित करें।

बक़द्रे शौक़ नहीं ज़र्फ़-तंगनाए-ग़ज़ल।
कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरी ज़बाँ के लिये ॥

ग़ज़ल का तंग—संकीर्ण, ज़र्फ़—मार्ग या स्थल मेरे शौक़—मेरी अभिव्यक्ति के बक़द्र—लिए पर्याप्त नहीं है। मेरी ज़बाँ—मेरे भावों को प्रगट होने के लिए कुछ अधिक वुसअ़त—फैलाव चाहिए।

इसके बाद, इस ग़ज़ल में अपने एक मित्र श्री तजम्मुल हुसैन खाँ, की प्रशंसा में पाँच शैर कहे हैं और अंतिम शैर कहा है :—

अदाए-ख़ास से 'ग़ालिब' हुआ है नुक्तासरा।
सलाए आम है याराने-नुक्तदाँ के लिये॥

इस ग़ज़ल में 'ग़ालिब' अदाए—ख़ास—एक विशेष शैली लेकर नुक्तासरा—लेखनी-बद्ध हुआ है और वह याराने-नुक्तदाँ—अन्य कवियों को भी सलाए-आम—खुली सलाह देता है कि वे भी यह नया ढंग अपनाएँ, अर्थात् ग़ज़ल के अन्तर्गत प्रशंसात्मक या अन्य शैर भी कहें।

यह प्रथा फ़ारसी में पहले भी थी। इसके पहले भी मिर्ज़ा ने ग़ज़लों में क़तअ़बन्द—अर्थात् क्रमबद्ध विचार के शैर कहे हैं और प्रशंसात्मक शैर भी कहे हैं। कुछ इस टीका में आए हैं और कुछ इसलिए छोड़ दिए गए हैं कि वे कदाचित् हिन्दी पाठकों को रोचक नहीं होंगे।

——

परिशिष्ट।

मिर्ज़ा ने उर्दू-काव्य में क़सीदे (प्रशस्तियाँ) क़तअ़ (क्रमबद्ध छन्द) तथा रुबाइयाँ भी लिखी हैं। प्रथम दो श्रेणी की कविताएँ मिर्ज़ा के जीवन से अधिक संबंध रखती हैं। मिर्ज़ा की जीवनी अलग से प्रकाशित की जाएगी जिस में इन कविताओं की, जो उच्च कोटि की हैं, कुछ चर्चा रहेगी। कुछ रुबाइयाँ यहाँ दी जा रही हैं और एक 'मअ़ज़रत'—माफ़ीनामा, जो मिर्ज़ा की कविता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

स्मरण रहे कि मिर्ज़ा लेखनी के इतने धनी थे कि वे किसी भी विषय पर

कविता कर सकते थे, उसी तरह जैसे सरल या कठिन लिखना उनके हाथ की बात थी। उन्होंने दाल, आम और चिकनी सुपारी पर भी कविताएँ लिखी हैं।

तीन रुबाइयाँ।

दिल सख़्त नज़ंद हो गया है गोया।
उस से गिलहमंद हो गया है गोया।
पर यार के आगे बोल सकते ही नहीं।
'ग़ालिब' मुँह बन्द हो गया है गोया॥

गोया—जैसे दिल सख़्त—बहुत नज़ंद—दुखी हो गया है। जैसे दिल उस से—यार से गिलहमंद—शिकायत करने का इच्छुक हो गया है। पर उस के सामने पहुँचने पर जैसे मुँह ही बन्द हो जाता है, कुछ बोल नहीं सकते।

दुख जी के पसंद हो गया 'ग़ालिब'।
दिल रुक कर बन्द हो गया है 'ग़ालिब'।
वल्लाह, के शब को नींद आती ही नहीं।
सोना सौगन्द हो गया है 'ग़ालिब'॥

वल्लाह—क्या ख़ूब, शब—रात को नींद ही नहीं आती; सोना सौगन्ध हो गया है।

मुश्किल है ज़बस कलाम मेरा ऐ दिल।
सुन-सुन के उसे सुख़नवराने-कामिल।
आसाँ कहने को करते हैं फ़र्माइश।
'गोयम मुश्किल वगर्ना गोयम मुश्किल'॥

है दिल, मेरा कलाम—मेरी कविता ज़बस—बहुत मुश्किल है, जिसे सुख़नवराने-कामिल—कविता के पारखी सुन-सुन कर फ़र्माइश—आज्ञा करते हैं कि आसाँ—सरल कहूँ—लिखूँ। फ़ारसी की कहावत दी है कि यूँ भी

मेरी मुश्किल है और त्यों भी मेरी मुश्किल है। सरल कहता हूँ तो अपने दार्शनिक भाव प्रगट नहीं कर पाता, कठिन कहता हूँ तो लोग शिकायत करते हैं। अन्यत्र देखिए—"गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी न सही।"

माफ़ीनामे का क़िस्सा यह है कि बादशाह के एक पुत्र के विवाह के अवसर पर मिर्ज़ा ने एक सेहरा—मौर की तारीफ़ पर एक कविता लिखी, जिस का अंतिम छन्द था :

हम सुख़नफ़ह्म हैं, 'ग़ालिब' के तरफ़दार नहीं।
देखें इस सेहरे से कह दे कोई बढ़ कर सेहरा॥

मिर्ज़ा में और बादशाह के काव्य-गुरु, महाकवि 'ज़ौक़' में तनातनी चलती थी। अन्यत्र देखिए :

हुआ है शह का मुसाहिब, फिरे है इतराया।
वगर्ना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है॥

उस्ताद 'ज़ौक़' ने सेहरे की अंतिम पंक्तियों को न केवल चुनौती वरन् अपना अपमान भी माना। उन्होंने भी सेहरा लिखा और अंतिम शैर में बदला ले लिया :

'जिस को दावा है सुख़न का, ये सुना दे उसको।
देख, इस तरह से कहते हैं सुख़नवर सेहरा॥'

तथापि बादशाह अपने उस्ताद के प्रति व्यंगोक्ति का बुरा मान गए और मिर्ज़ा के प्रति उदासीन हो गए। तब मिर्ज़ा ने यह माफ़ीनामा पढ़ा, जो यथार्थ में अपने व्यक्तित्व के प्रति स्वाभिमान है, उन्हें ग़लत समझाने वालों के लिए चुटकी है और उर्दू साहित्य की अमर वस्तु है :—

मंज़ूर है गुज़ारिशे-अहवाल-वाक़ई।
अपना बयाने-हुस्न तबीयत नहीं मुझे।

अहवाल-वाक़ई—जो सच्ची बातें हैं उनकी गुज़ारिश करना—उन का

निवेदन करना मुझे मंज़ूर है—मुझे स्वीकृत है, अर्थात् उनके निवेदन करने की मेरी इच्छा है। अपने बयाने-हुस्न—काव्य की सुन्दरता की चर्चा करने की मेरी तबीअत—इच्छा नहीं है। यह केवल अपनी इच्छा से कह रहा हूँ।

सौ पुश्त से है पेशये-आबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रीअ़ए-इज्ज़त नहीं मुझे॥

सौ पुश्त—पीढ़ियों से मेरे आबा—बाप-दादों का पेशा सिपहगरी—सूरमाओं का रहा है। शायरी—कविता करना मेरे लिए इज्ज़त—सम्मान का ज़रिया—साधन नहीं है।

मिर्ज़ा टर्की के राजवंशी थे। इनके आजा शाहआलम प्रथम के समय में भारत आए। मिर्ज़ा ने अपने वंशानुगत अभिमान की सदैव रक्षा की। इनके बाल्यकाल में ही इनके पिता ने रणभूमि में वीरगति प्राप्त की। संभव है कि वे जीते रहते तो मिर्ज़ा एक अमर कवि के अतिरिक्त एक नामी सूरमा भी होते। इन पंक्तियों में वही सिपहयाना ठाठ बोल रहा है।

आज़ाद-रौ हूँ और मेरा मुस्लिक है सुलहकुन।
हरगिज़ कभी किसी से अ़दावत नहीं मुझे॥

आज़ाद—स्वतंत्र रौ—पंथी हूँ और मेरा मुस्लिक—स्वभाव सुलहकुन—शांतिप्रिय है। कभी किसी से मुझे अ़दावत—शत्रुता नहीं है। जब कभी किसी से कदापि शत्रुता नहीं है तब आप के उस्ताद से शत्रुता का आक्षेप तो हास्यास्पद ही माना जायगा।

क्या कम है ये शरफ़ के 'ज़फ़र' का ग़ुलाम हूँ।
माना के जाहो-मन्सबो सरवत नहीं मुझे।

यह माना कि जाह—प्रतिष्ठा, मन्सब—ओहदा और सरवत—धन मुझे प्राप्त नहीं है पर यह क्या कम शरफ़—सम्मान की बात है कि मैं बादशाह, उपनाम 'ज़फ़र' का ग़ुलाम—सेवक हूँ। स्मरण रहे कि 'ज़फ़र' स्वयं बहुत बड़े कवि थे, विशेष कर करुण रस के।

उस्तादे-शाह से हो मुझे परख़ाश का ख़याल।
ये ताब, ये मजाल, ये ताक़त नहीं मुझे॥

उस्तादे-शाह—बादशाह के उस्ताद से परख़ाश—प्रतिद्वंदता का खयाल—भाव तक रखूँ, यह ताब—सामर्थ्य, यह मजाल—साहस, यह ताक़त—शक्ति मुझ में नहीं है। पहले सब—कुछ कह देने के बाद क्या माफ़ी माँगी है!

जामे-जहाँनुमा है शहंशाह का ज़मीर।
सौगन्द और गवाह की हाजत नहीं मुझे॥

बाहशाह का ज़मीर—दिल तो जहाँनुमा—सब संसार को देखने वाले जाम—प्याले के समान है अर्थात् जमशेद बादशाह का जाम है (और बाज़ार से ले आए अगर टूट गया। जामे—जम से मेरा ये जामे-सिफ़ाल अच्छा है। अन्यत्र देखिए)। मुझे सौगन्ध की और गवाह की हाजत—आवश्यकता नहीं है। छिपी चोट है कि बादशाह स्वयं कवि हैं और वे जानते हैं कि किस का काव्य अच्छा है। तभी तो सब—कुछ देखने वाले माने जायँगे।

मैं कौन और रेख़ता? हाँ, इस से मुद्दआ।
जुज़ इन्सबाते-ख़ातिरे-हज़रत नहीं मुझे॥

मैं कौन—कहाँ मैं और कहाँ रेख़ता—उर्दू की ग़ज़लें कहना। जुज़—सिवाय हज़रत—बादशाह की इन्सबाते—ख़ातिर—आज्ञा-पालन के और कोई मेरा उद्देश्य नहीं है।

मिर्ज़ा यद्यपि उर्दू-काव्य के पिता माने जाते हैं, तथापि उन्हें दावा अपनी फ़ारसी कविता का था। यहाँ यह भी ध्वनि है कि रेख़ता बड़ी चीज़ है, मैं छोटी चीज़ हूँ और यह भी कि मैं तो फ़ारसी का कवि; उर्दू में तो केवल आप के कहने से कुछ लिख देता हूँ। तब यह भी छिपी चुनौती है कि फ़ारसी में 'ज़ौक़' आ जायँ मेरे सामने।

सेहरा लिखा गया ज़िरहे-इम्तेसाले-अम्र।
देखा के चारा ग़ैर इताअ़त नहीं मुझे॥

सेहरा ज़िरहे—इस कारण लिखा गया कि इम्तेसाले-अम्र—आप की आज्ञा

का पालन हो। मैं ने देखा कि ग़ैर-इताअ़त—आज्ञा की अवहेलना करने का चारा—उपाय मेरे पास नहीं है। अपने मन से मैं ने नहीं लिखा कि यह प्रश्न हो कि क्यों लिखा।

मक़ते में आ पड़ी है सुख़न गुस्तराना बात।
मक़सूद इस से क़तअ़ मोहब्बत नहीं मुझे॥

मक़ता—अंतिम शैर में, उपनाम की छाप वाले शैर में सुख़न-गुस्तराना—कवियों की परम्परागत एक बात आ गई है। मैं ही अकेला कवि नहीं हूँ जिसने अपने मुँह से अपनी तारीफ़ की हो। यह तो हमेशा-हमेश का चलन है। इस से यह मक़सूद—उद्देश्य नहीं है कि मैं क़तअ़—मोहब्बत करूँ—स्नेह के बंधन तोड़ दूँ। व्यंग यह है कि कवियों की रीति-रिवाज़ का ग़लत मतलब लगाया गया है।

रूये-सुख़न किसी की तरफ़ हो तो रू सियाह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥

सुख़न—कविता या इस सेहरे का रू—मुँह या दिशा किसी की तरफ़—किसी पर व्यंग करने के लिये हो तो मेरा रू-मुँह सियाह—काला हो जाय। 'ज़ौक़' का वर्ण श्याम था और मिर्ज़ा का खुला गेहुँआ। सौदा, जुनूँ, वहशत—पागलपन मुझ पर सवार नहीं हो गया है। पागल आदमी भी तो धूप-छाँह की पर्वाह न करने के कारण काला पड़ जाता है। इधर कहते हैं कि व्यंग नहीं करना था और व्यंग किए जा रहे हैं।

क़िस्मत बुरी सही पे तबीयत बुरी नहीं।
है शुक्र की जगह कि शिकायत नहीं मुझे॥

माना कि मेरी क़िस्मत ख़राब है। दोनों बाते हैं (१) ऊपर कहा है ओहदा आदि नहीं मिला, (२) मेरा सेहरा अच्छा था और मुझी पर नाराज़ी। पर तबीयत बुरी नहीं—पर मेरी काव्य—प्रतिभा में त्रुटि नहीं है। मुहावरा यह है कि

अमुक ने अच्छी तबीयत पाई है अर्थात् अमुक ने अच्छी काव्य-प्रतिभा पाई है। यह होते हुए भी शुक्र की जगह—भगवान को धन्यवाद है कि मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है।

सादिक़ हूँ अपने क़ौल में, 'ग़ालिब' ख़ुदा गवाह।
कहता हूँ सच के झूठ की आदत नहीं मुझे॥

अपने क़ौल में—अपनी बात में, सादिक़ हूँ—सच्चा हूँ। ईश्वर गवाह है। मैं जो कुछ कहता हूँ सच कहता हूँ क्यों कि सौ बात की एक बात यह है कि मुझे झूठ बोलने की आदत ही नहीं है।

यह कविता नहीं है, चमत्कार है। एक तो कंठ नहीं, हृदय बोल रहा है। दूसरे जितना अधिक समझते जाइए, उतना आनन्द लेते जाइए। तीसरे गद्य और पद्य को एक कर दिया है। गद्य में कहते तब भी तो लगभग यही शब्द होते और इसी क्रम से आते।

बात तो सब जानी—समझी थी। केवल यह हठ थी कि मिर्ज़ा के मुँह से 'मा' और 'फ़ी' निकल जाय। सो शब्द निकल गया और तुरंत सब में समझौता हो गया, हेल-मेल हो गया। प्रश्न यह है कि यह यदि 'माफ़ी' है तो 'हेकड़ी' किस चीज़ को कहते हैं!!

इति शुभम्।

शुद्धि-पत्र

बहुत सावधानी करने पर भी पाठ में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। कृपा कर सुधार लें। इन शब्दों को कृपा कर टीका में भी शुद्ध पढ़ें। टीका के कुछ अन्य हिन्दी शब्दों को स्वयं शुद्ध कर लेने की कृपा करें। मुद्रक तथा टीकाकार क्षमा-प्रार्थी हैं।

पृष्ठ	शैर	अशुद्ध	शुद्ध
४२	५	डरत	डरता
४६	२	बा	बाज़
५३	५	तसव्वुफ	तसव्वुफ़
६०	२	नाज	नाज़
६२	२	लाजिम	लाज़िम
६६	४	अन्दाज	अन्दाज़
६८	२	खूब	ख़ूब
,,	,,	आशिक़	आशिक़े-
,,	४	ग़म-ख्वार	ग़म-ख़्वार
६६	३	ज़ख्म	ज़ख़्म
७२	२	एजावत	एजाबत
७८	२	मुझे	तुझे
७६	३	अंघेर	अंधेर
८४	१	गुमाँ	गुमाँ
८८	३	खूये	ख़ूये
८६	३	खूँ-चका	ख़ूँ-चका
६१	३	नौहागार	नौहागर
६८	३	नामावर	नामाबर
१०१	३	पिनहा	पिनहाँ

पृष्ठ	शैर	अशुद्ध	शुद्ध
११२	३	खुशी	ख़ुशी
११३	१	बेखबर	बेख़बर
११५	२	मैक़दा	मैकदा
११६	४	हा	हो
१२३	३	हसरत	हसरते-
१२४	१	हाह	हाय
१२६	२	शर्म	शर्मे-
,,	५	-ख्वारी	-ख़्वारी
१२८	२	दिलवराँ	दिलबराँ
१३३	४	देख़ना	देखना
१३८	१	मंजिल	मंज़िल
,,	२	दोजख़	दोज़ख़
१४३	१	पिनहा	पिनहाँ
१४६	१	थे	ये
,,	२	ज़ुल्फे	ज़ुल्फ़े
१५०	४	पिनहा	पिनहाँ
१५५	४	फ़ैज	फ़ैज़
१५७	२	बेक़फ़न	बेकफ़न
१७६	३	रश्क़	रश्क
१८६	२	खू	ख़ू

उर्दू के अन्य प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ

सुबह वतन

पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त'

उर्दू के प्रतिष्ठित कवि स्व० पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की उर्दू कविताओं का हिन्दी में मनोहर संग्रह। कठिन शब्दों का अर्थ सहित हिन्दी रूपान्तर भी इसमें दिया गया है। पृष्ठ सं० २२८ मूल्य २ रु० ५० नये पैसे।

महाकवि अकबर

श्री 'वतन'

उर्दू के महाकवि अकबर चुभती भाषा, फड़कती शायरी और हास्य रस के कवि होने के कारण उर्दू साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। इस पुस्तक को उनका जीवन-चरित्र, उनकी चुनी हुई कविताएँ और आलोचना देकर हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिए पूर्ण रूप से उपादेय बना दिया गया है। मूल्य १ रु० ८१ नये पैसे।

मौलाना हाली और उनका काव्य

श्री ज्वालादत्त शर्मा

मौलाना हाली ने छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीजों पर अपनी शायरी की छाप लगा दी है। उर्दू साहित्य के वे अमर सूफी कवि हैं। इस पुस्तक में मौलाना हाली का जीवन-चरित्र और उनकी कविता के नमूने तथा उनके सरल हिन्दी अर्थ देकर हिन्दी भाषियों को हाली की कविताओं का रसास्वादन करने का अवसर दिया गया है। मूल्य ६ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद